अगस्त

१९३३

वार्षिक चन्दा ६॥)
छः माही चन्दा ३॥)

सम्पादक :—
मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव

विदेश का चन्दा ८॥)
इस अङ्क का मूल्य ॥=)

विषय सूची

❀ ❀ ❀

रङ्ग-भूमि

❀ ❀ ❀

चित्र-सूची

प्रदीप-प्रकाश

दि फ़ाइन आर्ट प्रिण्टिङ्ग कॉटेज
इलाहाबाद]

[चित्रकार—श्री० भुवन, बी० ए०
देहली

आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है, जब तक इस
पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे
विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ११,
खण्ड २

अगस्त, १९३३

संख्या ४,
पू० सं० १३०

चित्र-रेखा

[प्रोफ़ेसर रामकुमार वर्मा, एम० ए०]

(काले बादल में पानी की बूँद)

काले तन के उज्ज्वल मन !

कलुष-रहित हो तुम, फिर भी—
क्यों इतना प्रिय है अधःपतन ?
यह नीला आकाश—(जहाँ,
करते हैं कितने विश्व अटन !

अपना विस्तृत रूप भूल कर
बन कर लघु प्रकाश के कन ।)—
फैला है मेरे जीवन-सा,
जिसमें है स्वर्गिक गायन।

पतन तुम्हारा आज बनेगा,
इस बसुधा का अभिनन्दन।

अगस्त, १९३३

श्रमजीवी और गृह-समस्या

प्राचीन काल में जब कि शिल्प तथा कारीगरी का काम हाथ से किया जाता था, बड़े-बड़े नगरों की संख्या बहुत कम थी। क्योंकि शिल्पकार अथवा कारीगर अपने व्यवसाय को अपने घर अथवा छोटी सी दूकान में बैठ कर ही कर सकते थे। उस समय प्रायः प्रत्येक बड़ा गाँव अधिकांश में स्वावलम्बी होता था और उसे बड़े नगरों से सम्बन्ध रखने की बहुत ही कम आवश्यकता पड़ती थी। पर जब से भाप और बिजली की शक्ति का आविष्कार हुआ और जीवन-निर्वाह की वस्तुओं को तैयार करने का काम घरों और दूकानों में होने के बजाय मशीनों द्वारा बड़े-बड़े कारख़ानों और फ़ैक्टरियों में होने लगा, तब से उपर्युक्त अवस्था बदल गई। अब दिन पर दिन ऐसे बड़े-बड़े शहरों का निर्माण हो रहा है जिनकी प्राचीन काल में कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

जब कारख़ानों की स्थापना होने के कारण गाँवों और छोटे क़स्बों के शिल्पकारों का काम छिन गया तो उनके लिए ये ही उपाय रह गए कि वे या तो अपना घर-बार छोड़ कर शहरों में जाकर कारख़ानों की नौकरी करें या केवल खेती-बारी द्वारा अपना निर्वाह करें। पर खेती की ज़मीन पहले से ही नपी-तुली है, अतः जैसे-जैसे जन-संख्या की वृद्धि होती जाती है उसकी माँग भी बढ़ती जाती है। इसके सिवा सामाजिक प्रथाओं में परिवर्त्तन होने से संयुक्त-कुटुम्ब की प्रथा भी अधिकांश में लोप हो गई है, अतः जो भूमि पहले एक ही परिवार के अधिकार में थी, वह अब अनेक छोटे-छोटे हिस्सों में बँटती जाती है और इन छोटे-छोटे भूमि-खण्डों में इतनी पैदावार नहीं होती, जिससे एक कुटुम्ब का काम भली प्रकार चल सके। ऐसे भूमि-खण्डों के स्वामी अगर केवल खेती पर ही निर्भर रहें तो इसका फल यह होगा कि उनको अपना बहुत सा समय ठाले-बैठे गँवाना पड़ेगा और पेट भर सकना भी कठिन हो जायगा। इस-लिए इस प्रकार के लोगों को भी साल में कुछ महीने शहरों में रह कर नौकरी करना आवश्यक जान पड़ता है। इस प्रकार कल-कारख़ानों के केन्द्र-स्थानों में ऐसे लोगों का एक बड़ा समूह इकट्ठा हो जाता है, जिनका वहाँ घर-द्वार कुछ भी नहीं होता और जिनमें से

अधिकांश वहाँ अस्थायी रूप से रहने को आते हैं। फल-स्वरूप उन स्थानों में गृह-समस्या बड़ी कठिन हो उठती है और थोड़े से स्थान में बहुत से लोगों के भर जाने से स्वच्छता का ह्रास होने लगता है। इसका अनुमान हमको तब होता है जब यह पता लगता है कि बम्बई में १०० में से ६६ और कानपुर में ६४ व्यक्ति केवल एक कमरे में रहते हैं। यह औसत नगर की समस्त आबादी के हिसाब से है। यदि केवल मज़दूरों के मुहल्लों का ही हिसाब लगाया जाय तो वहाँ १०० में ९४ मनुष्य अपने परिवार सहित एक ही कमरे में रहते हैं। इतना ही नहीं, इन शहरों के एक छोटे से कमरे में आठ-आठ और दस-दस व्यक्तियों को गुज़ारा करना पड़ता है। यद्यपि इस विषय में विभिन्न नगरों की समस्या एक दूसरे से कुछ भिन्न प्रकार की है तो भी यह निस्सङ्कोच कहा जा सकता है कि आजकल सभी बड़े शहरों में, जहाँ उद्योग-धन्धों का कुछ ज़ोर है, जगह की कमी की शिकायत पाई जाती है। यद्यपि बम्बई को छोड़ कर, जो चारों तरफ़ समुद्र से घिरा है और जहाँ आबादी को फैला सकने की गुञ्जायश नहीं है, अन्य स्थानों में शहर के आस-पास भूमि की कमी नहीं है, पर सभी व्यवसायी और मज़दूर अपने काम करने के स्थान के पास ही रहना पसन्द करते हैं। इसका फल यह होता है या तो मकान ऊँचे बनाने पड़ते हैं जिससे प्रकाश और हवा के मिलने में बाधा पड़ती है, या फिर गन्दे और त्याज्य स्थानों में बिना किसी प्रकार की सफ़ाई तथा आराम के प्रबन्ध के रद्दी मकान या झोंपड़े बना कर खड़े कर दिए जाते हैं और ग़रीब लोग उन्हीं में पशुओं की भाँति रहने लगते हैं। इन स्थानों में स्वच्छता और स्वास्थ्य के नियमों का कितना अधिक उल्लङ्घन किया जाता है और उसके फल से वहाँ के रहने वालों का कैसा शारीरिक और चारित्रिक पतन होता है, इसका अनुमान वे लोग ही भली-भाँति कर सकते हैं, जिन्होंने ऐसे स्थानों का भली प्रकार निरीक्षण किया है अथवा जो उनसे किसी तरह का सम्बन्ध रखते हैं। यद्यपि भारतीय श्रमजीवी आन्दोलन-कर्ता इस सम्बन्ध में बराबर शिकायतें करते रहे हैं और मज़दूरों की दुरवस्था का वर्णन समाचारपत्रों द्वारा तथा अन्य प्रकार से प्रकट करते रहे हैं, पर उनकी सम्मति पर एकपक्षीय होने का आरोप हो सकने के कारण हम सम्राट द्वारा नियुक्त 'रॉयल कमीशन ऑफ़ लेबर' की रिपोर्ट से विभिन्न नगरों की मज़दूर-बस्तियों का संक्षिप्त विवरण यहाँ देते हैं।

कलकत्ता

कलकत्ता और हवड़ा की सीमा के भीतर उद्योग-धन्धों की शीघ्रतापूर्वक वृद्धि होने से भूमि का बड़ा अभाव हो गया है और उसके लिए बहुत अधिक मूल्य देना पड़ता है। इस नगर में बहुत वर्षों से मज़दूरों को रहने का स्थान मिल सकना कठिन हो गया है और इस अभाव की पूर्ति के लिए कुछ मालदार लोगों ने और ख़ास कर मिलों में काम करने वाले सरदारों ने कार-ख़ानों के पास ही घर या झोंपड़े खड़े कर दिए हैं और उनका इतना अधिक किराया लिया जाता है कि मज़दूर की आमदनी का एक बहुत बड़ा हिस्सा उसी में चला जाता है। इन घरों के बनाने में लोगों की सुविधा और आराम का ज़रा भी ध्यान नहीं रक्खा गया है, और जहाँ तक बन पड़ा है एक-एक बित्ता ज़मीन को मकान बनाने के काम में लाया गया है। इस कारण इस शहर की कितनी ही बस्तियों में लोगों को इतनी अधिक तङ्गी में रहना पड़ता है जिसका उदाहरण सम्भवतः समस्त देश में नहीं मिल सकता।

बम्बई

बम्बई में मज़दूरों के निवास के लिए प्रायः 'चालें' बनाई गई हैं, जो तीन या चार मञ्ज़िल तक की होती हैं और उनके एक छोटे कमरे में कम से कम एक परिवार रहता है। ये 'चालें' इस ढङ्ग से बनाई जाती हैं कि कमरों की दो लम्बी क़तारों के बीच में एक तङ्ग गली रहती है और प्रत्येक कमरे का दर्वाज़ा इसी गली में होता है। इससे इन घरों में रोशनी और हवा की पहुँच बहुत कम हो पाती है। ये स्थान बड़े गन्दे रहते हैं और सफ़ाई के नियमों का वहाँ पूर्णतया अभाव होता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि पुराने ढङ्ग की 'चालें' उनमें रहने वालों के स्वास्थ्य के लिए बड़ी हानिकर हैं और यद्यपि अब वे कम होती जाती हैं तो भी अधिकांश लोगों को अभी तक उन्हीं में रहना पड़ता है। इसके सिवा वे प्रायः मिलों के पास बनाई गई हैं, इसलिए

कितने ही लोग असुविधाओं को भोगते हुए भी उनमें रहना पसन्द करते हैं। इन 'चालों' में से ज़्यादातर ऐसी हैं कि उनका सुधार हो सकना असम्भव है और एक-मात्र उपाय उनको नष्ट कर देना ही है।

मद्रास

मद्रास, मदूरा, कोयम्बटूर तथा दक्षिण भारत के अन्य उद्योग-धन्धे के केन्द्रों की दशा भी ऐसी ही असन्तोषपूर्ण है। मद्रास शहर में एक कमरे वाले २५,००० घरों में, जिनको वहाँ 'चेरी' कहते हैं, डेढ़ लाख व्यक्ति निवास करते हैं। वहाँ मकानों की इतनी ज़्यादा कमी है कि हज़ारों लोगों को बिना घर के ही रहना पड़ता है। ये लोग या तो सड़कों पर पड़ रहते हैं या बन्दरगाह के पास गोदामों के बाहरी बरामदों में गुज़र करते हैं। मदूरा की, जहाँ कितनी ही कपड़े की मिलें हैं, अवस्था और भी बुरी है। वहाँ की म्युनिसिपैलिटी ने इस समस्या को हल करने का कोई प्रयत्न नहीं किया है और न एक को छोड़ कर किसी मिल ने मज़दूरों के रहने को मकान बनाये हैं। कोयम्बटूर और तूतीकोरिन में भी यही हालत है और वहाँ कितने ही ग़रीब लोग ख़ाली पड़ी हुई ज़मीन पर झोंपड़े बना कर गुज़ारा करते हैं। जब उन ज़मीनों के मालिक उनसे बहुत अधिक किराया माँगने लगते हैं, तो वे उस स्थान को छोड़ कर उसी प्रकार के किसी अन्य गन्दे और कष्टपूर्ण स्थान में जा बसते हैं। अन्त में उन लोगों की एक 'चेरी' बन जाती है, और वहाँ उन्हें इतनी तङ्गी और गन्दगी में रहना पड़ता है कि उससे उनके स्वास्थ्य की बड़ी हानि होती है। अधिकांश में सरकारी अधिकारी या म्युनिसिपैलिटियाँ इन 'चेरियों' की तरफ़ बिलकुल ध्यान नहीं देते। वहाँ पर जीवन की मुख्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने की भी कुछ चेष्टा नहीं की जाती। जिन स्थानों में पानी के नलों का प्रबन्ध भी है, वहाँ भी प्रायः वे इतनी अधिक दूर होते हैं कि लोग अरक्षित अवस्था में पड़े कुओं के पानी से ही काम चलाते हैं। सड़कों की कमी का बहाना करके म्युनिसिपैलिटी वाले वहाँ मैला उठाने वाली गाड़ियाँ भी नहीं भेजते। नालियों और पाख़ानों के अभाव से पाख़ाना-पेशाब रास्ते पर बहता रहता है। ऐसी अवस्था में कोई आश्चर्य नहीं कि इन स्थानों में प्रायः महामारियाँ फैलती रहती हैं और लोगों की मृत्यु की औसत बहुत अधिक है।

कानपुर

कानपुर में मज़दूरों की संख्या ६० हज़ार है और वहाँ की बस्ती बड़ी घनी और अस्वास्थ्यकर है। शहर का पौन हिस्सा बस्तियों और हाटों के रूप में है, जिनमें बने हुए घर या तो मनुष्यों के रहने के लायक़ नहीं हैं या उनमें सुधार की बड़ी ज़रूरत है। अधिकांश घरों में केवल एक कमरा होता है, जिसकी चौड़ाई ८ फ़ीट और लम्बाई १० फ़ीट होती है। इनमें से किसी के सामने बरामदा होता है और किसी में नहीं होता। ऐसे एक कमरे में दो, तीन और चार परिवार तक रहते हैं। अनेक घरों का फ़र्श सड़क से भी नीचा होता है। उनमें पानी निकलने, हवा आने तथा सफ़ाई का कोई साधन नहीं होता।

अहमदाबाद

अहमदाबाद का वह भाग, जिसमें मज़दूर रहते हैं, गन्दगी का जीता-जागता नमूना है। सौ में से क़रीब ९२ घर केवल एक कमरे के हैं। उनकी बनावट बड़ी ख़राब और अस्वास्थ्यकर है तथा उनमें हवा आने को कोई रास्ता नहीं है। वहाँ लोगों को पानी ज़रूरत से बहुत कम मिलता है और पाख़ानों का कुछ भी इन्तज़ाम नहीं है। इसके फल से लोग प्रायः रोगी और कमज़ोर रहते हैं। बच्चे बहुत अधिक संख्या में मरते हैं और अन्य लोगों की मृत्यु का औसत भी बहुत अधिक है। इस शहर की पैंतीस मिलों ने अपने मज़दूरों के रहने के लिए घर बनाए हैं, जिनमें उन मिलों में काम करने वाले १६ प्रति सैकड़ा व्यक्ति रह सकते हैं। पर एक या दो स्थानों को छोड़ कर सभी घरों में जगह की तङ्गी है और सफ़ाई का कोई इन्तज़ाम नहीं है।

अन्य स्थान

ऊपर लिखे नगरों के मज़दूरों की जो दुर्दशा है, वही क़रीब-क़रीब उद्योग-धन्धों के अन्य केन्द्रों में भी पाई जाती है। पर कराची और अजमेर में इस सम्बन्ध में जैसी लापरवाही की जाती है और देख-भाल का जैसा

अभाव है, उसका उदाहरण कहीं नहीं पाया जाता। कराची में कुछ कारख़ाने वालों ने अपने मज़दूरों के लिए मकान बना दिए हैं और कुछ उनको अपने लिए झोंपड़ा बना लेने का सामान दे देते हैं। वहाँ पर एक घर में कई-कई परिवारों के मिल कर रहने का रिवाज बहुत अधिक है और इससे बड़ी हानि होती है। अजमेर में अधिकांश मज़दूर शहर के भीतर मकान किराए पर लेकर रहते हैं और जगह की कमी से उनको बहुत ही तङ्गी में निर्वाह करना पड़ता है।

गन्दगी का परिणाम

मज़दूरों और उनकी स्त्रियों तथा बच्चों के ऐसे तङ्ग और शुद्ध वायु-रहित स्थानों में रहने का परिणाम यह होता है कि वे प्रायः रोगी और निर्बल रहते हैं तथा किसी के मुख पर तेज अथवा कान्ति का चिन्ह दिखलाई नहीं पड़ता। ऐसे स्थानों में जो बच्चे उत्पन्न होते हैं, वे जन्म लेने के दो-चार महीने के भीतर ही चल बसते हैं। जब कि इङ्गलैण्ड के उद्योग-धन्धों के केन्द्र-स्थानों में प्रति हज़ार १०० बच्चे मरते हैं, बम्बई में सरकारी जाँच द्वारा यह संख्या प्रति हज़ार २५० बतलाई गई है! मद्रास और रङ्गून की दशा इससे भी अधिक शोचनीय है, क्योंकि वहाँ जन्म लेने वाले एक हज़ार बच्चों में से ३०० से ३५० तक मर जाते हैं! पर उपर्युक्त अङ्कों में मज़दूरों के अतिरिक्त अन्य श्रेणी वालों की गणना भी की गई है और यदि केवल मज़दूरों के बच्चों की ही मृत्यु का हिसाब लगाया जाय, तो इसमें सन्देह नहीं कि उनमें से आधे से भी अधिक अपनी आयु के पहले ही वर्ष में इस लोक से विदा हो जाते हैं!

शारीरिक अवनति

ऐसी गन्दी परिस्थिति में रहने के कारण मज़दूरों का स्वास्थ्य भी कभी ठीक नहीं रहता और वे प्रायः रोगी बने रहते हैं। रोग की दशा में ठीक तौर पर इलाज करने के लिए प्रथम तो उनके पास पैसा नहीं होता और दूसरे जिन कारणों से रोग उत्पन्न होता है वे भी ज्यों के त्यों बने रहते हैं। नतीजा यह होता है कि दो-चार रोज़ में अच्छी हो सकने वाली बीमारी का असर उन पर महीनों तक रहता है और जब वे किसी प्रकार लोट-पोट कर चङ्गे भी हो जाते हैं, तो बहुत समय तक कमज़ोर बने रहते हैं। पर इस प्रकार महीनों तक बैठे रहने से इन ग़रीबों का पेट नहीं भर सकता, इसलिए जैसे ही रोग का वेग घटने लगता है, वे काम पर हाज़िर हो जाते हैं। इस प्रकार बीमारी के प्रत्येक आक्रमण के फलस्वरूप उनकी जीवनी-शक्ति का निरन्तर क्षय होता रहता है और वे प्रायः तीस-चालीस वर्ष की अवस्था के भीतर ही चल बसते हैं।

चरित्र की हानि

बड़े नगरों के जिन मकानों में मज़दूरों को रहना पड़ता है, वे प्रायः एक कमरे के होते हैं और एक दरवाज़ा दूसरे से एक-दो गज़ के अन्तर पर ही होता है। इससे वहाँ किसी प्रकार का परदा अथवा दुराव रख सकना असम्भव होता है और भले-बुरे सभी प्रकार के चरित्र वाले पुरुषों के साथ मिल कर रहना पड़ता है। इसके फल से इन स्थानों में चरित्र सम्बन्धी भ्रष्टता की बहुत सी शिकायतें सुनने में आया करती हैं। इसके अतिरिक्त जब एक ही कमरे में कई परिवारों को रहना पड़ता है और बड़ी उम्र के लड़के-लड़कियाँ भी वहीं पर उठते-बैठते हैं तो वहाँ पर लज्जा की क्या रक्षा होती होगी, इसका अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता है। इसका फल यह होता है कि लड़के-लड़कियाँ बहुत थोड़ी अवस्था में ही स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध की सारी बातें जान लेते हैं और वे प्रायः अनेक प्रकार के दुर्गुणों के शिकार हो जाते हैं। जो लोग इस देश के निवासियों के स्वभाव से परिचित हैं, उनको यह बतलाने की ज़रूरत नहीं कि यहाँ पर नीची से नीची श्रेणी का व्यक्ति भी अपने दाम्पत्य जीवन का कुछ महत्व समझता है और जहाँ तक बन सकता है, उसे लज्जा के आवरण से ढँक कर रखना चाहता है। पर खेद है कि मज़दूर-बस्तियों में परिस्थिति से लाचार होकर उन्हीं लोगों को सब प्रकार की शरम छोड़ कर पशुओं के समान आचरण करना पड़ता है।

चरित्र-सम्बन्धी हानि का दूसरा कारण यह होता है कि उपयुक्त निवास-स्थान के अभाव और आमदनी की कमी के कारण अधिकांश मज़दूर इन स्थानों में अकेले ही जाते हैं और कई-कई वर्ष तक अपने स्त्री-बच्चों से अलग रह कर वहाँ नौकरी करते हैं। हमारे इस कथन

का प्रमाण मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट से भलीभाँति लग सकता है। उससे विदित होता है कि भारत के बड़े-बड़े नगरों में, जहाँ कल-कारख़ानों का काम विशेष रूप से होता है, स्त्रियों की संख्या पुरुषों से आधी भी नहीं होती। सन् १६२१ में कलकत्ते में स्त्रियों की संख्या एक हज़ार पुरुषों के पीछे केवल ४७० थी। यही दशा बम्बई, कराची, कानपुर आदि की है। इन स्त्रियों में भी लड़कियों की संख्या अधिक होती है और यदि केवल वयस्क पुरुषों और स्त्रियों की गणना की जाय तो कलकत्ते में ८ पुरुषों के पीछे तीन स्त्री और दूसरे नगरों में ११ पुरुषों के पीछे ४ स्त्री का अनुपात पड़ता है। इसका परिणाम क्या होता है, वह मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट के लेखक श्री० टामसन के शब्दों में सुनिए :—

"स्त्रियों से पुरुषों की संख्या बहुत अधिक होने का फल यह होता है कि इन स्थानों में अनुचित सम्बन्ध की घटनाएँ बहुत होती रहती हैं, और इसके कारण पुरुष अपनी स्त्रियों को साथ में लाने में और भी हिचकते हैं। उद्योग-धन्धों के बड़े केन्द्रों में पाई जाने वाली यह महान त्रुटि ऐसी है, जिसका सम्बन्ध केवल मज़दूरों की भलाई-बुराई से ही नहीं है, वरन् कारख़ानों के मालिकों का हित भी जिससे बहुत-कुछ सम्बन्ध रखता है। जब हम यह जानते हैं कि ये मज़दूर अधिकांश में विवाहित होते हैं, और उनकी स्त्रियाँ उनसे बहुत दूर रहती हैं, तो यह स्पष्ट है कि शहरों में उनको अप्राकृतिक जीवन बिताना पड़ता है। वहाँ उनको गृह-सुख का सर्वथा अभाव होता है और चरित्र-हीनता के दोष में फँसने की बहुत अधिक सम्भावना रहती है। इसलिए उनकी एकमात्र आकांक्षा यही रहती है कि किसी प्रकार आवश्यकीय रुपया कमा कर घर चले जायँ। ऐसी अवस्था में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि उनके मालिक काम के सम्बन्ध में उनकी लापरवाही की शिकायत करें और उनको सदैव अस्थिर पाएँ।"

एक दूसरे भारतीय लेखक, जिन्होंने देश के प्रायः सभी उद्योग-धन्धों के प्रधान केन्द्रों में जाकर इस समस्या की जाँच की है, लिखते हैं :—

"हमारे अधिकांश कल-कारख़ानों के नगरों में चरित्र-हीनता तथा अन्य दुर्गुणों का दौर-दौरा है। अभागे मज़दूरों को, जिन्हें अत्यधिक काम करने पर भी गुज़र कर सकने के लायक़ वेतन नहीं मिलता और जिनका कुटुम्ब सैकड़ों मील की दूरी पर रहता है, शराब की दूकान ही एक ऐसा स्थान दिखलाई देता है जहाँ जाकर वे शारीरिक और मानसिक वेदना को भूल सकते हैं और थोड़ी देर के लिए अपनी तबीयत को ख़ुश कर सकते हैं। बाज़ारू औरतें और वेश्याएँ ही उनके मनोविनोद का एकमात्र साधन होती हैं। घटिया दर्जे की देशी शराब से बदहवास होकर वे गुण्डेपन और बदमाशी के काम करने लगते हैं। × × × कलकत्ते की जूट मिलों के डॉक्टरों के रजिस्टर की जाँच करने से विदित होता है कि जो मज़दूर उनके पास इलाज कराने आते हैं वे प्रायः आतशक या अन्य गुप्तेन्द्रिय सम्बन्धी रोगों में ग्रस्त होते हैं। यह स्पष्ट है कि इसका कारण इन स्थानों में उनका अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करना ही होता है। अन्य प्रान्तों की भी यही अवस्था है और वहाँ के मज़दूरों को भी ऐसी ही दुर्दशा में रहना पड़ता है।"

इन उद्धरणों से यह समझ सकना कठिन नहीं है कि आधुनिक उद्योग-धन्धों की लहर ने जहाँ इस देशवासियों के कौटुम्बिक जीवन में उथल-पुथल मचा दी है वहाँ उनके चरित्र पर भी बड़ा गहरा आघात किया है। जो सीधे-सादे ग्राम-निवासी छल-छिद्र का नाम नहीं जानते थे और आडम्बर-रहित प्राकृतिक जीवन व्यतीत करना जिनका स्वभाव था, उनको इन जनाकीर्ण नगरों की दूषित परिस्थिति दुराचारी, शराबी और हुल्लड़बाज़ बना देती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि सचरित्रता हमारे धर्म का एक प्रधान अङ्ग है और अब भी इस देश के निवासियों की दृष्टि में उसका महत्व अन्य देश वालों की अपेक्षा अधिक है, पर प्राकृतिक नियम अटल होते हैं और उनके विरुद्ध चलने पर मनुष्य का पतन अवश्यम्भावी है। जब हम देखते हैं कि सब प्रकार से समझदार, शिक्षित और साधन-सम्पन्न व्यक्ति भी, जिनके पास मनोविनोद की अनेक सामग्रियाँ रहती हैं, अपने मन को संयम से नहीं रख सकते तो फिर सर्वथा अशिक्षित तथा संस्कृति-विहीन लोगों से यह आशा किस प्रकार की जा सकती है कि वे वर्षों तक अपनी पत्नी से अलग रह कर चरित्र की रक्षा कर सकेंगे। इस परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए जब हम शहरों में वेश्याओं की बढ़ती हुई संख्या के प्रश्न पर विचार

करते हैं तो हमारे हृदय में एक प्रकार की निराशा का भाव उत्पन्न होता है और सुधारकों की चेष्टा तथा सरकारी क़ायदे-क़ानून अधिकांश में निरर्थक जान पड़ते हैं। क्योंकि जब तक वहाँ स्त्री और पुरुषों की संख्या में घोर वैषम्य बना रहेगा और अधिकांश युवावस्था प्राप्त पुरुषों को बाध्य होकर वर्षों तक विपत्नीक जीवन बिताना पड़ेगा तब तक दुराचार और व्यभिचार का प्रसार भी बढ़ता ही रहेगा। हमारे सुधारकों को शायद ही इस बात का पता होगा कि जिस बात को वे केवल मनुष्यों के स्वभाव का दोष समझ कर क़ानून द्वारा रोकने की चेष्टा करते हैं, उसका एक बड़ा कारण शहरों में मकानों का अभाव और उनका अत्यधिक किराया होता है। यदि इन बातों का सुधार किया जा सके तो वेश्याओं की संख्या अपने आप बहुत कुछ कम हो सकती है।

मकानों का किराया

यहाँ पर शहरों में मकानों के किराए के सम्बन्ध में भी दो-एक बातें लिखनी आवश्यक हैं। मकानों के मालिक जब देखते हैं कि लोग उनके मकानों में रहने को लाचार हैं, तो वे बिना इस बात ख़याल किए कि उनमें रहने से लोगों को आराम मिलेगा या तकलीफ़, इस ढङ्ग से मकान बनवाते हैं जिससे कम से कम ख़र्च में उनको अधिक से अधिक लाभ हो सके। इन मकानों में हवा और रोशनी के प्रवेश कर सकने का बहुत ही कम ध्यान रक्खा जाता है और लोगों के उठने-बैठने तथा बच्चों के खेलने के लिए ख़ाली जगह भी बिल्कुल नहीं छोड़ी जाती। जहाँ इङ्गलैण्ड के मज़दूरों के रहने के प्रत्येक घर में तीन शयन-गृहों, रसोई-घर, स्नान-गृह, और भण्डार आदि की व्यवस्था क़ानून द्वारा अनिवार्य कर दी गई है, हमारे यहाँ मज़दूरों को नहाने-धोने के लिए पूरा पानी भी नहीं मिलता और पाख़ाने के सम्बन्ध में बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। मज़दूर-बस्तियों में जिन लोगों ने स्त्रियों और पुरुषों को घड़े लेकर पानी के नल पर घण्टों प्रतीक्षा करते देखा है और वहाँ प्रायः होने वाले झगड़ों का जिनको कुछ पता है वे भली-भाँति समझ सकते हैं कि इन ग़रीब लोगों को पानी तक के लिए किस प्रकार तरसना पड़ता है। यही दशा पाख़ानों की है। अनेक मज़दूर-बस्तियों में चालीस-चालीस और पचास-पचास परिवारों के पीछे एक सार्वजनिक पाख़ाना होता है, जिसके सामने सुबह के वक़्त पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों की एक बड़ी भीड़ खड़ी रहती है और सभी प्रायः पहले जाने की चेष्टा किया करते हैं। ऐसी अवस्था में सङ्कोच, लज्जा अथवा भद्रता के नियमों का कहाँ तक पालन हो सकता है, यह बतलाने की ज़रूरत नहीं। उदाहरणार्थ नागपुर के १४,४५५ घरों में पाख़ाना नहीं है। इनमें रहने वालों के लिए म्युनिसिपैलिटी की तरफ़ से ५६ पाख़ाने बनवाए गए हैं, जिनमें ११०० बैठकें हैं। तो भी लोगों की संख्या को देखते हुए यह प्रबन्ध यथेष्ट नहीं है और नतीजा यह होता है कि लड़के-लड़कियाँ प्रायः घरों के आस-पास गली-कूचों में ही पाख़ाना जाया करते हैं और मौक़ा लगने पर बड़ी उम्र के व्यक्ति भी वहीं बैठ जाते हैं। इससे वहाँ कितनी गन्दगी रहती होगी तथा लोगों के स्वास्थ्य पर इसका कैसा प्रभाव पड़ता होगा, यह स्पष्ट है।

इतने पर भी इन मकानों का किराया इतना कस कर लिया जाता है कि थोड़े वेतन पाने वाले मज़दूरों के लिए उसका दे सकना बड़ा कष्टकर होता है। उदाहरण के लिए बम्बई में एक मामूली मज़दूर को कपड़े की मिलों में २० या २५ रु० मासिक वेतन दिया जाता है। इसमें से उसे एक अन्धकारपूर्ण और अशुद्ध वायु वाले कमरे के लिए, जिसकी लम्बाई-चौड़ाई मुश्किल से १०-१० फ़ीट होती है, ४ रु० से ७॥ रु० प्रति मास तक किराया देना पड़ता है। यह कमरा भी उसे मकान-मालिक की बहुत कुछ ख़ुशामद करने अथवा किसी परिचित व्यक्ति की सिफ़ारिश करने पर मिलता है। यदि उसे ऐसा कोई कमरा नहीं मिल सकता तो उसे सरकारी चालों में रहने को जाना पड़ता है, जिनके कमरे प्राइवेट चालों से कुछ अच्छे अवश्य होते हैं, पर उनका किराया १०॥ रु० से १३॥ रु० तक होता है। नतीजा यह होता है कि कितने ही मज़दूर जब यह देखते हैं कि उनकी आमदनी का एक तिहाई अथवा आधा भाग किराए में ही चला जायगा और वे अपने घर वालों के सहायतार्थ कुछ न भेज सकेंगे तो वे अपने किसी सम्बन्धी या मित्र के घर १० या १२ रु० प्रति मास में खाने का बन्दोबस्त कर लेते हैं और अपनी दो-चार ज़रूरत की चीज़ों को उसी के कमरे के एक कोने में रख देते हैं।

रात्रि के समय वे बरामदे में या खुली हुई जगह में सो रहते हैं। बम्बई में संयुक्त-प्रान्त और पञ्जाब के कम से कम ७०-८० हज़ार व्यक्ति इसी प्रकार गुज़ारा करते हैं।

सुधार के उपाय

भारतीय श्रमजीवियों की अवस्था जैसी निर्बल और असङ्गठित है तथा भाग्यवाद ने उनको जैसा निष्क्रिय और अनुचित रूप से सन्तोषी बना रक्खा है, उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि वे स्वयम् इस विषय में सुधार के लिए कोई चेष्टा करेंगे। यह सच है कि वे वर्तमान अवस्था में कष्ट अवश्य अनुभव करते हैं और अच्छे मकानों के लिए कुछ ज़्यादा ख़र्च करने को भी राज़ी हो जाते हैं, पर उनसे यह आशा करना व्यर्थ है कि वे इस समस्या के वास्तविक महत्त्व को समझ सकेंगे और वर्तमान अवस्था में परिवर्तन करने के लिए जी-जान से कोशिश करेंगे। फिर यदि वे किसी प्रकार इसके लिए तैयार भी हो जाएँ तो उनके पास इतने साधन नहीं कि वे बिना किसी की सहायता के स्वयम् इस समस्या को हल कर सकें। यह कार्य तो सरकार, म्युनिसिपैलिटियों और अन्य सार्वजनिक संस्थाओं का ही है कि वे इन गन्दे तथा अस्वास्थ्यकर स्थानों का, जिन्हें 'प्लेग-स्पॉट' या बीमारियों का उद्गम-स्थान कहा जाता है, सुधार करें और उन्हें मनुष्यों के बसने योग्य बनावें। इस सम्बन्ध में रॉयल कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में अनेक उपयोगी प्रस्ताव किए हैं, जिनमें से मुख्य-मुख्य बातें हम यहाँ देते हैं।

म्युनिसिपैलिटियों का कर्त्तव्य

म्युनिसिपैलिटियों का सबसे पहला कर्त्तव्य यह है कि वे एक योग्य हेल्थ-ऑफ़ीसर नियुक्त करें, जो नगर के प्रत्येक भाग की सफ़ाई पर भली-भाँति ध्यान दे। स्वास्थ्य-रक्षा, गृह-निर्माण और सफ़ाई के सम्बन्ध में जितने नियम और उपनियम बनाए गए हों उनको पूरी तरह काम में लाया जाय और जहाँ तक सम्भव हो उनमें और संशोधन किए जाएँ। सबसे अधिक ध्यान नए मकानों के बनाने तथा पुराने मकानों में परिवर्तन करने की अर्ज़ियों पर देना आवश्यक है। उनकी मञ्ज़ूरी देते समय इस बात पर पूरी निगाह रक्खी जाय कि इसके फल से तङ्गी पैदा न हो। इस बात का ख़याल केवल रहने के घरों के सम्बन्ध में ही नहीं रखना चाहिए, वरन् फ़ैक्टरियों, कारख़ानों और अन्य इमारतों के सम्बन्ध में भी यह नियम लागू होना चाहिए। जिन शहरों में अभी उद्योग-धन्धों की वृद्धि हो रही है और नगर के बाहरी भाग में नए कारख़ाने और मुहल्ले तैयार हो रहे हैं, उनको अभी से ऐसे नक़्शे के मुताबिक़ बनवाया जाय जिससे भविष्य में तङ्गी और गन्दगी की शिकायत पैदा न हो सके। यह सच है कि जब तक सर्वसाधारण में इस सम्बन्ध में जागृति न फैले तब तक इस उद्देश्य में सफलता प्राप्त कर सकना कठिन है, पर यदि इन संस्थाओं में दो-चार सार्वजनिक कार्य-कर्ता भी ऐसे दृढ़ हों कि वे इन बुराइयों को दूर करने का निश्चय कर लें तो जनता को भी इस विषय का महत्व समझाया जा सकता है।

कारख़ानों के मालिक

यह सच है कि नगर की गृह-व्यवस्था की नीति निर्धारित करना सरकार और म्युनिसिपैलिटियों के ही हाथ में है, तो भी इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि शहरों में अतिरिक्त जन-संख्या का कारण उद्योग-धन्धों की वृद्धि ही है। ऐसी दशा में कारख़ाने वालों का कर्तव्य है कि वे अपने कर्मचारियों के रहने की व्यवस्था में यथासम्भव सहयोग करें। यद्यपि अब भी अनेक बड़े कारख़ाने वालों ने अपने मज़दूरों के लिए क्वार्टर्स बनाए हैं, जिनमें से कितने ही काफ़ी अच्छे हैं, पर कोई कारख़ाना इतने मकान नहीं बनवा सका है जिनमें उसके तमाम कर्मचारी रह सकें। इनमें ज़्यादा से ज़्यादा उनके ४० फ़ी सैकड़ा कर्मचारियों के लिए जगह है। मालिकों को यह समझ लेना चाहिए कि मकानों का ठीक प्रबन्ध होने में उनका भी बहुत-कुछ हित है। इससे उनके मज़दूर सन्तुष्ट रहेंगे और लगातार अधिक समय तक नौकरी कर सकेंगे, जिससे उनकी योग्यता बढ़ेगी। इससे कारख़ाने को जो आर्थिक लाभ होगा उससे मकानों में ख़र्च होने वाली रक़म का एक बड़ा हिस्सा वसूल हो जायगा।

इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट

बम्बई, कलकत्ता, रङ्गून, कानपुर आदि अनेक बड़े शहरों में इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्टों ने बहुत तङ्ग मुहल्लों को

तोड़-फोड़ कर और मकान बनाने के लिए नई ज़मीन प्रस्तुत करके इस समस्या को कुछ अंशों में हल किया है। पर ये एक बड़ी ग़लती यह करते हैं कि मकानों को तोड़ने के साथ उनमें रहने वाले लोगों के लिए नए घरों की कुछ व्यवस्था नहीं करते। इसके फल से कुछ वर्षों के लिए मकानों की और भी कमी हो जाती है और लोगों को पहले की अपेक्षा भी अधिक तङ्गी में रहना पड़ता है। फिर कितने ही इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट मज़दूरों के मुहल्लों का सुधार करने के बजाय उच्च और मध्यम श्रेणी के मुहल्लों को अधिक अच्छा बनाने की तरफ़ विशेष ध्यान देते हैं। बम्बई के इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट ने मज़दूरों के लिए कुछ नए ढङ्ग की स्वास्थ्यकर चालें बनाई हैं, पर अन्य ट्रस्टों ने इस सम्बन्ध में अपने कर्तव्य का बहुत कम पालन किया है। यदि ये ट्रस्ट चेष्टा करें तो ग़रीब लोगों को बहुत कम किराए पर अथवा थोड़ी-थोड़ी रक़म क़िश्त के तौर पर देकर अच्छे मकान मिल सकते हैं।

सहयोग समितियाँ

मकानों के बनवाने वाली सहयोग समितियाँ स्थापित करना भी एक ऐसा ढङ्ग है, जिससे मज़दूरों के लिए बहुत से नए मकान तैयार हो सकते हैं और मज़दूर हमेशा के लिए इस विषय में निश्चिन्त हो सकते हैं। अहमदाबाद की कैलिको मिल ने इस सम्बन्ध में चेष्टा करके अपने कर्मचारियों के लिए रहने की व्यवस्था की है। वह इसके लिए मज़दूरों को कुछ रक़म पेशगी देती है और बाक़ी रुपया सहयोग समिति से लेकर मकान बनाया जाता है। फिर मज़दूर के वेतन में से धीरे-धीरे कुछ रक़म काट कर सहयोग-समिति का रुपया चुका दिया जाता है और वह खुद अपने मकान का मालिक बन जाता है। इससे मकानों की कमी दूर होती है, मज़दूरों को अपनी पसन्द के घर मिल जाते हैं और साथ ही उनको किफ़ायतशआरी की आदत पड़ती है।

सरकार का कर्तव्य

पर इस सम्बन्ध में सब से अधिक भार सरकार के ऊपर है। क्योंकि उसकी सहायता और प्रोत्साहन के बिना इनमें से कोई काम सफल नहीं हो सकता। इसके सिवा वह क़ानून बना कर भी ग़रीब लोगों के मकान सम्बन्धी कष्टों में बहुत कुछ कमी करा सकती है। उदाहरण के लिए जब महायुद्ध के समय मकान-मालिक दुगुना-चौगुना किराया बढ़ाने लग गए थे और इस कारण ग़रीबों का निर्वाह हो सकना असम्भव हो चला था, तो सरकार ने एक क़ानून द्वारा किराए की एक हद बाँध दी थी, जिससे अधिक उसका बढ़ा सकना असम्भव था। बम्बई में वह क़ानून अभी तक प्रचलित था और उससे मज़दूरों को बहुत सहायता मिलती थी। इसके सिवाय सरकार स्वयम् मकान बनवा कर शहरों में रहने वाले ग़रीब मज़दूरों के रहने की व्यवस्था कर सकती है। क्योंकि जैसा लीग ऑफ़ नेशन्स की रिपोर्ट से विदित होता है, किसी भी देश में सार्वजनिक रूप से मकान तैयार कराना आर्थिक दृष्टि से लाभदायक नहीं है और इसलिए धनवान लोगों अथवा निजी संस्थाओं से यह आशा करना कि वे इस कार्य को निस्सङ्कोच भाव से अपने हाथ में ले सकेंगी सम्भव नहीं है। पर सरकार जैसे जनता के उपयोग के लिए रेल, तार, सड़कें, नहरें, पुल आदि बनवाती है और इस बात का ध्यान नहीं रक्खा जाता कि इनसे लाभ होगा या हानि, उसी प्रकार सरकार ही सर्वसाधारण के लिए ऐसे मकानों का निर्माण करा सकती है, जिनमें आर्थिक हानि-लाभ का ख़याल छोड़ कर लोगों के सुख और स्वास्थ्य-रक्षा पर ही लक्ष्य रक्खा जाय। यद्यपि कुछ लोगों के मतानुसार सरकार के इस प्रकार के कामों में हाथ डालने से लोगों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता अपहरण होने का भय है और कुछ लोग इससे लोगों के आलसी अथवा निरुद्योगी हो जाने का भय करते हैं, पर ये आशङ्काएँ निराधार हैं। सरकार अब भी अनेक सार्वजनिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर रही है और उससे हानि की अपेक्षा लाभ ही अधिक होता जान पड़ता है। मकानों का प्रश्न समाज के कल्याण की दृष्टि से बड़े महत्व का है और इस पर सब लोगों के स्वास्थ्य का आधार है, इसलिए यदि सरकार इसको अपने नियन्त्रण में रक्खे तो इसे अनुचित नहीं कहा जा सकता। यद्यपि अभी वह दिन दूर है, जब यह प्रस्ताव पूर्णतया कार्यरूप में परिणत हो सके, तो भी इङ्गलैण्ड और अन्य अनेक उन्नतिशील देशों की सरकारें हज़ारों की तादाद में मकान जनता के उपयोग के लिए बनवाती रहती हैं।
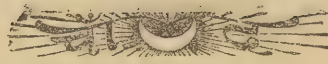
अन्त में हम इतना ही कहना चाहते हैं कि यद्यपि श्रमजीवियों की गृह-समस्या ऊपरी दृष्टि से एक साधारण विषय जान पड़ता है, पर वास्तव में यह इतना अधिक महत्वपूर्ण है कि इस पर देश और समाज का हित अनेक अंशों में निर्भर है। मज़दूर भी हमारे समाज के एक अङ्ग हैं और यदि वे गन्दगी तथा अस्वास्थ्यकर परिस्थिति में रहेंगे तो उसका कुछ न कुछ प्रभाव हमारे ऊपर भी अवश्य पड़ेगा। क्या हम नहीं देखते कि जो महामारी अथवा छूत की बीमारी पहले शहर के गन्दे मुहल्ले में फैलती है, वह धीरे-धीरे वैभवशाली लोगों के महलों और कोठियों तक भी जा पहुँचती है। मनुष्यता और सहृदयता के नाते तो ग़रीब मज़दूर हमारी सहानुभूति के पात्र हैं ही, पर साथ ही उनकी उन्नति के बिना देश के उद्योग-धन्धों की भी उन्नति नहीं हो सकती, और इसके बिना कोई देश संसार में उच्च पद प्राप्त नहीं कर सकता।

तिरस्कृत

[श्री० रमाशङ्कर मिश्र, 'श्रीपति']

उलझा-सा मेरा जीवन,
झञ्झा के झोंके खाता।
उसमें उत्पीड़न भर कर,
उलझन है कौन बढ़ाता ?

आशा का उपवन मेरा,
क्यों सहसा झुलसा जाता ?
मेरी मञ्जुल अभिलाषा,
मिट्टी में कौन मिलाता ?

पुलकित अवली अलियों की,
परिहास-भरी इतरातीं।
सुरभित सुमनावलियाँ क्यों,
कण्टक-सी चुभ-चुभ जातीं ?

मधु-मिश्रित स्वर कोकिल का,
पीड़ा-सी है उपजाता।
मलयानिल दावानल-सा,
चिनगारी है भड़काता !

अभ्यन्तर उत्कण्ठित हो,
अपना अस्तित्व मिटाता।
उच्छ्वासों में साधों का,
चिर सञ्चित कोष लुटाता।

फूटे फोलों से तप कर,
व्रीड़ा है बहती जाती।
निस्पन्दस्वर में विस्मृति
अपनी वेदना दिखाती।

निधियों का पाला जीवन,
आँसू-सा बिखरा जाता।
अभिशाप-भरा, कातर हो,
तजता निर्मम जग-नाता !

उन्मन-सा गोधूली में,
विक्षिप्त हृदय बलखाता।
लज्जित हो सूनेपन को,
अपना अपमान दिखाता।

यौवन जिसमें सुषमा थी,
करुणा जिसमें थी क्षमता।
वह हास्य ललक उठता जो,
जीवन जिसमें थी ममता।

उन्मादक रसधारा थी,
वाणी से बहती रहती।
शिशु-सा सारल्य जहाँ से,
सुषमा भी सुषमा लहती।

लालन जिनका पलकों-सा,
पालन जीवन-स्मृतियों-सा।
स्वागत होता था जिनका,
अभिसारों की घड़ियों-सा।

उस प्रणय-सलिल-सागर में,
यह झञ्झा कहाँ समाया ?
उस सौख्य-सुधा-धारा में,
यह गरल कहाँ से आया ?

किन घृणा-भरी कोरों ने,
किसको विदीर्ण कर डाला ?
आरक्त अधर ने किसके,
यह घोली कैसी हाला ?

प्रेमामृत जिसे पिला कर, प्रमुदित प्राणों-सा पाला।
सहसा ही मन-मन्दिर से, ठुकरा बाहर कर डाला !!

ईदगाह

[श्री० प्रेमचन्द]

रमज़ान के पूरे तीस रोज़ों के बाद आज ईद आई है। कितना मनोहर, कितना सुहावना प्रभात है। वृक्षों पर कुछ अजीब हरियाली है, खेतों में कुछ अजीब रौनक़ है, आसमान पर कुछ अजीब लालिमा है। आज का सूर्य देखो, कितना प्यारा, कितना शीतल है, मानों संसार को ईद की बधाई दे रहा है। गाँव में कितनी हलचल है। ईदगाह जाने की तैयारियाँ हो रही हैं। किसी के कुरते में बटन नहीं है, पड़ोस के घर से सुई-तागा लेने दौड़ा जा रहा है। किसी के जूते कड़े हो गए हैं, उनमें तेल डालने के लिए तेली के घर भागा जाता है। जल्दी-जल्दी बैलों को सानी-पानी दे दें। ईदगाह से लौटते-लौटते दोपहर हो जाएगा। तीन कोस का पैदल रास्ता, फिर सैकड़ों आदमियों से मिलना-भेंटना। दोपहर के पहले लौटना असम्भव है। लड़के सबसे ज़्यादा प्रसन्न हैं। किसी ने एक रोज़ा रक्खा है, वह भी दोपहर तक, किसी ने वह भी नहीं। लेकिन ईदगाह जाने की ख़ुशी उनके हिस्से की चीज़ है। रोज़े बड़े-बूढ़ों के लिए होंगे। इनके लिए तो ईद है। रोज़ ईद का नाम रटते थे। आज वह आ गई। अब जल्दी पड़ी है कि लोग ईदगाह क्यों नहीं चलते। इन्हें गृहस्थी की चिन्ताओं से क्या प्रयोजन! सेवैयों के लिए दूध और शक्कर घर में है या नहीं, इनकी बला से, ये तो सेवैयाँ खायँगे। वह क्या जानें अब्बाजान क्यों बदहवास चौधरी क़ायमअली के घर दौड़े जा रहे हैं। उन्हें क्या ख़बर कि चौधरी आज आँखें बदल लें तो यह सारी ईद मुहर्रम हो जाय। उनकी अपनी जेबों में तो कुबेर का धन भरा हुआ है। बार-बार जेब से अपना ख़ज़ाना निकाल कर गिनते हैं और ख़ुश होकर फिर रख लेते हैं। महमूद गिनता है, एक, दो, दस, बारह! उसके पास बारह पैसे हैं। मोहसिन के पास, एक, दो, तीन, आठ, नौ, पन्द्रह पैसे हैं। इन्हीं अनगिनती पैसों में अनगिनती चीज़ें लाएँगे—खिलौने, मिठाइयाँ, बिगुल, गेंद और जाने क्या-क्या। और सबसे ज़्यादा प्रसन्न है हामिद, वह चार-पाँच साल का ग़रीब-सूरत, दुबला-पतला लड़का, जिसका बाप गत वर्ष हैज़े की भेंट हो गया और माँ न जाने क्यों पीली होती-होती एक दिन मर गई। किसी को पता न चला क्या बीमारी है। कहती भी तो कौन सुनने वाला था। दिल पर जो कुछ बीतती थी, वह दिल में ही सहती थी और जब न सहा गया तो संसार से विदा हो गई। अब हामिद अपनी बूढ़ी दादी अमीना की गोद में सोता है और उतना ही प्रसन्न है। उसके अब्बाजान रुपए कमाने गए हैं। बहुत सी थैलियाँ लेकर आएँगे। अम्मीजान अल्लाह मियाँ के घर से उसके लिए बड़ी

अच्छी-अच्छी चीज़ें लाने गई हैं। इसलिए हामिद प्रसन्न है। आशा तो बड़ी चीज़ है, और फिर बच्चों की आशा! उनकी कल्पना तो राई का पर्वत बना लेती है। हामिद के पाँव में जूते नहीं हैं, सिर पर एक पुरानी-धुरानी टोपी है, जिसका गोटा काला पड़ गया है, फिर भी वह प्रसन्न है। जब उसके अब्बाजान थैलियाँ और अम्मीजान नियामतें लेकर आएँगी, तो वह दिल के अरमान निकाल लेगा। तब देखेगा महमूद और मोहसिन और नूरे और सम्मी कहाँ से उतने पैसे निकालेंगे। अभागिनी अमीना अपनी कोठरी में बैठी रो रही है। आज ईद का दिन और उसके घर में दाना नहीं! आज आबिद होता तो क्या इसी तरह ईद आती और चली जाती! इस अन्धकार और निराशा में वह डूबी जा रही है। किसने बुलाया था इस निगोड़ी ईद को। इस घर में उसका काम नहीं है। लेकिन हामिद! उसे किसी के मरने-जीने से क्या मतलब? उसके अन्दर प्रकाश है, बाहर आशा। विपत्ति अपना सारा दल-बल लेकर आए, हामिद की आनन्द भरी चितवन उसका विध्वंस कर देगी।

हामिद भीतर जाकर दादी से कहता है—तुम डरना नहीं अम्माँ, मैं सबसे पहले आऊँगा। बिलकुल न डरना।

अमीना का दिल कचोट रहा है। गाँव के बच्चे अपने-अपने बाप के साथ जा रहे हैं। हामिद का बाप अमीना के सिवा और कौन है। उसे कैसे अकेले मेले जाने दे। उस भीड़-भाड़ में बच्चा कहीं खो जाय तो क्या हो। नहीं, अमीना उसे यों न जाने देगी। नन्हीं सी जान! तीन कोस चलेगा कैसे! पैर में छाले पड़ जायँगे। जूते भी तो नहीं हैं। वह थोड़ी-थोड़ी दूर पर उसे गोद ले लेगी। लेकिन यहाँ सेवैयाँ कौन पकाएगा? पैसे होते तो लौटते-लौटते सब सामग्री जमा करके चटपट बना लेती। यहाँ तो घण्टों चीज़ें जमा करते लगेंगे। माँगे ही का तो भरोसा ठहरा। उस दिन फ़हीमन के कपड़े सिए थे। आठ आने पैसे मिले थे। उस अठन्नी को ईमान की तरह बचाती चली आती थी इसी ईद के लिए। लेकिन कल ग्वालन सिर पर सवार हो गई तो क्या करती। हामिद के लिए कुछ नहीं है तो दो पैसे का रोज़ दूध तो चाहिए ही। अब कुल दो आने पैसे बच रहे हैं। तीन पैसे हामिद की जेब में, पाँच अमीना के बटवे में। यही तो बिसात है और ईद का त्यौहार, अल्लाह ही बेड़ा पार लगावे। धोबन और नाइन और मेहतरानी और चूड़िहारन सभी तो आएँगी। सभी को सेवैयाँ चाहिए। और थोड़ा किसी की आँखों नहीं लगता। किस-किस से मुँह चुराएगी। और मुँह क्यों चुराए? साल भर का त्यौहार है। ज़िन्दगी ख़ैरियत से रहे। उनकी तक़दीर भी तो उसी के साथ है। बच्चे को ख़ुदा सलामत रक्खे, ये दिन भी कट जायँगे।

गाँव से मेला चला। और बच्चों के साथ हामिद भी जा रहा था। कभी सबके सब दौड़ कर आगे निकल जाते। फिर किसी पेड़ के नीचे खड़े होकर साथ वालों का इन्तज़ार करते। यह लोग क्यों इतना धीरे-धीरे चल रहे हैं। हामिद के पैरों में तो जैसे पर लग गए हैं। वह कभी थक सकता है! शहर का दामन आ गया। सड़क के दोनों ओर अमीरों के बग़ीचे हैं। पक्की चारदीवारी बनी हुई है। पेड़ों में आम और लीचियाँ लगी हुई हैं। कभी-कभी कोई लड़का कङ्कड़ी उठा कर आम पर निशाना लगाता है। माली अन्दर से गाली देता हुआ निकलता है। लड़के वहाँ से एक फ़र्लाङ्ग पर हैं। ख़ूब हँस रहे हैं। माली को कैसा उल्लू बनाया है।

बड़ी-बड़ी इमारतें आने लगीं। यह अदालत है, यह कॉलेज है, यह क्लबघर है। इतने बड़े कॉलेज में कितने लड़के पढ़ते होंगे! सब लड़के नहीं हैं जी! बड़े-बड़े आदमी हैं, सच। उनकी बड़ी-बड़ी मूँछें हैं। इतने बड़े हो गए, अभी तक पढ़ते जाते हैं। न जाने कब तक पढ़ेंगे। और क्या करेंगे इतना पढ़ कर। हामिद के मदरसे में दो-तीन बड़े-बड़े लड़के हैं, बिलकुल तीन कौड़ी के, रोज़ मार खाते हैं, काम से जी चुराने वाले। इस जगह भी उसी तरह के लोग होंगे, और क्या। क्लबघर में जादू होता है। सुना है, यहाँ मुरदों की खोपड़ियाँ दौड़ती हैं। और बड़े-बड़े तमाशे होते हैं। पर किसी को अन्दर नहीं जाने देते। और यहाँ शाम को साहब लोग खेलते हैं। बड़े-बड़े आदमी खेलते हैं, मूँछों दाढ़ी वाले। और मेमें भी खेलती हैं, सच। हमारी अम्माँ को तो वह दे दो, क्या नाम है, बैट, तो उसे पकड़ ही न सकें। घुमाते ही लुढ़क जायँ।

महमूद ने कहा—हमारी अम्मीजान का तो हाथ काँपने लगे, अल्ला कसम।

मोहसिन बोला—चलो, मनों आटा पीस डालती हैं। जरा सा बैट पकड़ लेंगी तो हाथ काँपने लगेंगे। सैकड़ों घड़े पानी रोज निकालती हैं। पाँच घड़े तो तेरी भैंस पी जाती है। किसी मेम को एक घड़ा पानी भरना पड़े तो आँखों तले अँधेरा आ जाय।

महमूद—लेकिन दौड़तीं तो नहीं, उछल-कूद तो नहीं सकतीं।

मोहसिन—हाँ, उछल-कूद नहीं सकतीं। लेकिन उस दिन मेरी गाय खुल गई थी और चौधरी के खेत में जा पड़ी थी, तो अम्माँ इतना तेज दौड़ीं कि मैं उन्हें न पा सका, सच।

आगे चले। हलवाइयों की दूकानें शुरू हुईं। आज ख़ूब सजी हुई थीं। इतनी मिठाइयाँ कौन खाता है। देखो न, एक-एक दूकान पर मनों होंगी। सुना है, रात को जिन्नात आकर खरीद ले जाते हैं। अब्बा कहते थे कि आधी रात को एक आदमी हर दूकान पर जाता है और जितना माल बचा होता है, वह सब तुलवा लेता है। और सचमुच के रुपए देता है, बिलकुल ऐसे ही रुपए।

हामिद को यक़ीन न आया—ऐसे रुपए जिन्नात को कहाँ से मिल जायँगे?

मोहसिन ने कहा—जिन्नात को रुपयों की कमी। जिस खजाने में चाहें चले जायँ। लोहे के दरवाजे तक उन्हें नहीं रोक सकते जनाब, आप हैं किस फेर में। हीरे-जवाहरात तक उनके पास रहते हैं। जिससे खुश हो गए उसे टोकरों जवाहरात दे दिए। अभी यहाँ बैठे हैं, पाँच मिनिट में कहो कलकत्ता पहुँच जायँ।

हामिद ने फिर पूछा—जिन्नात बहुत बड़े-बड़े होते होंगे?

मोहसिन—एक-एक आसमान के बराबर होता है जी। जमीन पर खड़ा हो जाय तो उसका सिर आसमान से जा लगे। मगर चाहें तो एक लोटे में घुस जायँ।

हामिद—लोग उन्हें कैसे खुश करते होंगे। कोई मुझे वह मन्तर बता दे तो एक जिन्न को खुश कर लूँ।

मोहसिन—अब यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन चौधरी साहब के काबू में बहुत से जिन्नात हैं। कोई चीज चोरी जाय, चौधरी साहब उसका पता लगा देंगे और चोर का नाम भी बता देंगे। जुमेराती का बछवा उस दिन खो गया था। तीन दिन हैरान हुए, कहीं न मिला। तब झक मार कर चौधरी के पास गए। चौधरी ने तुरन्त बता दिया मवेशीख़ाने में है। और वहीं मिला। जिन्नात आकर उन्हें सारे जहान की खबरें दे जाते हैं।

अब सबकी समझ में आ गया कि चौधरी के पास क्यों इतना धन है, और क्यों उनका इतना सम्मान है।

आगे चले। यह पुलिस लाइन है। यहीं सब कानिसटिबल कवायद करते हैं। रैटन! फाम फो! रात को बेचारे घूम-घूम कर पहरा देते हैं, नहीं चोरियाँ हो जायँ।

मोहसिन ने प्रतिवाद किया—यह कानिसटिबल पहरा देते हैं! जभी तुम बहुत जानते हो, अजी हजरत यही चोरी कराते हैं। शहर के जितने चोर-डाकू हैं, सब इनसे मिले रहते हैं। रात को ये लोग चोरों से तो कहते हैं चोरी करो और आप दूसरे मुहल्ले में जाकर 'जागते रहो! जागते रहो!' पुकारते हैं। जभी इन लोगों के पास इतने रुपए आते हैं। मेरे माँमू एक थाने में कानिसटिबल हैं। बीस रुपए महीना पाते हैं। लेकिन पचास रुपए घर भेजते हैं। अल्ला कसम। मैंने एक बार पूछा था कि माँमू, आप इतने रुपए कहाँ से लाते हैं। हँस कर कहने लगे—बेटा, अल्लाह देता है। फिर आप ही बोले—हम लोग चाहें तो एक दिन में लाखों मार लाएँ। हम तो इतना ही लेते हैं, जिसमें अपनी बदनामी न हो और नौकरी न चली जाय।

हामिद ने पूछा—यह लोग चोरी करवाते हैं तो कोई इन्हें पकड़ता नहीं?

मोहसिन उसकी नादानी पर दया दिखा कर बोला—अरे पागल, इन्हें कौन पकड़ेगा। पकड़ने वाले तो यह लोग खुद हैं। लेकिन अल्लाह इन्हें सजा भी खूब देता है। हराम का माल हराम में जाता है। थोड़े दिन हुए माँमू के घर में आग लग गई। सारी लेई-पूँजी जल गई। एक बरतन तक न बचा। कई दिन पेड़ के नीचे सोए, अल्ला कसम, पेड़ के नीचे। फिर न जाने कहाँ से एक सौ कर्ज लाए तो बरतन भाँडे आए।

हामिद—एक सौ तो पचास से ज्यादा होते हैं?

कहाँ पचास कहाँ एक सौ। पचास एक थैली भर होता है। सौ तो दो थैलियों में भी न आवें।

अब बस्ती घनी होने लगी थी। ईदगाह जाने वालों की टोलियाँ नज़र आने लगीं। एक से एक भड़कीले

वस्त्र पहने हुए। कोई इक्के-ताँगे पर सवार, कोई मोटर पर, सभी इत्र में बसे, सभी के दिलों में उमङ्ग। ग्रामीणों का यह छोटा सा दल, अपनी विपन्नता से बेख़बर, सन्तोष और धैर्य में मगन चला जा रहा था। बच्चों के लिए नगर की सभी चीज़ें अनोखी थीं। जिस चीज़ की ओर ताकते, ताकते ही रह जाते। और पीछे से बार-बार हार्न की आवाज़ होने पर भी न चेतते। हामिद तो मोटर के नीचे जाते-जाते बचा।

सहसा ईदगाह नज़र आया। ऊपर इमली के घने वृक्षों का साया है। नीचे पक्का फ़र्श है, जिस पर जाज़िम बिछा हुआ है। और रोज़ेदारों की पंक्तियाँ एक के पीछे एक न जाने कहाँ तक चली गई हैं, पक्के जगत के नीचे तक, जहाँ जाज़िम भी नहीं है। नए आने वाले आकर पीछे की क़तार में खड़े हो जाते हैं। आगे जगह नहीं है। यहाँ कोई धन और पद नहीं देखता। इस्लाम की निगाह में सब बराबर हैं। इन ग्रामीणों ने भी वज़ू किया और पिछली पंक्ति में खड़े हो गए। कितना सुन्दर सञ्चालन है, कितनी सुन्दर व्यवस्था! लाखों सिर एक साथ सिजदे में झुक जाते हैं, फिर सब के सब एक साथ खड़े हो जाते हैं, एक साथ झुकते हैं और एक साथ घुटनों के बल बैठ जाते हैं। कई बार यही क्रिया होती है, जैसे बिजली की लाखों बत्तियाँ एक साथ प्रदीप्त हों और एक साथ बुझ जायँ, और यही क्रम चलता रहे। कितना अपूर्व दृश्य था, जिसकी सामूहिक क्रियाएँ, विस्तार और अनन्तता हृदय को श्रद्धा, गर्व और आत्मानन्द से भर देती थीं, मानों भ्रातृत्व का एक सूत्र इन समस्त आत्माओं को एक लड़ी में पिरोए हुए है।

२

नमाज़ ख़त्म हो गई है। लोग आपस में गले मिल रहे हैं। तब मिठाई और खिलौनों की दूकानों पर धावा होता है। ग्रामीणों का यह दल इस विषय में बालकों से कम उत्साही नहीं है। यह देखो हिंडोला है। एक पैसा देकर चढ़ जाओ। कभी आसमान पर जाते हुए मालूम होगे, कभी ज़मीन पर गिरते हुए। यह चर्ख़ी है। लकड़ी के हाथी, घोड़े, ऊँट छरियों से लटके हुए हैं। एक पैसा देकर बैठ जाओ और पचीस चक्करों का मज़ा लो। महमूद और मोहसिन और नूरे और सम्मी इन घोड़ों और ऊँटों पर बैठते हैं। हामिद दूर खड़ा है। तीन ही पैसे तो उसके पास हैं। अपने कोष का एक तिहाई ज़रा सा चक्कर खाने के लिए नहीं दे सकता।

सब चर्ख़ियों से उतरते हैं। अब खिलौने लेंगे। इधर दूकानों की क़तार लगी हुई है। तरह-तरह के खिलौने हैं—सिपाही और गुजरिया, और राजा और वकील, और भिश्ती और धोबिन और साधू। वाह! कितने सुन्दर खिलौने हैं! अब बोला ही चाहते हैं। महमूद सिपाही लेता है, ख़ाकी वर्दी और लाल पगड़ी वाला, कन्धे पर बन्दूक़ रक्खे हुए, मालूम होता है अभी क़वायद किए चला आ रहा है। मोहसिन को भिश्ती पसन्द आया। कमर झुकी हुई है, ऊपर मशक रक्खे हुए है, मशक का मुँह एक हाथ से पकड़े हुए है। कितना प्रसन्न है। शायद कोई गीत गा रहा है। बस, मशक से पानी उड़ेला ही चाहता है। नूरे को वकील से प्रेम है। कैसी विद्वत्ता है उनके मुख पर, काला चुग़ा, नीचे सफ़ेद अचकन, अचकन के सामने की जेब में घड़ी की सुनहरी ज़ञ्जीर, एक हाथ में क़ानून का पोथा लिए हुए। मालूम होता है, अभी किसी अदालत से जिरह या बहस किए चले आ रहे हैं। यह सब दो-दो पैसे के खिलौने हैं। हामिद के पास कुल तीन पैसे हैं। इतने मँहगे खिलौने वह कैसे ले? खिलौना कहीं हाथ से छूट पड़े तो चूर-चूर हो जाय। ज़रा पानी पड़ा तो सारा रङ्ग धुल जाय। ऐसे खिलौने लेकर वह क्या करेगा, किस काम के!

मोहसिन कहता है—मेरा भिश्ती रोज़ पानी दे जायगा, साँझ सवेरे।

महमूद—और मेरा सिपाही घर का पहरा देगा। कोई चोर आएगा तो फौरन बन्दूक फैर कर देगा।

नूरे—और मेरा वकील खूब मुकदमा लड़ेगा।

सम्मी—और मेरी धोबिन रोज कपड़े धोएगी।

हामिद खिलौनों की निन्दा करता है—मिट्टी ही के तो हैं, गिरें तो चकनाचूर हो जायँ। लेकिन ललचाई हुई आँखों से खिलौनों को देख रहा है और चाहता है कि ज़रा देर के लिए उन्हें हाथ में ले सकता। उसके हाथ अनायास ही लपकते हैं, लेकिन लड़के इतने त्यागी नहीं होते, विशेषकर जब अभी नया शौक़ है। हामिद ललचता रह जाता है।

खिलौनों के बाद मिठाइयाँ आती हैं। किसी ने रेउड़ियाँ ली हैं, किसी ने गुलाब जामुन, किसी ने सोहन-हलवा। मज़े से खा रहे हैं। हामिद उनकी बिरादरी से पृथक् है। अभागे के पास तीन पैसे हैं। क्यों नहीं कुछ लेकर खाता? ललचाई आँखों से सबकी ओर देखता है।

मोहसिन कहता है—हामिद यह रेउड़ी ले जा, कितनी खुशबूदार हैं!

हामिद को सन्देह हुआ, यह केवल क्रूर विनोद है, मोहसिन इतना उदार नहीं है, लेकिन यह जानकर भी वह उसके पास जाता है। मोहसिन दोने से एक रेउड़ी निकाल कर हामिद की ओर बढ़ाता है। हामिद हाथ फैलाता है। मोहसिन रेउड़ी अपने मुँह में रख लेता है। महमूद, नूरे और सम्मी खूब तालियाँ बजा-बजा कर हँसते हैं। हामिद खिसिया जाता है।

मोहसिन—अच्छा अबकी जरूर देंगे हामिद, अल्ला कसम ले जाव।

हामिद—रक्खे रहो। क्या मेरे पास पैसे नहीं हैं।

सम्मी—तीन ही पैसे तो हैं। तीन पैसे में क्या-क्या लोगे?

महमूद—हमसे गुलाब जामुन ले जाव हामिद। मोहसिन बदमाश है।

हामिद—मिठाई कौन बड़ी नेमत है। किताब में इसकी कितनी बुराइयाँ लिखी हैं।

मोहसिन—लेकिन दिल में कह रहे होगे कि मिले तो खा लें। अपने पैसे क्यों नहीं निकालते?

महमूद—हम समझते हैं, इसकी चालाकी। जब हमारे सारे पैसे खर्च हो जाएँगे तो हमें ललचा-ललचा कर खायगा।

मिठाइयों के बाद कुछ दूकानें लोहे की चीज़ों की हैं। कुछ गिलट और नक़ली गहनों की। लड़कों के लिए यहाँ कोई आकर्षण न था। वह सब आगे बढ़ जाते हैं। हामिद लोहे की दूकान पर रुक जाता है। कई चिमटे रक्खे हुए थे। उसे ख़याल आया, दादी के पास चिमटा नहीं है। तवे से रोटियाँ उतारती हैं तो हाथ जल जाता है। अगर वह चिमटा ले जाकर दादी को दे दे तो वह कितनी प्रसन्न होंगी! फिर उनकी उँगलियाँ कभी न जलेंगी। घर में एक काम की चीज़ हो जायगी। खिलौनों से क्या फ़ायदा। व्यर्थ में पैसे ख़राब होते हैं। ज़रा देर ही तो ख़ुशी होती है। फिर तो खिलौनों को कोई आँख उठा कर नहीं देखता। या तो घर पहुँचते-पहुँचते टूट-फूट बराबर हो जायँगे, या छोटे बच्चे जो मेले नहीं आए हैं, ज़िद करके ले लेंगे और तोड़ डालेंगे। चिमटा कितने काम की चीज़ है। रोटियाँ तवे से उतार लो, चूल्हे में सेंक लो। कोई आग माँगने आवे तो चटपट चूल्हे से आग निकाल कर उसे दे दो। अम्माँ बेचारी को कहाँ फ़ुरसत है कि बाज़ार आएँ, और इतने पैसे ही कहाँ मिलते हैं। रोज़ हाथ जला लेती हैं। हामिद के साथी आगे बढ़ गए हैं। सबील पर सबके सब शर्बत पी रहे हैं। देखो सब कितने लालची हैं। इतनी मिठाइयाँ लीं, मुझे किसी ने एक भी न दी। उस पर कहते हैं, मेरे साथ खेलो। मेरा यह काम करो। अब अगर किसी ने कोई काम करने को कहा तो पूछूँगा। खायँ मिठाइयाँ, आप मुँह सड़ेगा, फोड़े-फुन्सियाँ निकलेंगी, आप ही ज़बान चटोरी हो जायगी। तब घर से पैसे चुराएँगे और मार खायँगे। किताब में झूठी बातें थोड़े ही लिखी हैं। मेरी ज़बान क्यों ख़राब होगी। अम्माँ चिमटा देखते ही दौड़ कर मेरे हाथ से ले लेंगी और कहेंगी—'मेरा बच्चा अम्माँ के लिए चिमटा लाया है!' हज़ारों दुआएँ देंगी। फिर पड़ोस की औरतों को दिखाएँगी। सारे गाँव में चरचा होने लगेगी, हामिद चिमटा लाया है। कितना अच्छा लड़का है। इन लोगों के खिलौनों पर कौन इन्हें दुआएँ देगा। बड़ों की दुआएँ सीधे अल्लाह के दरबार में पहुँचती हैं, और तुरन्त सुनी जाती हैं। मेरे पास पैसे नहीं हैं। तभी तो मोहसिन और महमूद यों मिज़ाज दिखाते हैं। मैं भी इनसे मिज़ाज दिखाऊँगा। खेलें खिलौने और खायँ मिठाइयाँ। मैं नहीं खेलता खिलौने, किसी का मिज़ाज क्यों सहूँ। मैं ग़रीब सही, किसी से कुछ माँगने तो नहीं जाता। आख़िर अब्बाजान कभी न कभी आएँगे। अम्माँ भी आएँगी ही। फिर इन लोगों से पूछूँगा कितने खिलौने लोगे। एक-एक को टोकरियों खिलौने दूँ और दिखा दूँ कि दोस्तों के साथ इस तरह सलूक किया जाता है। यह नहीं कि एक पैसे की रेउड़ियाँ लीं तो चिढ़ा-चिढ़ा-कर खाने लगे। सब के सब ख़ूब हँसेंगे कि हामिद ने चिमटा लिया है। हँसें। मेरी बला से, उसने दूकानदार से पूछा—यह चिमटा कितने का है?

दूकानदार ने उसकी ओर देखा और कोई आदमी साथ न देख कर कहा—वह तुम्हारे काम का नहीं है जी।

'बिकाऊ है कि नहीं ?'

'बिकाऊ क्यों नहीं है। और यहाँ क्यों लाद लाए हैं ?'

'तो बताते क्यों नहीं, कै पैसे का है ?'

'छै पैसे लगेंगे।'

हामिद का दिल बैठ गया।

'ठीक-ठीक बताओ !'

'ठीक-ठीक पाँच पैसे लगेंगे, लेना हो लो, नहीं चलते बनो।'

हामिद ने कलेजा मज़बूत करके कहा—तीन पैसे लोगे ?

यह कहता हुआ वह आगे बढ़ गया कि दूकानदार की घुड़कियाँ न सुने।

लेकिन दूकानदार ने घुड़कियाँ नहीं दीं। बुला कर चिमटा दे दिया। हामिद ने उसे इस तरह कन्धे पर रक्खा मानों बन्दूक़ है और शान से अकड़ता हुआ सङ्गियों के पास आया। ज़रा सुनें, सब के सब क्या-क्या आलोचनाएँ करते हैं।

मोहसिन ने हँस कर कहा—यह चिमटा क्यों लाया पगले ! इसे क्या करेगा ?

हामिद ने चिमटे को ज़मीन पर पटक कर कहा—जरा अपना भिश्ती जमीन पर गिरा दो। सारी पसलियाँ चूर-चूर हो जायँ बचा की।

महमूद बोला—तो यह चिमटा कोई खिलौना है ?

हामिद—खिलौना क्यों नहीं है। अभी कन्धे पर रक्खा, बन्दूक हो गई। हाथ में ले लिया, फकीरों का चिमटा हो गया। चाहूँ तो इससे मजीरे का काम ले सकता हूँ। एक चिमटा जमा दूँ तो तुम लोगों के सारे खिलौनों की जान निकल जाय। तुम्हारे खिलौने कितना ही जोर लगावें, मेरे चिमटे का बाल भी बाँका नहीं कर सकते। मेरा बहादुर शेर है—चिमटा।

सम्मी ने खँजरी ली थी। प्रभावित होकर बोला—मेरी खँजरी से बदलोगे ? दो आने की है।

हामिद ने खँजरी की ओर उपेक्षा से देखा—मेरा चिमटा चाहे तो तुम्हारी खँजरी का पेट फाड़ डाले। बस एक चमड़े की झिल्ली लगा दी, ढब-ढब बोलने लगी। जरा सा पानी लग जाय तो खतम हो जाय। मेरा बहादुर चिमटा आग में, पानी में, आँधी में, तूफान में, बराबर डटा खड़ा रहेगा।

चिमटे ने सभी को मोहित कर लिया, लेकिन अब पैसे किसके पास धरे हैं। फिर मेले से दूर निकल आए हैं, नौ कब के बज गए, धूप तेज़ हो रही है। घर पहुँचने की जल्दी हो रही है। बाप से ज़िद भी करें तो चिमटा नहीं मिल सकता। हामिद है बड़ा चालाक। इसीलिए बदमाश ने अपने पैसे बचा रक्खे थे।

अब बालकों के दो दल हो गए हैं। मोहसिन, महमूद, सम्मी और नूरे एक तरफ़ हैं, हामिद अकेला दूसरी तरफ़। शास्त्रार्थ हो रहा है। सम्मी तो विधर्मी हो गया। दूसरे पक्ष से जा मिला। लेकिन मोहसिन, महमूद और नूरे भी, हामिद से एक-एक दो-दो साल बड़े होने पर भी हामिद के आघातों से आतङ्कित हो उठे हैं। उसके पास न्याय का बल है और नीति की शक्ति। एक ओर मिट्टी है, दूसरी ओर लोहा, जो इस वक्त अपने को फ़ौलाद कह रहा है। वह अजेय है, घातक है, अगर कोई शेर आ जाय, तो मियाँ भिश्ती के छक्के छूट जायँ, मियाँ सिपाही मिट्टी की बन्दूक़ छोड़ कर भागें, वकील साहब की नानी मर जाय, चुगे में मुँह छिपा कर ज़मीन पर लेट जायँ। मगर यह चिमटा, यह बहादुर, यह रुस्तमे हिन्द लपक कर शेर की गरदन पर सवार हो जायगा और उसकी आँखें निकाल लेगा।

मोहसिन ने एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा कर कहा—अच्छा पानी तो नहीं भर सकता।

हामिद ने चिमटे को सीधा खड़ा करके कहा—भिश्ती को एक डाँट बताएगा तो दौड़ा हुआ पानी लाकर उसके द्वार पर छिड़कने लगेगा।

मोहसिन परास्त हो गया, पर महमूद ने कुमक पहुँचाई—अगर बचा पकड़ जायँ तो अदालत में बँधे-बँधे फिरेंगे। तब तो वकील साहब ही के पैरों पड़ेंगे।

हामिद इस प्रबल तर्क का जवाब न दे सका। उसने पूछा—हमें पकड़ने कौन आएगा ?

नूरे ने अकड़ कर कहा—यह सिपाही बन्दूक वाला।

हामिद ने मुँह चिढ़ा कर कहा—यह बेचारे हम बहादुर रुस्तमे हिन्द को पकड़ेंगे ! अच्छा लाओ अभी

जरा कुश्ती हो जाय । इसकी सूरत देख कर दूर से भागेंगे । पकड़ेंगे क्या बेचारे !

मोहसिन को एक नई चोट सूझ गई—तुम्हारे चिमटे का मुँह रोज आग में जलेगा ।

उसने समझा था कि हामिद लाजवाब हो जायगा, लेकिन यह बात न हुई । हामिद ने तुरन्त जवाब दिया—आग में बहादुर ही कूदते हैं जनाब, तुम्हारे यह वकील, सिपाही और भिश्ती लौंडियों की तरह घर में घुस जायँगे । आग में कूदना वह काम है जो यह रुस्तमे हिन्द ही कर सकता है ।

महमूद ने एक ज़ोर लगाया—वकील साहब कुरसी मेज पर बैठेंगे, तुम्हारा चिमटा तो बावरचीखाने में जमीन पर पड़ा रहेगा ।

इस तर्क ने सम्मी और नूरे को भी सजीव कर दिया । कितने ठिकाने की बात कही है पट्ठे ने । चिमटा बावरचीखाने में पड़े रहने के सिवा और क्या कर सकता है ।

हामिद को कोई फड़कता हुआ जवाब न सूझा तो उसने धाँधली शुरू की—मेरा चिमटा बावरचीखाने में नहीं रहेगा । वकील साहब कुरसी पर बैठेंगे तो जाकर उन्हें जमीन पर पटक देगा और उनका कानून उनके पेट में डाल देगा ।

बात कुछ बनी नहीं । ख़ासी गाली-गलौज थी । लेकिन क़ानून को पेट में डालने वाली बात छा गई । ऐसी छा गई कि तीनों सूरमा मुँह ताकते रह गए, मानों कोई धेलचा कँकौआ किसी डण्डे वाले कँकौए को काट गया हो । क़ानून मुँह से बाहर निकलने वाली चीज़ है । उसको पेट के अन्दर डाल दिया जावे, बेतुकी सी बात होने पर भी कुछ नयापन रखती है । हामिद ने मैदान मार लिया । उसका चिमटा रुस्तमे हिन्द है । अब इसमें मोहसिन, महमूद, नूरे, सम्मी, किसी को भी आपत्ति नहीं हो सकती ।

विजेता को हारने वालों से जो सत्कार मिलना स्वाभाविक है, वह हामिद को भी मिला । औरों ने तीन-तीन, चार-चार आने पैसे ख़र्च किए, पर कोई काम की चीज़ न ले सके । हामिद ने तीन पैसों में रङ्ग जमा लिया । सच ही तो है, खिलौनों का क्या भरोसा ! टूट-फूट जायँगे । हामिद का चिमटा तो बना रहेगा बरसों !

सन्धि की शर्तें तय होने लगीं । मोहसिन ने कहा—जरा अपना चिमटा दो, हम भी देखें । तुम हमारा भिश्ती लेकर देखो ।

महमूद और नूरे ने भी अपने-अपने खिलौने पेश किए ।

हामिद को इन शर्तों के मानने में कोई आपत्ति न थी । चिमटा बारी-बारी से सबके हाथ में गया और उनके खिलौने बारी-बारी से हामिद के हाथ में आए । कितने ख़ूबसूरत खिलौने हैं ।

हामिद ने हारने वालों के आँसू पोंछे—मैं तुम्हें चिढ़ा रहा था, सच । वह लोहे का चिमटा भला इन खिलौनों की क्या बराबरी करेगा । मालूम होता है, अब बोले, अब बोले ।

लेकिन मोहसिन की पार्टी को इस दिलासे से सन्तोष नहीं होता । चिमटे का सिक्का ख़ूब बैठ गया है । चिपका हुआ टिकट अब पानी से नहीं छूट रहा है ।

मोहसिन—लेकिन इन खिलौनों के लिए कोई हमें दुआ तो न देगा ।

महमूद—दुआ को लिए फिरते हो । उलटे मार न पड़े । अम्माँ जरूर कहेंगी कि मेले में यही मिट्टी के खिलौने तुम्हें मिले ।

हामिद को स्वीकार करना पड़ा कि खिलौनों को देख कर किसी की माँ इतनी ख़ुश न होगी जितनी दादी चिमटे को देख कर होगी । तीन पैसों ही में तो उसे सब कुछ करना था, और उन पैसों के इस उपयोग पर पछतावे की बिलकुल ज़रूरत न थी । फिर अब तो चिमटा रुस्तमे हिन्द है और सभी खिलौनों का बादशाह ।

रास्ते में महमूद को भूख लगी । उसके बाप ने केले खाने को दिए । महमूद ने केवल हामिद को साझी बनाया । उसके अन्य मित्र मुँह ताकते रह गए । यह उस चिमटे का प्रसाद था ।

३

ग्यारह बजे सारे गाँव में हलचल मच गई । मेले वाले आगए । मोहसिन की छोटी बहिन ने दौड़ कर भिश्ती उसके हाथ से छीन लिया और मारे ख़ुशी के जो उछली तो मियाँ भिश्ती नीचे आ रहे और सुरलोक सिधारे । इस पर भाई-बहिन में मारपीट हुई । दोनों

ख़ूब रोए। उनकी अम्माँ यह शोर सुन कर बिगड़ी और दोनों को ऊपर से दो-दो चाँटे और लगाए।

मियाँ नूरे के वकील का अन्त उनकी प्रतिष्ठानुकूल इससे ज़्यादा गौरवमय हुआ। वकील ज़मीन पर या ताक पर तो नहीं बैठ सकता। उसकी मर्यादा का विचार तो करना ही होगा। दीवार में दो खूँटियाँ गाड़ी गईं। उन पर लकड़ी का एक पटरा रक्खा गया। पटरे पर काग़ज़ का क़ालीन बिछाया गया। वकील साहब राजा भोज की भाँति इस सिंहासन पर विराजे। नूरे ने उन्हें पङ्खा झलना शुरू किया। अदालतों में ख़स की टट्टियाँ और बिजली के पङ्खे रहते हैं। क्या यहाँ मामूली पङ्खा भी न हो! क़ानून की गर्मी दिमाग़ पर चढ़ जायगी कि नहीं। बाँस का पङ्खा आया और नूरे हवा करने लगे। मालूम नहीं पङ्खे की हवा से, या पङ्खे की चोट से वकील साहब स्वर्ग-लोक से मर्त्यलोक में आ रहे और उनका माटी का चोला माटी में मिल गया! फिर बड़े ज़ोर-शोर से मातम हुआ और वकील साहब की अस्थि पारसियों के प्रथानुसार घूर पर डाल दी गई।

अब रहा महमूद का सिपाही। उसे चटपट गाँव का पहरा देने का चार्ज मिल गया, लेकिन पुलिस का सिपाही कोई साधारण व्यक्ति तो नहीं, जो अपने पैरों चले। वह पालकी पर चलेगा। एक टोकरी आई। उसमें कुछ लाल रङ्ग के फटे-पुराने चीथड़े बिछाए गए, जिसमें सिपाही साहब आराम से लेटें। नूरे ने यह टोकरी उठाई और अपने द्वार का चक्कर लगाने लगे। उनके दोनों छोटे भाई सिपाही की तरफ़ से 'छोने वाले, जागते लहो' पुकारते चलते हैं। मगर रात तो अँधेरी होनी ही चाहिए। महमूद को ठोकर लग जाती है। टोकरी उसके हाथ से छूट कर गिर पड़ती है और मियाँ सिपाही अपनी बन्दूक़ लिए ज़मीन पर आ जाते हैं और उनकी एक टाँग में विकार आ जाता है। महमूद को आज ज्ञात हुआ कि वह अच्छा डॉक्टर है। उसको ऐसा मरहम मिल गया है, जिससे वह टूटी टाँग को आनन-फ़ानन जोड़ सकता है। केवल गूलर का दूध चाहिए। गूलर का दूध आता है। टाँग जोड़ दी जाती है, लेकिन सिपाही को ज्योंही खड़ा किया जाता है, टाँग जवाब दे देती है। शल्य क्रिया असफल हुई तब उसकी दूसरी टाँग भी तोड़ दी जाती है। अब कम से कम एक जगह आराम से बैठ तो सकता है। एक टाँग से तो न चल सकता था, न बैठ सकता था। अब वह सिपाही संन्यासी हो गया है। अपनी जगह पर बैठा-बैठा पहरा देता है। कभी-कभी देवता भी बन जाता है। उसके सिर का झालरदार साफ़ा खुरच दिया गया है। इससे अब उसका जितना रूपान्तर चाहो कर सकते हो। कभी-कभी तो उससे बाट का काम भी लिया जाता है।

अब मियाँ हामिद का हाल सुनिए। अमीना उसकी आवाज़ सुनते ही दौड़ी और उसे गोद में उठा कर प्यार करने लगी। सहसा उसके हाथ में चिमटा देख कर वह चौंकी।

'यह चिमटा कहाँ था?'

'मैंने मोल लिया है।'

'कै पैसे में?'

'तीन पैसे दिए।'

अमीना ने छाती पीट ली। यह कैसा बेसमझ लड़का है कि दोपहर हुआ, कुछ खाया न पिया। लाया क्या यह चिमटा। सारे मेले में तुझे और कोई चीज़ न मिली, जो यह लोहे का चिमटा उठा लाया?

हामिद ने अपराधी भाव से कहा—तुम्हारी उँगलियाँ तवे से जल जाती थीं। इसलिए मैंने इसे ले लिया।

बुढ़िया का क्रोध तुरन्त स्नेह में बदल गया, और स्नेह भी वह नहीं, जो प्रगल्भ होता है और अपनी सारी कसक शब्दों में बिखेर देता है। यह मूक स्नेह था, ख़ूब ठोस, रस और स्वाद से भरा हुआ। बच्चे में कितना त्याग और कितना सद्भाव और कितना विवेक है। दूसरों को खिलौने लेते और मिठाई खाते देख कर इसका मन कितना ललचाया होगा। इतना ज़ब्त इससे हुआ कैसे? वहाँ भी इसे अपनी बुढ़िया दादी की याद बनी रही। अमीना का मन गद्गद हो गया।

और अब एक बड़ी विचित्र बात हुई। हामिद के इस चिमटे से भी विचित्र। बच्चा हामिद ने बूढ़े हामिद का पार्ट खेला था। बुढ़िया अमीना बालिका अमीना बन गई। वह रोने लगी। दामन फैला कर हामिद को दुआएँ देती जाती थी और आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें गिराती जाती थी। हामिद इसका रहस्य क्या समझता!!

टर्की का पुनर्निर्माण

[श्री० शिवनारायण टण्डन]

मुस्तफ़ा कमालपाशा के शासन-काल में टर्की की चतुर्मुखी उन्नति हो रही है। बात यह है कि रूस की लाल क्रान्ति का प्रभाव सारे विश्व पर पड़ा है। उसके आर्थिक सङ्गठन, पुनर्निर्माण के कार्य-क्रम और पञ्चवर्षीय आयोजन ने संसार भर को अपनी ओर आकर्षित किया है। उसी से टर्की ने भी कुछ सबक़ सीखा है।

कोई सौ वर्षों से यूरोप वाले टर्की के शरीर पर जोंक की तरह चिपटे हुए थे। वहाँ के राज्याधिकारी सुल्तान मूर्ख और दब्बू होते थे। उनके वज़ीर और कार-कुन स्वार्थी और घूसख़ोर होते थे, अतएव विदेश वाले टर्की को मनमानी तौर से लूटते थे। टर्की में बड़े-बड़े यूरोपियन राष्ट्रों के एजेण्ट, ग्रीक और आरमेनियन थे, जो तुर्क-साम्राज्य के जन्मजात शत्रु थे।

कमालपाशा ने शासनारूढ़ होते ही विदेशियों के प्रभुत्व को नष्ट कर दिया। बाहर वाली विदेशी शक्तियाँ घबराईं, चिल्लाईं और समझा कि टर्की का आर्थिक सङ्गठन नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा, पर बात बिल्कुल उल्टी थी। विदेशी राष्ट्र एक ओर यूरोप के आयात और दूसरी ओर टर्की के निर्यात पर क़ब्ज़ा जमाए हुए थे। किसानों के पास पैसे की कमी थी, अतएव विदेशी चीज़ें कच्चे माल के बदले मोल ली जाया करती थीं। अनाज और रूई देकर सुई से लेकर हैज़लीन तक ख़रीदा जाता था। एक ओर विलायती माल की सारी क़ीमत इङ्गलैण्ड, फ़्रान्स और जर्मनी पहुँच जाती और दूसरी ओर कमीशन एजेण्टी और बीच के मुनाफ़े की मोटी रक़म ग्रीस और आरमीनिया चली जाती। बेचारे किसानों की मिट्टी ख़राब थी। दरिद्रता दिन पर दिन बढ़ रही थी। आरमेनियन और ग्रीक सौदागरों के पास बड़ी-बड़ी हवेलियाँ और बेशक़ीमती मोटर-गाड़ियाँ थीं और टर्की की जनता बिल्कुल फटेहाल, टूटी झोपड़ियों में गर्दिश के दिन काट रही थी। सारांश यह कि विदेशी चीज़ों के व्यवहार और प्रचार के कारण जहाँ एक ओर देश में निर्धनता बढ़ती है, वहाँ दूसरी ओर भयावह बेकारी फैलती है। टर्की में इन दोनों ही समस्याओं ने विराट रूप धारण किया था।

टर्की की नई सरकार यूरोपियनों के व्यापार-लोभ से अच्छी तरह परिचित थी। वह जानती थी कि यह व्यापारी-मण्डल शीघ्र ही शासक-मण्डल का रूप धारण कर लेता है। व्यापार की उन्नति के लिए कोई भी कार्य करना इनके लिए दुस्साध्य नहीं है। जहाँ इनके क़दम जम जाते हैं, वहाँ राजनीतिक प्रतिस्पर्धा शीघ्र ही चल पड़ती है और बेचारा दुर्बल राष्ट्र उनके बीच में पड़ कर धीरे-धीरे पिसने और घुलने लगता है। अतएव कमाल-पाशा की सरकार ने अपनी स्थापना के प्रारम्भिक काल से ही यह नियम बना दिया कि कोई भी विदेशी व्यापारी टर्की की ५० फ़ी सदी पूँजी लगाए बग़ैर किसी प्रकार का व्यापार मिल, या कारख़ाना आदि नहीं खोल सकता, परन्तु यह ५० फ़ी सदी का आँकड़ा तो कम से कम है। वास्तव में टर्की-सरकार उन्हीं फ़र्मों को प्रश्रय देती है, जिन्होंने ६० से ७० प्रतिशत तक टर्की का मूलधन अपने व्यवसाय में लगा रक्खा है। इसके अतिरिक्त समस्त विदेशी व्यापारियों के लिए क़ानूनन् टर्की भाषा का पढ़ना आवश्यक है। क्योंकि सारा काम-काज और लिखा-पढ़ी राष्ट्रीय भाषा में होना अनिवार्य रक्खा गया है।

निर्यात (Export) के उन पदार्थों को, जिनका संसार के बाज़ारों में महत्व है, टर्की की सरकार ने अपने ही अधीन रक्खा है। तम्बाकू और खनिज पदार्थों पर सरकार का पूर्ण अधिकार है। हाँ, विदेशी मैशीनरी को देश में लाने के लिए ३० फ़ी सदी रेल-भाड़े की

छूट रक्खी गई है, क्योंकि अभी तक टर्की में मैशीनों के बनाने की कोई बड़ी आयोजना पूरी नहीं हो पाई है।

टर्की के पुनर्निर्माण का पहला अध्याय तारीख़ २४ जुलाई सन् १९२३ की लासेन की सन्धि से प्रारम्भ होता है। लासेन में राजनीतिक सुलहनामे के साथ ही व्यापारिक सन्धि भी हुई थी और दरेदानियाल के स्टेटों के बाबत पैक्ट भी बना था, जिसके द्वारा टर्की को उसके आर्थिक सङ्गठन में पर्याप्त सहायता मिली है।

पर जब कमाल ने शासन की बागडोर अपने हाथों में ली, तब टर्की की आर्थिक स्थिति बड़ी ही शोचनीय थी। बड़ी-बड़ी शक्तियों ने अपने-अपने क़र्ज़ों की अदायगी के लिए तक़ाज़े करना शुरू किए। लेहनदारों में फ़्रान्स का रुपया सब से ज़्यादा था और उसका रुख़ भी सब से कड़ा था। सुलतानी शासन-काल में फ़्रान्स ने कोई सत्तर लाख स्वर्ण फ्रेङ्क का क़र्ज़ा टर्की साम्राज्य, वहाँ की म्यूनिसिपैलिटियों और व्यापारियों को दे रक्खा था। ब्याज की दर भी बहुत ज़्यादा थी और जिन व्यवसायों में फ़्रान्स का रुपया लगा हुआ था, उनकी नकेल फ़्रान्सीसी व्यापारियों के हाथों में थी। दूसरा नम्बर इङ्गलैण्ड का था और फिर बेल्जियम तथा नीदरलैण्ड की रक़में थीं। जर्मनी और ऑस्ट्रिया के क़र्ज़े ग़ैर-क़ानूनी क़रार दिए जा चुके थे ज़रूर, पर वार्सलेज़ की सन्धि के अनुसार मित्र-राष्ट्र उन रक़मों को स्वयं ही माँग रहे थे। आख़िर पेरिस में एक सभा बैठी और बड़ी कहा-सुनी के बाद १३ जून सन् १९२८ को एक शर्तनामा ऐसा बन कर तैयार हुआ, जिसे सबने सर्व-सम्मति से स्वीकार किया। टर्की ने क़र्ज़ की रक़म को कई क़िस्तों में अदा करने का वादा किया।

देश की आर्थिक स्थिति की उन्नति के लिए अङ्गोरा में अर्थशास्त्र विशेषज्ञों की एक अर्थ-समिति क़ायम की गई है, जिसका उद्देश्य देश के आर्थिक पुन-निर्माण के कार्यों की देख-रेख, उन्नति और सुधार करना है। इस कौन्सिल का प्रधान मन्त्री डॉ० नूरुल्ला है, जिसने महायुद्ध के बाद टर्की को दिवालिया होने से बचाया था। वही 'बैङ्कर्स ट्रस्ट' का सभापति भी है। इस अर्थ-समिति से राज्य के मन्त्रिमण्डल से निकट सम्पर्क है। इसके अधिकारी बड़े हिसाबी हैं। इनकी तुलना पाश्चात्य देशों के अर्थ-शास्त्रियों से की जा सकती है।

पुनर्निर्माण के कार्यक्रम में, आर्थिक जीवन की प्रत्येक दिशा का ज्ञान रक्खा जाता है। जनता में वाणिज्य-व्यवसाय और कला-कौशल का अच्छा प्रचार हो रहा है, सरकार की ओर से प्रतिष्ठित और ईमानदार 'फ़र्मों' को आर्थिक सहायता भी दी जाती है, जो या तो बिना ब्याज के रहती है या उस पर एक या दो फ़ी सदी का स्वल्प सूद ले लिया जाता है।

टर्की के इतिहास में पहली बार राष्ट्रीय और तिजारती बैङ्कों की स्थापनाएँ हुई हैं। यद्यपि सुल्तान के शासन-काल में भी एक-दो बैङ्कें थीं, पर उनका लक्ष्य सार्वजनिक सहायता नहीं, प्रत्युत सुल्तान, अधिकारियों या बड़े-बड़े आदमियों को उधार देना मात्र था, जिससे देश के व्यापार या जनता के हित में कोई लाभ नहीं होता था।

टर्की की अच्छी बैङ्कों में बैङ्क ओटोमान, एग्रीकोल बैङ्क, इण्डस्ट्रियल और माइनिङ्ग बैङ्क, और बैङ्क ऑफ़ नेशनल इकोनोमिक्स रिकॉन्स्ट्रक्शन के नाम लिए जा सकते हैं। बैङ्कों की आर्थिक अवस्था अच्छी है। साख भी काफ़ी है। ईमानदारी से काम होता है। नए नोटों का बनाना, बड़ी सख़्ती और पाबन्दी के साथ, अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के अनुसार होता है।

प्रारम्भ ही से कमालपाशा की सरकार ने इस बात का अनुभव किया है कि देश को अच्छे बन्दरगाह, रेलों और सड़कों की सख़्त ज़रूरत है।

कमालपाशा के शासनारूढ़ होने के समय अङ्गोरा, बग़दाद, स्मर्ना रेलवे के सिवा कोई रेल-पथ न था। पूर्वीय अनातोलिया में रेलवे लाइन न होने से बड़ी असुविधा और क्षति होती थी। गत युद्ध के समय जब रूस से विग्रह चला था, तब टर्की को बड़ी कठिनाई पड़ी थी।

प्रजातन्त्र सरकार ने जर्मन और स्वीडेन की प्रसिद्ध फ़र्मों को ठीका देकर रेल-पथ की बहुत कुछ तरक़्क़ी कर ली है। अङ्गोरा के सारे प्रदेश में रेलें बिछ गई हैं। राज्य भर में सभी बड़ी-बड़ी जगहों को मिलाती हुई रेलें फैली हुई हैं। रेलगाड़ियों में खाने-पीने और सोने का विशेष प्रबन्ध रहता है। गाड़ियाँ समय की ख़ूब पाबन्दी करती हैं। कमालपाशा का प्रोग्राम है कि तमाम काके-शिया, रूस, ब्लैक सी के किनारे तक रेलें बिछ जानी

चाहिए। अतएव पटरी बिछाने का काम बड़ी तेज़ी के साथ हो रहा है।

जल-मार्गों की भी ख़ासी उन्नति हुई है। कैबीनेट ने एक करोड़ अङ्गरेज़ी पौण्ड अच्छे बन्दरगाहों के निर्माण के लिए मञ्ज़ूर किए हैं। सड़कों और पुलों के बनाने की ओर भी काफ़ी ध्यान दिया गया है। मोटर-लॉरियों का चलन बढ़ रहा है।

म्यूनिसिपैलिटियाँ पाश्चात्य ढङ्ग की नई इमारतें बनवा रही हैं। अङ्गोरा में जहाँ ४०,००० मनुष्य रहते थे, वहाँ अब डेढ़ लाख से ऊपर की आबादी है। सफ़ाई और पानी का भी बहुत बढ़िया बन्दोबस्त किया गया है। जल के लिए नई प्रणाली की कलों का इस्तेमाल होता है। अङ्गोरा में पहले सदा पानी की कमी बनी रहती थी, अतएव कई करोड़ टर्किश पौण्ड लगा कर वाटर सप्लाई और आबपाशी के लिए एक बहुत बड़ी मीठे पानी की झील बनाई गई है।

निस्सन्देह पुनर्निर्माण के इस आयोजन ने टर्की के हज़ारों व्यक्तियों को कार्य और रोज़गार दिया है। बड़े-बड़े शहरों में बिजली के कारख़ानों की स्थापना हो चुकी है और कहीं-कहीं अब भी हो रही है।

लासेन के सन्धि-पत्र की स्याही मुश्किल से सूखने पाई थी कि कितने ही विदेशी व्यापारी और सट्टेबाज़ यूरोप तथा अमेरिका से आकर टर्की में डट गए और भिन्न-भिन्न कामों के ठेके माँगने लगे और इतने कम दरों पर टेण्डर दिए, जो उनकी लागत से भी कम थे, कारण यह था कि वे घूस आदि देकर सरकारी अफ़सरों के ऑर्डर पास करा लेने के अभ्यस्त थे। वे शाहों और सुल्तानों का ज़माना देख चुके थे। कमालपाशा तथा अन्य राष्ट्रीय दल वालों को, जिनके लिए राज्य का एक पैसा भी बेईमानी से खाना हराम था, वे अच्छी तरह नहीं पहचानते थे। सुल्तानियत के उठते ही बख़्शीश की रस्म भी टर्की से उठा दी गई थी। कमालिस्ट गवर्नमेण्ट बड़ी सख़्ती और ईमानदारी से काम चला रही थी। ज़रा सा ग़बन या घूस साबित होते ही बड़े से बड़े अफ़सर को कड़ी सज़ा दी जाती। जल-सेना विभाग के मन्त्री मुहम्मद इकशान तथा दूसरे अफ़सरों को सन् १९२७-२८ में ग़बन के अपराध में कड़ी सज़ाएँ दी गईं, जिससे लोग चौकन्ने हो गए। टर्की के सरकारी काम जिस किफ़ायत और ख़ूबी से चल रहे हैं, वैसे बहुत कम मुल्कों में चलते होंगे।

टर्की की आय के दो मुख्य साधन हैं। एक तो खेती और दूसरे खनिज पदार्थों की आय। सुल्तान के राजत्व-काल में न तो वैज्ञानिक तौर-तरीक़े ही बतलाए जाते थे और न अच्छी खाद, न अच्छे औज़ार वग़ैरह ही उपलब्ध थे। खनिज पदार्थों में अधिकांशतया योंही बिना खुदे ज़मीन के नीचे दबे पड़े रहते थे।

वहाँ की खेती-बारी के तीन विभाग किए जा सकते हैं। पहला अन्न की उपज, जिससे जनता का पेट भरे, दूसरे तम्बाकू, रूई, अफ़ीम, अञ्जीर और फल, जिनके निर्यात से लाभ पहुँचे और तीसरे पशु-पालन, डेयरी फ़ॉरमिङ्ग, भेड़ों की चराई वग़ैरह जिससे ऊन और खाल उपलब्ध हो सके। दुनिया में बढ़ती हुई सिगरेट की माँग के कारण टर्की की तम्बाकू की पैदावार ख़ूब बढ़ रही है और उसमें किसानों को मुनाफ़ा भी अच्छा होता है। टर्की की तम्बाकू सारे संसार में प्रसिद्ध है, अच्छी दर पर तम्बाकू खपाने का प्रबन्ध वहाँ की सरकार स्वयं करती है, जिससे किसान लुटने से बच जाते हैं। इसीलिए सरकार ने तम्बाकू के निर्यात को अपने हाथों में रक्खा है।

ज़ैतून और ज़ैतून का तेल भी टर्की से बाहर ख़ूब भेजा जाता है। स्मर्ना उसका केन्द्र है। जो लोग इस व्यापार में दिलचस्पी रखते हों उन्हें टर्की के काउन्सिल जनरल को लिख कर स्मर्ना के व्यापारियों से सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए।

पशुओं की वृद्धि, उनके नस्ल की तरक़्क़ी और उनके स्वास्थ्य पर बहुत ध्यान दिया जाता है। आस्ट्रेलिया, इङ्गलैण्ड, फ़्रान्स और अमेरिका से घोड़े, बैल, भेड़ें और गायें बहुतायत से मँगाई गई हैं। टर्की की सरकार जनता को पशु-धन की उपयोगिता, पशुपालन की विधि और उनकी तरक़्क़ी की बातों पर बराबर प्रकाश डालती रहती है। टर्की में—उस टर्की में, जहाँ मुसलमान ही मुसलमान रहते हैं और जो मुसलमानों का राष्ट्र और राज्य है—दूध देने वाले पशुओं और वह भी ख़ास कर गायों के कटने की सख़्त मनाही है।

पश्चिमीय अनातोलिया में कितनी ही धातुओं की खानें हैं। ताँबा, कोयला, लोहा, नमक, पारा, सीसा,

अल्मोनियम और चमड़ा वग़ैरह काफ़ी तादाद में पाया जाता है। इनकी खुदाई से राज्य को काफ़ी लाभ हो रहा है।

इन सब में पेट्रोलियम बहुत लाभप्रद साबित हुआ है। अभी मैसोपोटामिया और मोसल के प्रदेशों में बहुत बड़ी मिक़दार में पेट्रोल धरती के नीचे सुरक्षित रक्खा है। कहते हैं कि वह इतना अधिक है कि ५० वर्ष तक उसके द्वारा पूर्वीय देशों की ज़रूरत पूरी की जा सकती है।

टर्की ने अपने जहाज़ बनाए हैं, जो १,०७,००००० टन से ज़्यादा के हैं। टर्की का समुद्री किनारा बहुत बड़ा है। अतएव इतने जहाज़ों से पूरा नहीं पड़ता है। केवल ४५ प्रतिशत काम टर्की के जहाज़ कर पाते हैं और बाक़ी ५५ फ़ीसदी व्यापारिक काम विदेशी जहाज़ी कम्पनियाँ कर रही हैं, जिनकी दर सरकार ने निर्धारित कर रक्खी है। आशा की जाती है कि आगामी दो-तीन वर्षों में टर्की का बेड़ा ७५ फ़ीसदी काम निबटा सकने योग्य हो जायगा। जर्मनी और इटली में, टर्की की राष्ट्रीय सरकार के आज्ञानुसार कई जहाज़ों का निर्माण हो रहा है, जिनका उपयोग व्यापार और युद्ध दोनों ही कामों के लिए किया जा सकता है।

टर्की में समाचार-पत्रों की ख़ूब उन्नति हो रही है, स्तम्बोल और अङ्गोरा में कई बड़े-बड़े प्रेस हैं, जो सुसङ्गठित राजनीतिक क्षेत्र में शक्तिशाली और सार्वजनिक शिक्षा के लिए बड़े उपयोगी साबित हुए हैं।

टर्की के समूचे इतिहास में समाचार-पत्र कभी इतने शक्तिशाली नहीं थे, जितने आज हैं। उनका प्रबन्ध और सम्पादन बिल्कुल अंङ्गरेज़ी ढङ्ग से हो रहा है। उनके सम्बाददाता यूरोप के समस्त बड़े-बड़े नगरों में रहते हैं, जो नित्य नई-नई ख़बरें शीघ्र से शीघ्र, क़ुस्तुन्तुनियाँ ऑफ़िस को भेजा करते हैं। टर्की की तार और बेतार की सर्विस एकदम नवीन, वैज्ञानिक प्रणाली की है, रेडियो का भी पर्याप्त उपयोग होता है। मासिक और साप्ताहिक पत्रों की संख्या भी काफ़ी है। इस समय टर्की में कोई १५० समाचार-पत्र और १०० के क़रीब मासिक, पाक्षिक और साप्ताहिक निकल रहे हैं, जिनकी तालिका इस प्रकार है।

किस भाषा में	समाचार-पत्र	मैगज़ीन्स
तुर्की	१२७	८६
फ़्रेञ्च	७	२
ग्रीक	५	१
स्पेनिश	३	१
आरमीनियन	५	५
जर्मन	१	...
इटालियन	१	...
रूसी	१	१

दैनिक पत्र, यूरोप की बनी हुई रोटरी मैशीनों पर छपते हैं, इसलिए नई से नई ख़बरें दो घण्टे के अन्दर वहाँ छप जाया करती हैं। एक-एक पत्र के तीन-तीन और चार-चार संस्करण निकलते हैं।

टर्की के पत्रकार ही प्रकाशन का काम भी करते हैं। जहाँ से दैनिक या मासिक निकलते हैं, वहीं से पुस्तकें भी निकलती हैं। टर्की में जङ्गलात बहुत हैं, इसलिए सरकार ने क़ागज़ बनाने के लिए काले समुद्र के किनारे, वनों के बीच में 'पेपर मिल्स' खोले हैं। सन् १९२९ की पहली जनवरी से टर्की भाषा की लिपि बदल कर लैटिन कर दी गई है, जिससे प्रकाशन कार्य को बड़ी सरलता और प्रोत्साहन मिला है। अरबी भाषा की ऊँची-नीची, संयुक्ताक्षर और विचित्र लेखन प्रणाली के कारण प्रकाशन के कार्य में दिक़्क़त और देर होती थी तथा लागत भी अधिक पड़ जाती थी। यह कमालपाशा ही जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति का काम है कि ऐसे दक़ियानूस देश में लिपि तक बदल देने में उन्हें सफलता मिली।

लैटिन लिपि के बढ़ते हुए प्रचार के कारण टर्की में टाइपराइटरों की माँग बहुत बढ़ गई। पहले ही साल सरकार ने ६,००० टाइपराइटर ऑर्डर देकर विदेशों से मँगवाए थे। कमालपाशा का हुक्म है कि अधिकतर स्त्रियाँ ही टाइपिस्ट के पद पर रक्खी जायँ। सरकारी ऑफ़िसों में टाइप करने का सारा काम महिलाओं के हाथ में है। महिलाएँ वेतन कम लेती हैं और काम पुरुषों से बेहतर करती हैं। टर्की से बुरक़ा विदा हो चुका है। इसलिए आर्थिक स्वतन्त्रता के साथ ही साथ इस कार्य-क्षेत्र में आने से महिला-समाज में शिक्षा का भी काफ़ी प्रचार हुआ है, क्योंकि बिना पढ़े-लिखे और

भाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त किए टाइप का काम करना असम्भव है।

कमाल ने जितने सुधार किए हैं, और जितनी नियामतें टर्की को बख़्शी हैं, उन सब में स्त्रियों की स्वतन्त्रता का मूल्य और महत्व बहुत अधिक है। कमालपाशा ने स्कूल मास्टर की तरह, चाबुक लेकर टर्की की सामाजिक कुरीतियों को दूर किया है और महिलाओं को—पराधीनता और परदे की बेड़ियों में कसी हुई महिलाओं को—स्वाधीन जगत का स्वाद चखाया है। वह समाज और वह जाति कभी स्वाधीनता का उपभोग करने योग्य नहीं हो सकती, जो अपनी जननियों, ललनाओं और बहू-बेटियों को घर की चहार-दिवारी के अन्दर, परदे की पिटारी में बन्द रखने का अनुचित और अमानुषिक अत्याचार और प्रयास करती है। हम स्वयम् तो स्वराज्य चाहें और अपने आश्रितों, और अपने आधे अङ्ग को पिंजड़े में डाल कर ज़ुल्म करते रहें, यह कहाँ का न्याय है? कोई रूढ़ि की दुहाई देता है, कोई प्राचीनता का पाठ पढ़ाता है और कोई होने वाले पापों और व्यभिचारों की दलीलें पेश करता है, पर परदे के अन्दर कितने पाप होते हैं, इसका लेखा और ब्यौरा कब किसने जानने या कहने का साहस किया है? घर-घर मिट्टी के चूल्हे हैं, मानवीय दुर्बलताएँ हैं। ज़रा सोचने की बात है कि ग़ुलाम, दब्बू, कूपमण्डूक, परदानशीन औरतें क्या कभी स्वाधीन उमङ्गों के बच्चों की जननी बन सकती हैं? पाश्चात्य देशों—अमेरिका और जापान प्रभृति मुल्कों की स्वाधीन स्त्रियों और उनकी सन्तानों से जब हम पूर्वीय देशों—मिश्र, अफ़ग़ानिस्तान और हिन्दुस्तान की माताओं और बच्चों से तुलना करते हैं, तो मानसिक और शारीरिक क्षेत्र में आकाश-पाताल का अन्तर पाते हैं। मानों वे शासन करने और शिक्षा देने के लिए जन्म लेते हैं और ये शासित होने एवम् उनकी ग़ुलामी करने के लिए। इसका कारण और कुछ नहीं, माताओं की स्वाधीन और पराधीन प्रकृति है, रहन-सहन, रीति-रिवाज और मनोवृत्ति है। कमालपाशा ने इन्हीं पहलुओं पर विचार करके अपने देश की स्त्रियों को क़ानूनन स्वतन्त्रता का अधिकार दिलवा कर बुरक़े और बेवक़ूफ़ी को टर्की से निकाल फेंका है।

पहले की टर्की में अमीर-उमरा और साधारण स्थिति वाले 'हरम' रखते थे, यानी प्रत्येक सद्गृहस्थ के घर में बीबियों का एक क़ाफ़िला होता था। परन्तु अब वहाँ से बहुविवाह-प्रथा उठा दी गई है। एक से अधिक बीबी रखना जुर्म माना गया है। हाँ, तलाक़ जायज़ है और उसमें भी स्त्री और पुरुष दोनों को समानाधिकार प्राप्त है।

टर्की के दैनिक अख़बारों, मासिक और साप्ताहिकों को देखने से ज्ञात होता है कि वहाँ के समाचार-पत्र महिलाओं के मतलब की कितनी बातें छापने लगे हैं। लाखों महिलाएँ नित्य अख़बार पढ़ती हैं और उनमें अपने विनोद और उपभोग की सामग्री खोजती हैं। बाल कटाने के अच्छे सैलूनों, तेल, पॉमेड, वैसलीन, हैज़लीन और व्यूटीक्रीम वग़ैरह के विज्ञापन बहुतायत से प्रत्येक पत्र में देखे जाते हैं। फ़ैशन की ख़ूब वृद्धि हो रही है। स्त्रियों में बाल कटाने और ऊँची ऐड़ी के जूते पहनने का रिवाज चल पड़ा है। उन्हें अपने लिए स्वयं पति चुनने का अधिकार है। विवाह में मिली हुई दहेज़ में प्राप्त वस्तुओं पर क़ानूनन् पत्नी को अधिकार दे दिया गया है। जो पति अपनी पत्नी पर ज़ुल्म करे, उसे मारे-पीटे या उसकी बेइज़्ज़ती करे, तो उसे जेल तक होती है। पुराने ज़माने की तलाक़-प्रथा बेचारी अनबोल, बुरक़े से ढँकी हुई टर्की की महिलाओं पर कितना ज़ुल्म ढाती थी। स्त्रियाँ भेड़-बकरी समझी जाती थीं। तब टर्की की दशा गिरी हुई थी, परन्तु आज वही टर्की अपनी उन्नति और प्रगति से संसार को आश्चर्य में डाल रही है। टर्की ने इतना शीघ्र हरगिज़-हरगिज़ तरक़्क़ी न की होती, यदि वहाँ की स्त्रियों को परदे से बाहर न निकाला गया होता और उन्हें पुरुषों के साथ समानता का अधिकार न मिला होता। स्त्री और पुरुष जीवन-रूपी रथ के दो पहिए हैं, या यों कहना चाहिए कि जीवन-नौका के दो नाविक हैं। संसार के अपार-सागर के पार जाने के दोनों समान सहारे हैं। जो एक की सहायता के बिना अकेले सफलता और स्वाधीनता पाने की आशा करते हैं, उनकी बुद्धि ने काम करना छोड़ दिया है, वे परले सिरे के मूर्ख हैं।

हिन्दी साहित्य में गद्य-काव्य

[श्री० मोतीलाल मेनारिया, एम० ए०]

सार परिवर्त्तनशील है। वैज्ञानिकों का कहना है कि जिस स्थान पर आज हिमालय की गगनस्पर्शी चोटियाँ दीख पड़ती हैं, वहाँ किसी समय समुद्र लहराता था और जहाँ वर्त्तमान काल में महासागर की तरङ्गें कल्लोलें करती हैं, वहाँ कभी दुर्गम पर्वतमालाएँ खड़ी थीं। पृथ्वी के इस आकार-परिवर्त्तन में कितना समय लगा होगा, इसकी आज कल्पना भी कर लेना असम्भव है। भूगर्भ-विद्या सम्बन्धी आधुनिक आविष्कारों के आधार पर अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि यह परिवर्त्तन हुआ है और होता है। संसार में जिस प्रकार ये भौगोलिक और स्थूल हेर-फेर देखे जाते हैं, उसी प्रकार उसके अन्य अवयवों में भी रूपान्तर पाया जाता है। धर्म, नीति, आचार-विचार, रहन-सहन, सङ्गीत और साहित्य में भी यह अन्तर्हित है। यह एक स्वाभाविक बात है कि मनुष्य की रुचि सदैव एक सी नहीं रहती। वह समय-समय पर बदलती रहती है। आज जिस ग्रन्थ का वह बड़ा आदर करता है, यह आवश्यक नहीं कि कुछ वर्षों के बाद भी वह उसको उसी चाव से पढ़े। इसी प्रकार आज जो साहित्यिक सिद्धान्त लोकरञ्जक हैं, वे कल न रहेंगे, कल जो थे वे आज नहीं हैं। इसका एकमात्र कारण यही है कि प्रत्येक वस्तु की एक नियत आयु होती है, जिसको पूर्ण करने के पश्चात् उसकी मृत्यु अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त मानव-हृदय की एक और प्रवृत्ति होती है, जिसके वशीभूत होकर वह निरन्तर नई वस्तु को ढूँढ़ता और प्राचीन का बहिष्कार करता रहता है। यही कारण है कि हम एक देश की प्राचीन और नवीन साहित्यिक रुचि में आकाश-पाताल का अन्तर पाते हैं। यह प्रभेद भाषा, भाव और शैली तक ही सीमित नहीं रहता, प्रत्युत साहित्य के मूल ध्येय और आदर्श भी इससे प्रभावान्वित होते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी साहित्य को ही लीजिए। इसके आदि-काल में वीर भाव की प्रधानता रही। देश के प्रतिनिधि कवि, वीररस-प्लावित रचनाओं द्वारा अपने आश्रयदाता राजा-महाराजाओं के शौर्य्य, वंश-गौरव और युद्ध-कौशल आदि का बखान करने में लीन थे। पृथ्वीराज-रासो और हम्मीर-रासो आदि ग्रन्थ इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। तदनन्तर साहित्य की धारा भक्ति-पथ की ओर मुड़ी। कबीर, सूर और तुलसी जैसे महाकवियों ने, नर-प्रशंसा छोड़ कर, अपनी अलौकिक कवित्व-शक्ति, लोकोत्तर प्रतिभा और अटूट भक्ति के सहारे अपने आराध्य देवों के गुण गान कर अपनी वाणी को पावन बनाया। आगे चल कर साहित्य-मन्दाकिनी की शान्त और उज्ज्वल धारा रीति-ग्रन्थों के रूप में बही। साहित्य के अङ्गों, अलङ्कार और रस आदि का अच्छा विवेचन इस समय के कवियों ने किया। नायक-नायिकाओं के हाव-भाव और कटाक्षों का चमत्कारिक वर्णन कर कवि विषयासक्त राजाओं को रिझाने लगे। सांसारिक वासनाओं में लिप्त कविता-प्रेमी बेंदी, दिठौना, महावर, केश और काजल के जाल में फँसने लगे। नायिकाओं की विरहाग्नि से संसार जलने लगा। आँसुओं की बाढ़ से पड़ोसियों के घर और गाँव बहने और डूबने लगे। फिर हिन्दुओं की स्वतन्त्रता, ऐक्य, प्रेम और सौहार्द के समान, साहित्य की धारा भी छोटी-छोटी शाखाओं में विभाजित हो गई और अलग-अलग नालों में बहने लगी। महाकाव्य और खण्ड-काव्य, उपन्यास और गल्प, काव्य और गद्य-काव्य इसी विभाजन के प्रतिफल हैं। परिवर्त्तन के इस घात-प्रतिघात का अनुमान करने के लिए आज जब हम अतीत की ओर दृष्टि फेरते हैं, तो वह काम नहीं देती, बुद्धि पङ्गु हो जाती है। हमारा अदम्य उत्साह, अटूट वैभव, अथाह अनुभव और असीम ज्ञान भी कुछ काम नहीं देता। हताश और नत-मस्तक होकर हम वर्तमान की तरफ़ मुँह कर लेते हैं।

यह एक सर्वसम्मत सिद्धान्त है कि किसी एक पदार्थ की स्थिति, रूप और आकार-प्रकार में रूपान्तर किसी वाह्य शक्ति के आघात अथवा सम्पर्क से होता है। यदि यह वाह्य शक्ति अधिक बलवती हुई तो परिवर्तन की गति तीव्र नहीं, तो मन्द पड़ जाती है। यही सिद्धान्त एक देश और राष्ट्र की भाषा और साहित्य पर भी लागू होता है। एक देश की भाषा और साहित्य में परिवर्तन दूसरे देश के सम्पर्क से होता है; विकसित और श्रीसम्पन्न भाषा का निर्बल और अविकसित भाषा पर बड़ा स्थायी प्रभाव पड़ता है। कभी-कभी तो अवनत भाषा उन्नत भाषा के कारण अपना अस्तित्व ही खो बैठती है। जो भाषा जितनी ही निर्बल और अविकसित होती है, उसको निकटस्थ भाषाओं की उतनी ही अधिक चोटें भी सहन करनी पड़ती हैं। हिन्दी भाषा की कुछ ऐसी ही दशा है। वह निर्बल है, अधखिली है और अभी तक वियोगावस्था ही में है। इसलिए पड़ोस की भाषाओं के रोगी कीटाणु भी इसको शीघ्र आ दबाते हैं। कुछ ही समय पहले इसको छायावाद का रोग लगा था। इस व्याधि का प्रभाव हिन्दी कविता पर क्या पड़ा, इसको प्रत्येक हिन्दी भाषा-भाषी जानता है। जितनी छीछालेदर इस एक 'छायावाद' शब्द की हिन्दी साहित्य में हुई है, वैसी संसार के किसी भी देश की किसी भी भाषा के किसी भी शब्द की हुई होगी, इसमें सन्देह है। अङ्गरेज़ी साहित्य में भी ऐसे शब्द हैं, जिनके अर्थ के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद रहा है। मिल्टन के ब्लाइण्ड माउथ् (Blind Mouth) और टू हैण्डेड एञ्जिन (Two Handed Engine) और शेक्सपियर के शार्ड बॉर्न (Shard Borne) और फ़ी ग्रीफ़ (Fee Grief) आदि शब्द इसी श्रेणी में आते हैं। परन्तु इन सब पर मिला कर भी इतने पृष्ठ नहीं रँगे गए थे, जितने इस एक 'छायावाद' शब्द पर। अच्छा हुआ जो यह झगड़ा अब बन्द हो गया है; क्योंकि इतनी दाँता किट्-किट् के पश्चात भी आज तक कोई सन्तोषजनक निर्णय नहीं हो सका तो आगे क्या आशा थी। आज भी तो छायावादी कवि इसका मनमाना अर्थ लेते हैं, और अस्पष्ट, भावशून्य, अर्थ-शून्य और नग्न कविता को ही छायावाद की कविता बतलाते हैं। अस्तु—

रुचि-परिवर्त्तन के कारण कहिए वा साहित्य-सम्पर्क के कारण, परन्तु यह मानना पड़ेगा कि हमारे हिन्दी साहित्य में ली गई नई विशेषताओं का प्रादुर्भाव हो रहा है। छायावाद के साथ ही कभी-कभी गद्य-काव्य की भी चर्चा हो जाती है। हिन्दी की कई पत्रिकाओं में अक्सर गद्य-काव्य निकला करते हैं। हिन्दी की वर्तमान अवस्था पर दृष्टिपात करने से आभासित होने लगता है कि हिन्दी-कवियों की रुचि द्रुतगति से बदल रही है। खड़ी बोली में कविताएँ रच कर उन्होंने रूढ़िगत छन्दों और विषयों के परिहार का मार्ग निकाला था। अब गद्य-काव्य लिख कर वे दो क़दम और आगे बढ़ रहे हैं। यह कोई बुरी बात नहीं। कवि निरङ्कुश कहे जाते हैं। कवियों में निरङ्कुशता कोई दोष नहीं—गुण है। एक अच्छा कवि पुरानी शैली और परिपाटी का अन्ध-अनुयायी नहीं हो सकता। संसार में अच्छे कवि वे ही हुए हैं, जिन्होंने कभी किसी प्राचीन कवि-परम्परा का अनुकरण नहीं किया। ऐसी दशा में हमारे कवि भी कविता करने का कोई नया ढङ्ग निकालें तो क्या हानि है? गद्य काव्य संसार के लिए न सही, हमारे लिए तो नई ही वस्तु है। प्रश्न हो सकता है कि यह दूसरों का जूठन और दूसरों के मस्तिष्क की उपज की नक़ल हिन्दी में क्यों? इसका एक मात्र उत्तर यही है कि इस विश्वबन्धुत्व के वातावरण और युग में, हमारा और तुम्हारा—मैं-मैं और तू-तू—करने की क्या आवश्यकता है। कवियों के लिए सारा संसार एक है, उनकी दृष्टि में कोई अपना-पराया नहीं। एक मनुष्य दूसरे को सहायता दे और ले सकता है, और फिर सहायता न लें तो करें क्या? हिन्दी कवियों में मौलिकता कहाँ? वे तो उन कारीगरों के समान हैं, जो ताजमहल के फ़ोटो को सामने रख कर और मिट्टी के ताजमहल बना कर अपना पेट भरते हैं। ऐसे कवि धन्यवाद के पात्र अवश्य हैं। परन्तु उनका परिश्रम व्यर्थ है। जिन्होंने मुग़ल-सम्राट शाहजहाँ का विश्व-विख्यात ताजमहल नहीं देखा है, वे इन छोटे-छोटे मिट्टी के खिलौनों को देख कर ही सन्तोष कर लेते और असली ताजमहल की प्रशंसा करने लगते हैं। परन्तु जिन्होंने जमुना-तट-स्थित रजत-वर्ण और गगन-चुम्बी समाधि का अवलोकन किया है, उनके सामने इनका क्या और कितना मूल्य हो

सकता है ? याद रखने की बात है कि नमूने को सामने रख कर बनाई हुई वस्तु कभी नमूने से श्रेष्ठतर नहीं हो सकती। यही कारण है कि हिन्दी के आधुनिक गद्य-काव्यों को पढ़ कर निराशा ही होती है। इन नक़ली गद्य-काव्यों ने इतना भयङ्कर, विकृत और भ्रष्ट रूप धारण कर लिया है कि जब इनके भावी साफल्य की बात सोचते हैं, तो भय लगता है और लाख रोकने पर भी हृदय की धड़कन बनी ही रहती है।

गद्य-काव्य के पहले कवि और जन्मदाता अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान विटमेन (Whitman) माने जाते हैं। इनके पहले भी महाकवि वर्डस्वर्थ ने छन्दों की बेड़ियों को तोड़ कर अपनी कविताओं को गद्य-काव्यों का रूप देने का उद्योग किया था, परन्तु उनको सफलता न मिली। वे कहा करते थे कि 'पद्य और गद्य में कोई अन्तर नहीं, और कविता की भाषा बोल-चाल की ही होनी चाहिए।' अच्छी कविता के लिए न छन्द की आवश्यकता है न अलङ्कार की। उसकी जन्मभूमि आत्मा है। परन्तु जब वे स्वयं ही अपने सिद्धान्तों का ठीक रूपेण पालन न कर सके तो दूसरे उनसे क्यों प्रभावित होने लगे। परन्तु विटमेन ने तो एक प्रकार से क्रान्ति ही पैदा कर दी। परम्परागत समस्त साहित्यिक आदर्शों और छन्दों का बहिष्कार किया और एक अनोखे ढङ्ग से अपने विचारों और विश्वासों को प्रकट करने लगे। जिस समय उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'लीव्ज़ ऑफ़ ग्रास' (Leaves of Grass) प्रकाशित हुई, उस समय अमेरिका में तहलक़ा मच गया। उसकी कड़ी से कड़ी आलोचनाएँ और टीका-टिप्पणियाँ होने लगीं। कहते हैं कि उन दिनों विटमेन का घर से बाहर निकलना तक बन्द हो गया था। परन्तु उस समय कुछ ऐसे भी गुण-ग्राही और निष्पक्ष विद्वान थे, जिन्होंने विटमेन के भावों और उसकी भावुकता को समझने और समझाने का प्रयत्न किया। ऐसे सज्जनों में इमर्सन (Emerson) भी एक थे। उन्होंने विटमेन को ढाढ़स बँधाया और एक पत्र में लिखा कि 'बुद्धिमत्ता और वाक्-विदग्धता के दृष्टिकोण से तुम्हारी पुस्तक अद्वितीय और सर्वश्रेष्ठ है।' फलतः पुस्तक की माँग बढ़ी और एक ही महीने में उसके प्रकाशकों को कई संस्करण निकालने पड़े। फिर क्या था, विटमेन के पास धन्यवाद के पत्र पर पत्र आने लगे—उन पर सम्मान की वर्षा होने लगी। उस वक्त जैसी धूम उक्त पुस्तक की साहित्य-समाज में मची वह अकथनीय है। धीरे-धीरे गद्य-काव्य का प्रचार बढ़ा। यहाँ तक कि जिन्होंने विटमेन की कटु से कटु से आलोचनाएँ की थीं, उनमें से भी कुछ कवियों ने गद्य-काव्य लिखे। परन्तु कोई भी अपनी प्रतिभा अथवा लेखनी के बाण से विटमेन के आसन को न डिगा सका। उनके गद्य-काव्य अद्वितीय ही रहे। इस प्रकार गद्य-काव्य की पतली धारा ने बढ़ते-बढ़ते महानद का रूप धारण कर लिया और अन्य देशों में भी इस नवीन काव्य-शैली का प्रचार हुआ। कई वर्षों बाद या यों कहिए कि सब से पीछे महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इसे अपनाया और अपनी अद्भुत कवित्व-शक्ति और कल्पना का जीवन फूँक-फूँक कर गद्य-काव्य लिखने लगे। रवीन्द्रनाथ के गद्य-काव्यों के कई संग्रह—फ्रूट गेदरिङ्ग और फ्र्यूजीटिव आदि—संसार के साहित्य की अमूल्य सम्पत्ति हैं। हिन्दी में भी इनके अनुवाद हुए और कुछ लोगों ने इनके आधार अथवा इनकी छाया पर भी कई गद्य-काव्य लिखे।

छायानुवादों की गति जब मन्द पड़ी तो कुछ लोगों ने मौलिक रचनाएँ भी कीं। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने 'अन्तस्तल' लिख कर इसका श्रीगणेश किया। इस समय वियोगी हरि के कुछ गद्य-काव्य (निबन्ध ?) 'प्रभा', 'सरस्वती' और सम्मेलन पत्रिका में भी छपा करते थे। कुछ वर्षों बाद आपके 'अन्तर्नाद' का जन्म हुआ। परन्तु इस समय तक गद्य-काव्यों का कोई निश्चित रूप स्थिर नहीं हुआ था। 'अन्तस्तल' और 'अन्तर्नाद' को गद्य निबन्धों के मनोवेगों पर, संग्रह ही समझना चाहिए। इसलिए श्री० रायकृष्ण दास की 'साधना' के प्रकाशन के समय को ही गद्य-काव्य का प्रारम्भिक काल मानना ठीक होगा। गद्य-काव्य का परिमार्जित और सच्चा स्वरूप इसी काल से हमारे सामने आता है। इसके पश्चात और भी चार-पाँच संग्रह, 'प्रवाल', 'छाया-पत्र' और 'चित्रपट' के नाम से निकले हैं—पत्र-पत्रिकाओं में तो कभी-कभी इनका अच्छा जमघट रहता है। परन्तु उत्कृष्ट गद्य-काव्य के संग्रह चार अथवा पाँच से अधिक नहीं हैं। यही गद्य-काव्य का संक्षिप्त इतिहास है।

'गद्य-काव्य' दो शब्दों से मिल कर बना है—गद्य और काव्य। इसलिए एक ऊँचे गद्य-काव्य के लिए आवश्यक है कि उसमें 'गद्य' और 'काव्य' दोनों के लक्षणों का समन्वय हो। यहाँ पर हमें यह देखना पड़ेगा कि 'गद्य और काव्य' किसे कहते हैं और दोनों के संयोग से बने हुए 'गद्य-काव्य' शब्द का क्या अर्थ होता है और होना चाहिए। वह लेखन-प्रणाली, जिसमें मात्रा और वर्ण की संख्या और स्थान आदि का कोई नियम न हो, उसे गद्य कहते हैं। गद्य में छन्द और वृत्त का प्रतिबन्ध नहीं होता—बाक़ी अलङ्कार, रस आदि सब गुण होते हैं। गद्य का काम सरल और सुबोध भाषा में वास्तविकता को पाठकों के सामने रख देना है। छन्दों की बेड़ी न होने से गद्य-लेखक को कल्पना के समुद्र में स्वतन्त्रतापूर्वक ग़ोते लगाने का पूरा-पूरा मौक़ा रहता है। परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि गद्य-लेखक भाषा के समस्त नियमों का उल्लङ्घन करता है। नहीं, गद्य-लेखक उन्हीं नियमों की अवहेलना करता है, जो छन्द-शास्त्रों पर निर्भर हैं, लालित्य, सौन्दर्य और सुसङ्गति की उसको भी आवश्यकता रहती है।

यह तो हुई गद्य की बात। अब काव्य की ओर आइए। काव्य के लक्षणों के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। सबने अपनी रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न सम्मतियाँ दी हैं। रस गङ्गाधर ने रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्दों को काव्य कहा है। अर्थ की रमणीयता के अन्तर्गत शब्द की रमणीयता भी समझ कर लोग इसे स्वीकार करते हैं। इसलिए यह लक्षण स्पष्ट नहीं है। साहित्य-दर्पणकार विश्वनाथ ने 'रसात्मक वाक्य' को काव्य कहा है और किसी ने चमत्कारयुक्त उक्ति को काव्य कहा है, परन्तु इतने से हमें सन्तोष नहीं होता। कविता वास्तव में वह कला है, जिसमें चुने हुए शब्दों के द्वारा कल्पना और मनोवेगों पर प्रभाव डाला जाता है। काव्य में तीन बातें विषय, स्वरूप और भाव (Form, and Theme Spirit) अवश्य और सदैव देखने में आती हैं। और सङ्गीत का तो काव्य से नैसर्गिक सम्बन्ध है। कविता में सङ्गीत का न होना अनल्प न्यूनता है, इसलिए गद्य और काव्य एक दूसरे के प्राणघातक शत्रु समझे जाते हैं। गद्य-लेखक सत्य की खोज में घूमता है, परन्तु यथार्थवाद कवि को दरिद्र बनाता है और पदच्युत करता है। कवि एक विचित्र कीमियागर है; जिस वस्तु को वह छूता है, उसे सुवर्ण बना डालता है—उसके लिए कोई वस्तु तुच्छ नहीं। सूखे हुए पत्ते, घास और वृक्षों में से वह अपनी स्वर्गीय वाणी के सहारे सौरभ और सौन्दर्य उत्पन्न करता है। वर्डस्वर्थ ने सच कहा है कि :—

To me the meanest flower that blows
Can give thoughts that often lie too
deep for tears.

अर्थात्—"साधारण से साधारण फूल भी मुझे ऐसे भाव प्रदान करते हैं, जो शब्दों द्वारा क्या आँसुओं से भी व्यक्त नहीं किए जा सकते।"

गद्य और काव्य के इस विवेचन से स्पष्ट हो गया होगा कि भेद दोनों में है अवश्य, परन्तु बहुत सूक्ष्म। मोटी दृष्टि से देखने में तो यही मालूम होता है कि इन दोनों में भेद है तो केवल छन्द और वृत्त का। परन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि छन्दोबद्ध होने से ही कोई रचना कविता कहलाने लग जायगी। जिस पद्य-रचना में न कल्पना का प्राचुर्य है और न मनोवेगों का प्राबल्य, वह कविता नहीं, पद्य है। वह एक पद्य का नमूना हो सकती है, कविता का नहीं, और गद्य तो निस्सन्देह वह है ही नहीं। इसके विपरीत एक रचना में कल्पना, व्यंग्य, ध्वनि आदि काव्योचित गुण मिलते हैं, तो हम उसे, गद्य होने पर भी, काव्य कहेंगे। निष्कर्ष यह है कि गद्य में भी अच्छी कविता हो सकती है और पद्य में होने से ही किसी रचना को कविता कहलाने का श्रेय नहीं मिल सकता। अतः गद्य-काव्य में गद्य के लक्षणों के अनुसार केवल छन्दों का प्रतिबन्ध नहीं होगा, बाक़ी गद्य और काव्य के सब लक्षणों का विद्यमान होना अनिवार्य है। ये लक्षण होंगे सरलता, स्पष्टता, स्वाभाविकता, माधुर्य, लालित्य, प्रासाद, भावुकता, कामना और मनोवेगों का बाहुल्य।

यहाँ पर यह कह देना अनुचित न होगा कि बहुत से कवियों ने जो अपने गद्य-काव्यों के संग्रहों पर 'गद्य-गीत' लिखा है, वह भूल है। गीत का सम्बन्ध गायन से है। केवल वही कविताएँ गद्य हो सकती हैं, जो रस के अनुसार विशेष राग-रागिनियों में बाँध दी गई हैं। सूर, तुलसी आदि के पद गीत-काव्य की श्रेणी में

अवश्य आ सकते हैं । गद्य नहीं गाया जा सकता । हम उसे 'गद्य-काव्य', 'गीत-काव्य' और 'गद्य-निबन्ध' अवश्य कह सकते हैं, परन्तु 'गद्य-गीत' कभी नहीं ।

हिन्दी में प्रचलित गद्य-काव्य को जब हम काव्य और गद्य की उपर्युक्त कसौटी पर कसते हैं, तो हमको निराशा ही होती है । इनमें कुछ तो ऐसे हैं, जिनको कसौटी के सामने लाते ही लज्जा आती है, दूसरे ऐसे हैं जो अङ्गरेज़ी और बँगला से अनूदित किए गए अथवा उनकी छाया पर लिखे गए हैं । परन्तु साथ ही कहीं-कहीं ऐसे भी गद्य-काव्य देखने में आते हैं, जिनको देख कर हृदय उछलने लगता है और उनके रचयिताओं की सुवर्ण लेखनी चूमने को जी चाहता है । परन्तु ऐसे गद्य-काव्यों की संख्या है बहुत कम । अधिकांश ऐसे ही हैं, जिनमें न कवित्व है न, गद्यत्व । जिसके उदाहरण लीजिए—

"आशा की झलक

विश्व के एक छोर से दूसरे छोर तक जो महान सङ्गीत गूँज रहा है, उसे आज मेरी हृदय-तन्त्री पर बजाने का प्रयत्न कौन कर रहा है ?

क्या मेरे कमज़ोर तार इस महान सङ्गीत को सह सकेंगे । ओ अज्ञात, इसका भी तो ध्यान किया होता ।

परन्तु, इन तारों को मसल कर फेंक दूँ, यह भी तो मेरे कमज़ोर हृदय से नहीं होता; क्योंकि यह आशा अभी विलुप्त कहाँ हुई है कि मेरे ये बिखरे पत्ते संसार में बसन्त को न ले आएँगे ?"

('हंस' विशेषाङ्क, पृष्ठ २८)

कवि को समस्त संसार दिव्य सङ्गीत से गूँजता हुआ सुनाई पड़ता है और साथ ही आज ऐसा भी प्रतीत होता है कि कोई अज्ञात शक्ति तारों को बजाने का प्रयत्न कर रही है । कवि की यह कल्पना अनुचित और अस्वाभाविक है । एक कमरे में यदि कई वाद्य-यन्त्र एक स्वर में मिले पड़े हुए हों, यदि उनमें से एक बजाया जाय अथवा कमरे में किसी प्रकार का शब्द वा गूँज पैदा की जाय, तो यह प्रकृति का नियम है कि वे सब वाद्य-यन्त्र, सहानुभूतिक प्रकम्पन के कारण एक सा स्वर निकालने लगते हैं, सब में वही ध्वनि निकलती है । ऐसा नहीं हो सकता कि उनमें से एक तो बजने लग जाय और दूसरे योंही पड़े रह जायँ । यहाँ पर कवि ने जब यह कह दिया कि सङ्गीत से सारा संसार 'एक छोर से दूसरे छोर तक' ध्वनित हो रहा है, तो फिर क्या कारण है कि कवि की हृदय-तन्त्री में झङ्कार नहीं उठती, जब कि संसार में रक्खी हुई है, विश्व के सुर से मिली हुई है—आध्यात्मिक पक्ष में ईश्वरीय अंश उसमें भी विद्यमान है । इसके दो कारण हो सकते हैं । एक तो यह कि कवि की हृदय-तन्त्री विश्व के बाहर कहीं खूँटी पर टँगी हुई है, दूसरा यह हो सकता है कि उसकी हृदय-तन्त्री टूटी हुई हो; परन्तु जैसा कि आगे कहा गया है, वह टूटी हुई नहीं, केवल कमज़ोर है । मेरा ख़याल है, कवि ने श्रीरवीन्द्रनाथ टैगोर की इन पंक्तियों के आधार पर अपनी कल्पना को खड़ा किया है ।

I bring you a voiceless instrument. I strained to reach a note which was too high in my heart, and the string broke.

परन्तु ध्यान रखने की बात है कि रवि बाबू का यन्त्र Voiceless (निःशब्द) है, इसलिए उसमें से यथेष्ट स्वर नहीं निकल रहे हैं । गद्य-काव्य के लेखक ने कहीं इसका उल्लेख भी नहीं किया है । ऐसी दशा में यही मानना पड़ता है कि अज्ञात शक्ति (कवि नहीं ?) पागल है । आगे महान सङ्गीत लिखा है । महान सङ्गीत और कमज़ोर तार से कोई सम्बन्ध नहीं । एक सितार पर यदि एक राग सुगमता से निकलता है, तो दूसरा भी निकलेगा । ऐसा नहीं हो सकता कि भैरवी तो बज जाय और मालकौस न निकले । यह तभी हो सकता है, जब बजाने वाला चतुर न हो । परन्तु अज्ञात शक्ति जो संसार को गुञ्जायमान कर चुकी है, पत्थर, पेड़ और पानी में से सुर निकाल चुकी है; क्या हृदय-तन्त्री को न बजा सकेगी । रवीन्द्रनाथ की वीणा के टूटने के तीन कारण हैं—voiceless instrument (निःशब्द यन्त्र) strain (कठिन उद्योग) too high a note (बहुत ऊँचा स्वर) ऐसी दशा में सुर न निकले और तार टूट जायँ, इसमें क्या आश्चर्य है । वर्णन बड़ा ही अजीब, स्वाभाविक और सरल है, गद्य-काव्य के लेखक ने एक महान् शब्द से छुटकारा पाने का प्रयत्न किया है, परन्तु उससे उनको कुछ भी सफलता नहीं मिली है । उल्टा वर्णन निर्जीव और भद्दा हो गया है ।

फिर देखिए, कवि तारों को मसलना चाहता है। फूल मसले जाते हैं, कलियाँ मसली जाती हैं। परन्तु तारों का मसलना कहीं नहीं सुना। कवि द्वारा प्रयुक्त शब्द अन्तिम (Final) होना चाहिए। वह ऐसा होना चाहिए जिससे कथित विषय का चित्र सामने आ जाय और साथ ही ऐसा होना चाहिए जिसकी जगह दूसरा शब्द और शब्द-समूह काम ही न दे सके। तार टूटता है, असावधानी से रखने पर उलझ भी जाता है, और कम मूल्य का होने पर, अथवा गीली जगह में पड़े रहने के कारण चिकटा जाता है। परन्तु मसल कर फेंकना तो तभी हो सकता है, जब कोई चीज़ जैसा वीर हाथ में ले।

बात हृदय-तन्त्री और सङ्गीत की हो रही थी, बीच ही में 'बिखरे पत्ते' आ कूदे। इसके कारण वर्णन बड़ा ही अरुचिकर और अरोचक हो गया है। बसन्त में पत्ते अवश्य नए आते हैं, परन्तु उन दिनों पवन बहुत चलता है और इसलिए सूखे पत्ते वृक्षों के नीचे नहीं पड़े रहते। वे उड़ कर चले जाते हैं, फिर बिखरे पत्ते किस तरह बसन्त को लावेंगे, यह भी बात समझने की है। साथ ही भाव भी अस्पष्ट हैं, क्योंकि ऐसे शब्द-विन्यास और शब्द-शोधन से कवि का क्या तात्पर्य है, साफ़ नहीं होता है। जिस संसार में सङ्गीत की गूँज हो रही है, वहाँ निराशा कैसी ? सङ्गीत—और फिर महान सङ्गीत तो आनन्द और आशा का आगार ही है। कवि की अन्त की दो पंक्तियों का भाव बिहारी के इस दोहे से मिलता है—

इहि आशा अटक्यो रहै, अलि गुलाब के मूल।
ऐहें बहुरि बसन्त ऋतु, इन डारन वै फूल॥

परन्तु जो भव्यता और प्रकाश बिहारी के दोहे में है, वह गद्य-काव्य में नहीं। आशा की झलक उक्त दोहे में है, गद्य-काव्य में नहीं। बिहारी के दोहे ने न जाने कितने निराश हृदयों में आशा का सञ्चार किया होगा, इसका क्या ठिकाना है ? दो पंक्तियों में जो आशावाद का भाव भरा है, उसका अल्पांश भी गद्य-काव्य के इस लम्बे-चौड़े और सूने भूतमहल में नहीं मिलता है। भाव, ध्वनि, व्यंग्य, अलङ्कार और रस सब रहे, परन्तु कुछ अर्थ भी तो नहीं है।

'तारों को मसल कर फेंक दूँ' इसमें कितनी असङ्गति है। हृदय ही के तार और हृदय ही से फेंकना कैसे हो सकेगा। यह तभी सम्भव है, जब कवि के दो हृदय हों और यहाँ तो एक भी पूरा नहीं है; 'कमज़ोर है', फिर फेंकने का काम हाथों का है; हृदय का नहीं। आधुनिक गद्य-काव्य के विधाताओं में 'हृदय-तन्त्री' शब्द का प्रयोग अधिक देखा जाता है। इसमें भी मौजूद है। एक ने शुरू कर दिया, दूसरे भी लिखने लगे। एक भेड़ कुएँ में गिरी, दूसरी भी उसके साथ। किसी ने यह नहीं सोचा कि यह अनुचित है अथवा उचित। शायद इन कवियों को यह मालूम नहीं होगा कि हृदय तारों का बना हुआ नहीं होता। वह मांस का एक पिण्ड होता है। किसी भी अच्छे प्राचीन और अर्वाचीन कवि ने हृदय-तन्त्री नहीं लिखा। जायसी ने नसों को ताँत की उपमा दी है, और यह बहुत उचित है। इससे कवि की कल्पना-शक्ति की प्रौढ़ता का ही परिचय मिलता है :—

हाड़ भए सब किङ्गरी, नसैं भई सब ताँति।
रोम-रोम से धुनि उठै, कहौं बिथा केहि भाँति॥

गद्य-काव्य के रचयिता और उनके कुछ भक्तों को ऐसी स्पष्ट, अस्वाभाविक और असम्बद्ध कविताएँ भले ही अच्छी लगें, परन्तु दूसरों का भी इनसे मनोरञ्जन हो सकेगा, ऐसी आशा रखना भूल है। बात ऐसी लिखनी चाहिए जो सबकी समझ में आ जाय। यदि आप ही ने लिखा और आपही समझे तो फिर परिश्रम व्यर्थ है। कुछ लोग कहेंगे कि काव्य में इतना सत्य और सूक्ष्मता ढूँढ़ने की क्या आवश्यकता है। काव्य क्या विज्ञान थोड़े ही है, जिसमें पग-पग पर सत्य के दर्शन होते हैं। यह ठीक है, हम भी मानते हैं और यह आवश्यक भी नहीं कि कवि सत्य ही बोले। कवि-सत्य साधारण सत्य नहीं होता, वह हार्दिक सत्य होता है। जिस बात को कवि सत्य समझता है, चाहे वह झूठ ही क्यों न हो, इस प्रकार कहता है कि श्रोता अथवा पढ़ने वाले उसको ठीक उसी भाव में समझ जायँ जिस भाव में कवि समझता है। अर्थात्, उसमें उसकी वृत्ति रम जाय, यही कवि-सत्य कहाता है। परन्तु साथ ही यहाँ यह भी कहना पड़ेगा कि योंही किसी भाव अथवा वृत्ति में लीन हुए बिना, कुछ का कुछ अण्ट-सण्ट लिख बैठना और बाँके-टेढ़े चित्र खड़े करना कविता नहीं—वह कवि-प्रलाप है ! बस, आज यहीं तक—विस्तारपूर्वक फिर कभी।

भूल

[श्री० विश्वम्भरनाथ शर्मा, कौशिक]

त के आठ बज चुके थे। सड़कों पर मनुष्यों का आवागमन कम हो चला था। इसी समय एक युवक जिसका वर्ण गौर, शरीर सुडौल तथा पुष्ट—अच्छे वस्त्र पहने, आँखों पर चश्मा चढ़ाए, सिगरेट पीता हुआ चला जा रहा था। सहसा वह एक गली की ओर मुड़ा और थोड़ी दूर चल कर एक मकान के सामने रुक गया। उसने सिर उठा कर दोमञ्ज़िले की ओर देखा। दोमञ्ज़िले के कमरे में बिजली की रोशनी फैली थी। युवक ने सिगरेट का एक गहरा कश लेकर उसे फेंक दिया और आवाज़ लगाई—"रमेश!" कोई उत्तर न मिलने पर उसने पुनः वही आवाज़ लगाई। इसी समय कमरे के द्वार पर एक मनुष्य की मूर्ति दिखाई दी। उस मूर्ति ने पूछा—"ओङ्कार?" युवक के 'हाँ' कहने पर मूर्ति ने कहा—"आओ! आओ! ऊपर चले आओ।" युवक के सम्मुख ही एक ज़ीना था। युवक ज़ीने से होकर ऊपर कमरे में पहुँचा। कमरा छोटा था। बीच में एक गोल मेज़ रक्खी थी और उसके चारों ओर कुर्सियाँ लगी थीं। एक ओर कोने में एक अलमारी थी, जिसमें पुस्तकें चुनी हुई थीं। एक कुर्सी पर हाथ रक्खे एक युवक खड़ा था। यह व्यक्ति साधारण डीलडौल का था और ओङ्कार का समवयस्क प्रतीत होता था। यह व्यक्ति भी आँखों पर चश्मा लगाए हुए था। ओङ्कार को देखते ही वह बोला—क्यों, खड़े क्यों हो गए थे? ज़ीना तो खुला था—चले आते। ओङ्कार ने कुछ सङ्कोच का भाव प्रदर्शित करते हुए कहा—"मैंने सोचा, कदाचित तुम हो या न हो।"

"न भी होता तो क्या था, तुम्हें निस्सङ्कोच चले आना था। ऐसा सङ्कोच करोगे तो कैसे काम चलेगा।" रमेश ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

ओङ्कार ने इसका कोई उत्तर न दिया, चुपचाप एक कुर्सी पर बैठ गया।

कमरे के एक ओर एक द्वार था, जिससे मकान के भीतर आने-जाने का रास्ता था। रमेश ने उस द्वार पर खड़े होकर पुकारा—"शान्ता, तुम्हारे मास्टर साहब आ गए।" इतना कह कर रमेश ओङ्कार की ओर देख कर मुस्कराया। ओङ्कार भी मुस्करा दिया। कुछ क्षणों पश्चात् एक युवती, जिसकी वयस बीस वर्ष के लगभग होगी—नख-शिख की सुन्दर, श्वेत साड़ी तथा श्वेत ही जम्पर पहने हुए आई और द्वार के पास आकर लज्जा का भाव दिखाते हुए ठिठुक गई। रमेश ने कहा—खड़ी क्यों हो गई—जाओ बैठो! ऐसी लज्जा करोगी तो फिर सीखोगी क्या? युवती किञ्चित् मुस्करा कर सिर झुकाए हुए आई और ओङ्कार के सामने बैठ गई। ओङ्कार ने कहा—"बाजा कहाँ है?" युवती ने दाँतों

तले जीभ दाब-कर धीमे स्वर में कहा—"अरे! बाजा तो भूल ही आई।" इतना कह कर उसने उठना चाहा, परन्तु रमेश उसे रोक कर बोला—"तुम बैठी रहो, मैं लाए देता हूँ।" यह कह कर रमेश भीतर चला गया और कुछ क्षणों पश्चात् एक हारमोनियम लिए हुए वापस आया। हारमोनियम को मेज़ पर रखते हुए कहा—"कल से स्वयम् ले आया करना, मैं रोज़-रोज़ यह ड्यूटी अदा नहीं कर सकूँगा।"

शान्ता मुस्कराते हुए दबे स्वर में बोली—मैंने आपसे लाने को कब कहा था—मैं तो स्वयम् जा रही थी।

ओङ्कार उठ कर शान्ता की बग़ल वाली कुर्सी पर आ बैठा और बोला—कल का सबक़ सुनाओ।

युवती ने धोती को सँभाल कर, सिर का पल्ला ठीक करके बाजा अपने आगे खिसकाया और धौंकनी खोली। ओङ्कार बोल उठा—"कल मैंने तुम्हें समझाया था कि पहले 'स्टॉप' खींचा करो, तब धौंकनी खोला करो। यदि तुम स्टॉप खोलने के पहले धौंकनी खोल लोगी और यदि धौंकनी चला दी तो बाजा ख़राब होने की सम्भावना रहेगी, क्योंकि स्टॉप तो बन्द हैं।"

युवती ने शर्मा कर स्टॉप खींचे। रमेश बोल उठा—जो बातें बताई जाया करें, उन्हें याद रक्खा करो। ये बातें याद रखना बहुत ज़रूरी हैं। क्या बताऊँ यार ओङ्कार! मेरी बहुत इच्छा रही कि बाजा सीखूँ, पर कुछ ऐसी परिस्थिति रही कि सीख ही न सका। ख़ैर! यदि देवी जी सीख जायँ तो मैं उसे भी अपने ही सीखने के बराबर समझूँगा। भला कितने दिनों में सीख जायँगी?

"यदि ठीक ढङ्ग से और नियमित रूप से सीखेंगी तो छः महीने में इस योग्य हो जायँगी कि तुम्हारा जी बहला सकें।"—ओङ्कार ने उत्तर दिया।

"तब तो जल्दी सीखेंगी। अच्छा तो अब तुम लोग अपना कार्य करो।"—इतना कह कर रमेश एक कुर्सी खिसका कर पुस्तकों की अल्मारी के पास बैठ गया और अल्मारी से एक पुस्तक निकाल कर उसके पृष्ठ उलटने लगा।

ओङ्कार शान्तादेवी को सरगम तथा पलटे बताने लगे। कभी-कभी ओङ्कार को शान्ता का हाथ पकड़ कर भी बताना पड़ता था। जब शान्ता का हाथ ओङ्कार के हाथ में आता तो ओङ्कार को शान्ता का हाथ काँपता हुआ सा प्रतीत होता था; परन्तु ओङ्कार ने इस पर कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया। रमेश कभी-कभी कनखियों से इन दोनों की ओर देख लेता था।

अकस्मात् ओङ्कार बोल उठा—जब तक तुम बाजे के स्वर के साथ अपने गले का स्वर न मिलाओगी तब तक स्वरों का ज्ञान होना कठिन है।

शान्ता ने कुछ उत्तर न दिया। रमेश इन दोनों की ओर मुख करके शान्ता से बोला—सरगम मुँह से भी तो कहती जाओ, नहीं तो याद कैसे होगा।

शान्ता कुछ क्षणों तक लज्जा का भाव दिखा करके धीमे स्वर में स रे ग म, रे ग म प इत्यादि कहने लगी। रमेश मुस्करा कर बोला—ओहो क्या स्वर है। मालूम होता है, गले पर कोयल बीट कर गई है।

शान्ता झेंप गई और झुँझला कर बोली—जाओ हम नहीं सीखते बाजा-वाजा!

रमेश हँसते हुए बोला—और सुनो, ग़ुस्सा बाजे पर उतारा जा रहा है।

ओङ्कार बोल उठा—भई तुम बीच में मत बोलो, हर्ज होता है।

"अरे भई, मेरा तो मतलब यह था कि ज़रा खुल कर ऊँचे स्वरों में कहे। ऐसा मालूम होता है, जैसे घड़े में मुँह डाले बोल रही हो। ख़ैर, अब मैं नहीं बोलूँगा।"

"हाँ, आप मत बोलिए।" रमेश से इतना कह कर ओङ्कार शान्ता से बोला—"चलो तुम अपना काम करो।"

"बस अब कल देखा जायगा।"—कम्पित रुँधे हुए गले से शान्ता ने यह कहा और उठ कर सीधी भीतर चली गई। ओङ्कार उसकी ओर ताकता रह गया। रमेश भी कुछ न बोल सका।

शान्ता के चले जाने पर ओङ्कार बोला—भई, तुमने श्रीमती जी को रुष्ट कर दिया।

"अच्छा मैंने ग़लत कहा था?"—रमेश ने कुछ झेंपे हुए मुख से पूछा।

ओङ्कार बोला—कहा तो ग़लत नहीं था, पर कहने का ढङ्ग ग़लत था। और फिर अभी तीन-चार ही दिन तो हुए। अभी उनकी शर्म नहीं गई और न मेरी शर्म गई है।

रमेशप्रसाद नेत्र विस्फारित करके बोले—अच्छा ! आप भी शर्माते हैं ?

"हाँ, कुछ झिझक तो हुई है ।"

"इससे तो लड़की हुए होते तो अच्छा था, किसी भलेमानस का घर बसता ।"

ओङ्कार हँस पड़ा । कुछ क्षणों पश्चात् उसने कहा—अच्छा तो अब चलूँ—आज का काम तो तुमने बिगाड़ ही दिया ।

रमेश ने पुस्तक अल्मारी में रखते हुए कहा—अच्छा, परन्तु कल आना ज़रूर ।

"हाँ आऊँगा ! परन्तु यार, मेज़-कुर्सी पर हाथ का बाजा बजाने में दिक़्क़त होती है—भूमि पर बैठने का प्रबन्ध होना चाहिए ।"

"तो इस बग़ल वाले कमरे में फ़र्श बिछवा दूँगा। ठीक रहेगा न ?"

"हाँ, ठीक रहेगा ।"

यह कह कर ओङ्कारनाथ विदा हुए ।

२

रमेश और ओङ्कार में मित्रता थी । दोनों एक दूसरे से बहुत स्नेह रखते थे । यद्यपि ओङ्कारनाथ एक धनाढ्य व्यक्ति का पुत्र था और रमेशप्रसाद अस्सी रुपए मासिक पाने वाला एक साधारण अध्यापक, परन्तु फिर भी दोनों में कोई भेदभाव न था । ओङ्कार, सङ्गीत विद्या में पटु था और हारमोनियम बहुत अच्छा बजाता था ।

एक दिन रमेश ने कहा—यार ओङ्कार मेरी पत्नी ने जब से तुम्हारा हारमोनियम सुना है, तब से उसकी हारमोनियम सीखने की बड़ी इच्छा है । क्या तुम सिखा सकोगे ?

ओङ्कार ने उत्तर दिया—हाँ-हाँ, क्यों नहीं । यदि श्रीमती जी नियमित रूप से सीखें तो सिखा दूँगा। बाजा है ?

"बाजा तो नहीं है, परन्तु मँगा लूँगा । कितने में मिल जायगा ?"

"अभी ख़रीद कर क्या करोगे । मेरे पास एक फ़ालतू बाजा पड़ा है, वह मैं दे दूँगा । जब सीख जायँ तब दूसरा ख़रीद लेना ।"

इस योजना के अनुसार ओङ्कार ने शान्ता देवी को हारमोनियम सिखाना आरम्भ किया ।

दो मास तक तो यह क्रम रहा कि जब शान्ता देवी हारमोनियम सीखतीं तो रमेशप्रसाद भी कमरे में बैठे रहते थे । एक दिन रमेशप्रसाद ने ओङ्कार से कहा—भाई, कल मैं बाहर जा रहा हूँ ।

"अच्छा ! कहाँ जाओगे ?"—ओङ्कार ने पूछा ।

"बनारस !"—रमेश ने उत्तर दिया ।

"कुछ काम है ?"

"हाँ, रिश्तेदारी में एक विवाह है, उसी में सम्मिलित होने जाऊँगा ।"

"कब लौटोगे ?"

"चेष्टा तो करूँगा परसों ही लौटने की, परन्तु शायद परसों न लौट सका तो उसके अगले दिन अवश्य लौट आऊँगा ।

"श्रीमती भी जायँगी ?"

"नहीं जी, उन्हें कहाँ ले जाऊँगा ।"

"तो वहाँ दो-तीन दिन आपको लगेंगे ।"

"हाँ, इससे कम में तो क्या लौट सकूँगा । तुम देवी जी को सिखाने आते रहना । ऐसा न हो सङ्कोच के मारे न आओ । क्योंकि तुम बड़े झेंपूलाल हो ।"

"अगर न भी आऊँ तो क्या कोई हर्ज है ?"

"उसके सीखने का हर्ज होगा ।"

"अजी हर्ज-वर्ज कुछ नहीं होगा ।"

"परन्तु आओ क्यों न ? प्रश्न तो यह है ।"

"तुम यहाँ रहोगे नहीं, इसलिए अकेले × × ×"

रमेशप्रसाद बात काट कर बोले—तुम्हारी ऐसी-तैसी !

ओङ्कार ने कहा—तो यदि दो-तीन दिन न सीखेंगी तो कौन सा बड़ा हर्ज हो जायगा ?

"परन्तु सीखें क्यों न, कोई तुम हव्वा हो जो अकेले में उसे खा जाओगे ?"

ओङ्कारनाथ निरुत्तर हो गए ।

रमेशप्रसाद बोले—तुम जो यहाँ आते रहोगे तो ज़रा श्रीमती जी की खोज-ख़बर भी लेते रहोगे—कोई काम हो, कोई आवश्यकता हो । वैसे तो बाज़ार का काम करने को नत्थू है, परन्तु है वह अभी छोकरा ही ।

ओङ्कार बोल उठे—छोकरा काहे को है—चौदह-पन्द्रह बरस का तो होगा ।

"हाँ-आँ—परन्तु फिर भी छोकरा ही है—चौदह-पन्द्रह बरस में कोई जवान या बुड्ढा नहीं हो जाता। फिर तुम्हारी उसकी तुलना क्या, वह नौकर, तुम मित्र! जो काम तुमसे निकल सकता है वह उससे थोड़ा ही निकलेगा। अतः तुम्हारा आना आवश्यक है। समझे?"

"अच्छी बात है! यद्यपि मेरे सिद्धान्त के प्रतिकूल है, परन्तु तुम्हारी आज्ञा शिरोधार्य है।"

"क्यों साहब, सिद्धान्त के प्रतिकूल क्यों है?"

"अब मैं यह तुम्हें क्या बताऊँ? मैं इसे अच्छा नहीं समझता।"

"बेवक़ूफ़ हो! अभी तुम्हारे हृदय पर दक़ियानूसी सिद्धान्तों का प्रभाव जमा हुआ है? भाई साहब, अब वह ज़माना नहीं रहा। आजकल समय दूसरा है। यह उन्नति का युग है। इस युग में स्वतन्त्रता का दौरदौरा है। आजकल स्त्री-पुरुषों को स्वतन्त्र रहना चाहिए। अब वह समय नहीं है कि कोई व्यक्ति द्वार पर आवे तो पुरुष की अनुपस्थिति में उसे यह भी पता न लगे कि घर में कोई है या नहीं। मुझे तो बड़ा बुरा मालूम होता है। एक दिन मैं अपने एक मित्र के यहाँ गया—मित्र काहे को सहयोगी कहना चाहिए। वह भी उसी स्कूल में टीचर है। मैंने द्वार पर खड़े होकर कोई छः सात आवाज़ें तो दी होंगी, पर किसी ने अन्दर से यह न कहा कि वह घर में नहीं हैं—हालाँकि घर में दो-तीन स्त्रियाँ थीं। मूर्खता की हद है! यदि कोई स्त्री अन्दर ही से कह देती कि घर में नहीं हैं, तो क्या बिगड़ जाता? आख़िर मैं झख मार कर और स्वयम् यह अनुमान लगा कर चला आया कि वह घर में न होंगे।"

ओङ्कारनाथ हँस पड़े और बोले—ख़ैर, मैं इतनी कट्टरता का पक्षपाती नहीं हूँ और न मैं आवश्यकता से अधिक परदे का पक्षपाती हूँ। स्त्री को इतनी स्वतन्त्रता तो अवश्य ही होनी चाहिए कि वह प्रत्येक काम में पुरुष की मोहताज न रहे। यदि पुरुष घर में नहीं है तो वह गृहस्थी के सब काम स्वयम् चला ले—बाज़ार से सौदा-सुलफ़ ले आवे। कोई आवे तो उसकी बात सुन कर उसका उत्तर दे दे—इतना तो ठीक है। परन्तु इससे अधिक ठीक नहीं।

"तो क्या इसे आप ठीक नहीं समझते कि आप जो मेरे मित्र हैं, मेरी अनुपस्थिति में आकर मेरे घर में कुछ देर बैठें और मेरी पत्नी आपकी कुछ ख़ातिर करे, आपके पास कुछ देर बैठ कर बातें करे?"

"हाँ, मुझे तो इसमें सङ्कोच ही मालूम होता है।"

"तुम्हें सङ्कोच मालूम होता है, पर इसमें यह नतीजा तो नहीं निकलता कि यह अनुचित है। यह तो तुम्हारा झेंपूपन है, तुम्हारे हृदय की कमज़ोरी है। परन्तु किसी एक व्यक्ति के हृदय की कमज़ोरी अथवा इच्छा नियम या सिद्धान्त नहीं बन सकती।"

"सम्भव है, तुम्हारा विचार ठीक हो। परन्तु भाई, मेरा हृदय तो इसे स्वीकार नहीं करता।"

"ख़ैर, और कहीं स्वीकार करे या न करे, परन्तु मेरे यहाँ स्वीकार करना पड़ेगा। समझे? आपको नित्य समय पर आना पड़ेगा और श्रीमती जी को सबक़ सिखाना पड़ेगा। यह अन्तिम फ़ैसला है।"

"फ़ैसला है या नादिरशाही हुक्म!"—ओङ्कार ने मुस्करा कर कहा।

"चाहे जो समझो, अर्थ एक ही है।"

"अच्छा हुज़ूर! जो हुक्म!"

३

शान्ता देवी ओङ्कारनाथ पर मुग्ध थीं। ओङ्कारनाथ शान्ता देवी के पति की अपेक्षा अधिक सुन्दर तथा हृष्ट-पुष्ट था। पहले ओङ्कार का गाना और हारमोनियम सुन कर शान्ता देवी के हृदय में ओङ्कार के प्रति श्रद्धा तथा भक्ति का भाव उत्पन्न हुआ। उसी भाव ने क्रमशः मुग्धता का रूप ले लिया। ओङ्कारनाथ के पास बैठने में, उससे बातें करने में, उसका हारमोनियम तथा गाना सुनने में शान्ता देवी को जो सुख मिलता था, वह रमेशप्रसाद जैसे नीरस तथा पाठ्य-पुस्तकों के समान शुष्क हृदय रखने वाले अध्यापक में कहाँ मिल सकता था। उसने ओङ्कारनाथ से हारमोनियम सीखने की इच्छा जो प्रकट की थी, यद्यपि उसमें हारमोनियम सीखने की इच्छा भी सम्मिलित थी, परन्तु प्राधान्य इस बात का था कि इस बहाने उसे ओङ्कारनाथ के पास बैठने, उनसे बातचीत करने का सुयोग प्राप्त होगा।

रमेशप्रसाद बनारस चले गए। रात को ओङ्कारनाथ नियमानुसार रमेशप्रसाद के घर पहुँचे। शान्ता देवी बड़े हावभाव से मोहनी चेष्टाएँ करती हुई आकर

ओङ्कारनाथ के पास बैठीं। ओङ्कारनाथ गम्भीरता की मूर्त्ति बने बैठे थे। उन्होंने शान्ता देवी से कहा—कल का सबक़ सुनाओ!

शान्ता देवी अत्यन्त मृदुतापूर्वक बोलीं—क्या आप मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करेंगे?

ओङ्कारनाथ ने कहा—कहो!

"आपने उस दिन जो गाना गाया था, वह पहले सुना दीजिए।"

"कौन सा गाना?"

"वही; 'छमाछम पानी भरे रे किसी अलबेले की नार'।"

ओङ्कारनाथ मुँह बना कर बोले—"वह तो बहुत ही मामूली गाना है।"

"आपके लिए वह मामूली है; परन्तु मुझे तो बड़ा ही अच्छा लगता है।"

"अच्छा, जैसी तुम्हारी इच्छा!"—कह कर ओङ्कारनाथ ने बाजा खोला और गाना आरम्भ किया। जब तक वह गाते रहे, तब तक शान्ता देवी आश्चर्य-चकित नेत्रों से उनकी ओर ताकती रहीं। जब गाना समाप्त हुआ तो शान्ता देवी ने अपना सिर ओङ्कारनाथ के कन्धे पर धर दिया और कहा—ओङ्कार बाबू, आपका गाना-बजाना स्वर्गीय है। क्या कभी मैं भी ऐसा गा-बजा सकूँगी?

यद्यपि ओङ्कारनाथ को शान्ता देवी का यह व्यवहार अच्छा न लगा, परन्तु इसका विरोध करने का साहस भी उनमें उत्पन्न नहीं हुआ। वह बोले—यदि परिश्रम करोगी तो अवश्य आ जायगा। आख़िर मुझे भी सीखने से ही आया है। अच्छा तो अब अपना कार्य आरम्भ करो।

शान्ता देवी ने ओङ्कारनाथ के कन्धे पर से सिर उठा लिया और सबक़ सुनाना आरम्भ किया।

आज ओङ्कारनाथ को कुछ अधिक देर तक बैठना पड़ा। शान्ता देवी ने उन्हें ऐसा उलझाया कि उन्हें बैठना ही पड़ा। दूसरे दिन भी बड़ी देर तक बैठे और तीसरे दिन तो उन्हें शान्ता देवी ने ग्यारह बजे के पहले उठने ही न दिया।

चौथे दिन रमेशप्रसाद आ गए। जब रात में ओङ्कारनाथ पहुँचे तो रमेशप्रसाद कुशल-समाचार पूछने के बाद बोले—कहो भई, कोई नाग़ा तो नहीं किया?

"यह आप मुझसे न पूछ कर श्रीमती जी से पूछ लीजिए।"—ओङ्कारनाथ ने उत्तर दिया।

"उनसे तो मैंने पूछ लिया।"

"तो फिर मुझसे पूछना व्यर्थ है। कहो, बनारस में कैसी कटी?"

"अच्छी कटी, कोई विशेष बात नहीं थी।"

इस बातचीत के पश्चात् शान्ता देवी ने अपना पाठ लेना आरम्भ किया। रमेशप्रसाद अपने स्थान पर (अल्मारी के पास) बैठ कर पुस्तक देखने लगे। शान्ता देवी बीच-बीच में ओङ्कारनाथ की ओर एक रहस्यपूर्ण दृष्टि डाल कर मुस्करा देती थीं। उस समय ओङ्कारनाथ भी किञ्चित मुस्कराकर पुनः गम्भीर बन जाते थे और रमेशप्रसाद की ओर देखने लगते थे। कभी शान्ता देवी के मुस्कराने पर वह भृकुटी चढ़ा कर आँखों के इशारे से उसे मना करते।

एक घण्टा समाप्त हो जाने पर रमेशप्रसाद ने पुस्तक बन्द करके पूछा—कहिए, आपका काम समाप्त हो गया?

"हाँ, समाप्त हो गया।"—ओङ्कारनाथ ने उत्तर दिया।

इतना सुनते ही रमेशप्रसाद उठ कर खड़े हो गए। शान्ता देवी ने बाजा बन्द किया और अन्दर चली गईं। ओङ्कारनाथ भी उठ खड़े हुए और बोले—अच्छा तो मैं भी चलता हूँ। रमेशप्रसाद ने कहा—अच्छी बात है। यार, क्या कहूँ, मैं तुम्हें बड़ा कष्ट दे रहा हूँ।

ओङ्कारनाथ ने मुस्करा कर पूछा—क्यों, क्यों! यह विचार क्यों आया?

"कुछ नहीं, ऐसे ही! तुम्हें नित्य आना पड़ता है, अपना समय देना पड़ता है।"

"बनारस जाकर कुछ तकल्लुफ़ सीख आए क्या?"

"तकल्लुफ़ के लिए बनारस नहीं, लखनऊ प्रसिद्ध है। यह आपको वाज़े रहे।"—रमेशप्रसाद ने मुस्करा कर कहा।

"गए थे तो लखनऊ ही होकर, इसलिए सम्भव है हवा लग गई हो!"

रमेशप्रसाद हँसने लगे। ओङ्कारनाथ विदा हुए।

कुछ दिनों के पश्चात् एक दिन ओङ्कारनाथ ने कहा—भई रमेशप्रसाद, कल मैं नहीं आ सकूँगा।

"क्यों, कहीं बाहर जाओगे क्या?"

"नहीं, बाहर तो नहीं जाऊँगा।"

"फिर ? न आ सकने का कारण ?"

"कल मैं एक दावत में जाऊँगा।"

"रात को जाओगे ?"

"हाँ, आठ बजे वहाँ पहुँच जाना है।"

रमेशप्रसाद बोले—"अच्छा !" परन्तु पुनः कुछ सोच कर बोले—"परन्तु दोपहर में तो तुम्हें छुट्टी रहती है ?"

"हाँ, दोपहर में तो छुट्टी रहती है।"

"तो दोपहर में आकर बता जाना। कष्ट तो होगा, यार, पर मैं चाहता हूँ कि जब प्रारम्भ हुआ है तो उसमें बाधा न पड़े।"

"तो क्या एक दिन में बाधा पड़ जायगी ?"

"भई, मैं तो अध्यापक हूँ। अध्यापक को एक दिन का नाग़ा भी अखरता है।"

"अच्छा भई, अच्छा ! दोपहर ही में आ जाऊँगा। जिसमें तुम्हें अखरे नहीं, वही बात होनी चाहिए।"—ओङ्कारनाथ ने हँसते हुए कहा।

"यह समझ लो कि यदि श्रीमती जी को तुमने सिखा दिया तो तुम्हारा एक शिष्य तैयार हो जायगा और मुझे भी बड़ा सुख हो जायगा। जन्म भर तुम्हारा गुण मानूँगा।"

"अच्छा ! अच्छा ! पहले सीख तो जाने दो।"—इतना कह कर ओङ्कारनाथ विदा हुए।

४

अब ओङ्कारनाथ दोपहर में भी जाने लगे। जब उन्हें रात को कुछ काम लग जाता तो दोपहर में हो आते थे। जब से दोपहर में जाने का श्रीगणेश हुआ तब से ओङ्कारनाथ को बहुधा रात में कोई आवश्यक कार्य लग जाता था। दोपहर में रमेशप्रसाद घर पर न होकर स्कूल में होते थे।

एक दिन रमेशप्रसाद का नौकर नत्थू उनसे बोला—बाबू जी, ओङ्कार बाबू बड़े खराब आदमी हैं।

रमेशप्रसाद भृकुटी चढ़ा कर बोले—क्यों ?

नत्थू रमेशप्रसाद की मुख-मुद्रा देख, कुछ भयभीत होकर बोला—अब क्या बतावें—आप खफा होंगे।

रमेशप्रसाद ने कहा—नहीं; ख़फ़ा नहीं हूँगा, बता !

"ओङ्कार बाबू बहू जी से दिल्लगी किया करते हैं।"

"दिल्लगी कैसी ?"

"अब क्या बतावें बाबू जी, बड़ी ख़राब बात है।"

रमेशप्रसाद आँखें लाल करके बोले—तो बताता क्यों नहीं, साफ़-साफ़ बोल, क्या बात है ?

"बाबू जी, कल दुपहरिया में ओङ्कार बाबू बहू जी को प्यार कर रहे थे।

रमेशप्रसाद की आँखों तले अँधेरा छा गया। कुछ क्षणों तक वह स्तम्भित खड़े रहे। इसके पश्चात् उन्होंने सँभल कर पूछा—तूने कैसे देखा ?

"हम पड़े सो रहे थे। सोते-सोते हमें प्यास लगी—उठ कर पानी पिया। बहू जी के कमरे में सन्नाटा था—बाजा नहीं बज रहा था। हमने समझा ओङ्कार बाबू चले गए। हम यह देखने के लिए कि बहू जी सो रही हैं या जाग रही हैं, उस ओर गए। कमरे का किवाड़ ज़रा सा खुला था, उसी से हमने झाँका था।"

रमेशप्रसाद "हूँ" कह कर विचार में पड़ गए।

× × ×

रात को ओङ्कारनाथ रमेशप्रसाद के घर पहुँचे। शान्ता देवी बैठी उनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। ओङ्कार को देखते ही मुस्करा कर बोलीं—आइए !

ओङ्कारनाथ इधर-उधर देख कर बोले—रमेश कहाँ हैं ?

"वह तो एक दावत में गए हैं।"

"अच्छा ! कब गए ?"

"अभी-अभी, आपके आने से पाँच मिनिट पहले गए हैं।"

"अच्छा" कह कर मुस्कराते हुए ओङ्कार बाबू अपने स्थान पर जा बैठे। शान्ता देवी आकर उनसे बिल्कुल सट कर बैठीं। ओङ्कारनाथ ने उनकी पीठ पर हाथ रख कर कहा—कल का सबक़ सुनाओ !

शान्तादेवी ने सबक़ सुनाना आरम्भ किया। सबक़ समाप्त करके उन्होंने पूछा—ठीक है ?

ओङ्कारनाथ बोले—"बिल्कुल ठीक !" इतना कहकर उन्होंने शान्तादेवी का मुख चूम लिया। ठीक इसी समय भीतरी द्वार से निकल कर रमेशप्रसाद इन दोनों के सामने आ खड़े हुए। शान्ता देवी घबरा कर अलग हट गईं। ओङ्कारनाथ हक्का-बक्का होकर रमेशप्रसाद का

मुँह ताकने लगे। रमेशप्रसाद क्रोध के मारे काँप रहे थे। हठात् वह बोले—क्यों ओङ्कारनाथ, यह मित्रता का हक़ अदा किया जा रहा है?

ओङ्कारनाथ का चेहरा श्वेत हो गया। उन्होंने सिर झुका लिया।

"मैंने अपना मित्र समझ कर तुम पर विश्वास किया, उसका तुमने यह बदला दिया।"

ओङ्कारनाथ मौन थे। शान्ता देवी ने आँचल से मुँह ढँक लिया।

"क्यों? उत्तर क्यों नहीं देते?"

ओङ्कारनाथ सिर झुकाए चुप बैठे थे। उनकी यह दशा थी कि काटो तो लहू नहीं।

"बदमाश! यदि मैं तुझे ऐसा जानता तो अपने पास भी न फटकने देता। तूने तो नीचता की हद कर दी।"

ओङ्कारनाथ मूर्त्ति की तरह निश्चल तथा निस्तब्ध थे।

"धूर्त्त, विश्वासघातक, मित्रद्रोही, दग़ाबाज़, पापी।"

सहसा ओङ्कारनाथ ने ऊपर सिर उठाया। उनका मुख तमतमा उठा, आँखें उबल आईं। उन्होंने कहा—"बस रमेश, ज़बान बन्द करो। बहुत हुआ। मैं पापी हो सकता हूँ, परन्तु विश्वासघातक, मित्रद्रोही, दग़ाबाज़ नहीं हूँ। और यदि हूँ तो मुझसे पहले तुम हो। सच पूछो तो तुमने मेरे साथ दग़ाबाज़ी की, विश्वासघात किया।"

रमेशप्रसाद कुछ अप्रतिभ होकर बोले—"मैंने?"

"हाँ तुमने! तुमने मेरी इच्छा के विरुद्ध, मेरे विरोध करते रहने पर भी मुझे इस परिस्थिति में लाकर डाला। तुमने मुझे विश्वासघात और दग़ाबाज़ी करने के लिए मजबूर किया। मैं नहीं चाहता था कि मैं तुम्हारी अनुपस्थिति में यहाँ आऊँ; पर तुमने मुझे आने के लिए मजबूर किया। तुमने मुझे पापी बनाया। इसलिए सबसे पहले तुमने मेरे साथ विश्वासघात किया, दग़ाबाज़ी की।"

"मैंने तुम पर विश्वास करके ऐसा किया था।"—रमेश ने भर्राई हुई आवाज़ में कहा।

"तुम्हें विश्वास करने का कोई अधिकार नहीं था। क्या तुम मुझे इन्द्रियजित समझते थे? क्या तुम अपनी इस पत्नी को सीता-सावित्री समझे हुए थे? आख़िर किस बल पर तुमने मुझ पर विश्वास किया? मैं भी जवान हूँ, मेरे पास भी हृदय है। मैं कोई देवता नहीं, मनुष्य हूँ और मनुष्यों में जो कमज़ोरियाँ होती हैं, वे मुझमें भी मौजूद हैं। मैंने प्रकृति पर, अपनी कमज़ोरियों पर विजय पाने की बहुत चेष्टा की, पर सफल नहीं हुआ—बस! मेरा अपराध अथवा पाप—जो समझो—इतना ही है।"

"वाह ओङ्कार वाह! मेरी सरलता के तुमने अच्छे अर्थ लगाए।"

"तुम सरल नहीं, बेवकूफ़ हो, गधे हो। आग-फूस इकट्ठा करके यह आशा रखने वाला कि आग न लगे, पागल, अहमक़, गधा कहलाता है। तुम्हें संसार का ज्ञान नहीं है, मानव-प्रकृति का ज्ञान नहीं है। बस आज से मेरी तुम्हारी मित्रता समाप्त है। तुम्हारे जैसे आदमी अपने मित्रों के लिए ख़तरनाक होते हैं।"

इतना कह कर ओङ्कारनाथ एकदम खड़े हो गए और जूता पहन कर तुरन्त कमरे के बाहर निकल गए। रमेशप्रसाद हतबुद्धि होकर ताकते रह गए।

कसक

[श्री० मदनमोहन मिहिर]

मेरे जी की कसक न पूछो,
यौंही उसे छिपी रहने दो।
अपने रोम-रोम की पीड़ा,
मुझे शिला बन कर सहने दो।

तनिक हवा तक मत लगने दो,
धधक उठेगी आग हृदय की।
अपनी धीमी मधुर आह में—
मुझे तड़पने दो, दहने दो।

प्राचीन काल की विवाह-प्रथा

[श्री० सत्यभक्त]

वर्तमान समय में मनुष्य-समाज का जैसा स्वरूप देखने में आता है, वह अनादि काल से ऐसा ही है अथवा उसमें परिवर्तन होता रहा है—यह प्रश्न प्रायः सभी विचारशील व्यक्तियों के हृदयों में किसी न किसी समय उत्पन्न होता है। अधिकांश लोग तो, जो धर्मोपदेशकों अथवा धर्मशास्त्र कहलाने वाले ग्रन्थों के वाक्यों को प्रमाण मानते हैं, समझते हैं कि मनुष्य-समाज को सृष्टि के आदि में किसी अविनाशी पुरुष ने उसी रूप में रचा था, जिसमें आज वह हमको दिखलाई पड़ रहा है। उनका यह भी विश्वास है कि मनुष्य-समाज में जो रीति-रिवाज देखने में आ रहे हैं उनका विधान भी उसीने किया है। परन्तु जो लोग बुद्धिवाद के अनुयायी हैं और प्रत्येक सिद्धान्त को परीक्षा करने के पश्चात् स्वीकार करते हैं, उनका मत है कि जिस प्रकार सब प्रकार के पदार्थों और प्राणियों का क्रम-विकाश हुआ है, उसी प्रकार मनुष्य-समाज में भी आर्थिक परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन होते रहे हैं और विभिन्न स्वरूपों में होकर वह वर्तमान दशा तक पहुँचा है।

मनुष्य-समाज के विकास की इस प्रकार की जाँच-पड़ताल सौ वर्ष से भी कम समय से आरम्भ हुई है। उसके पूर्व भी यद्यपि विद्वानों को यह पता था कि संसार के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार की सामाजिक प्रथाएँ पाई जाती हैं, पर उन प्रथाओं में किसी तरह का सम्बन्ध है अथवा वे विकास की शृङ्खला के विभिन्न स्वरूपों की परिचायक हैं, इसका निर्णय करने की चेष्टा किसी ने नहीं की थी। वे लोग पश्चिमीय देशों में प्रचलित एक पत्नी की प्रथा, पूर्वीय देशों में पाई जाने वाली एक पुरुष की अनेक पत्नियों की प्रथा तथा तिब्बत जैसे देशों में प्रचलित एक स्त्री के अनेक पतियों की प्रथा का हाल जानते थे। उनको यह भी मालूम था कि प्राचीन काल की कितनी ही जातियाँ और वर्तमान समय में भी कितने ही जङ्गली फ़िर्क़े अपना वंशानुक्रम पिता से नहीं, वरन् माता से बतलाते हैं। पर वे इन तमाम बातों को 'अजीब रीति-रिवाज' ही समझते थे और इनके वास्तविक महत्व का उनको पता न था। पर अन्त में इस सम्बन्ध का बहुत सा साहित्य प्रस्तुत हो जाने पर तथा अनेक दूरवर्ती देशों में रहने वाली जातियों की प्रथाओं में विलक्षण समानता देख कर विज्ञान-वेत्ताओं का ध्यान इस तरफ़ आकृष्ट हुआ और उन्होंने प्राचीन साहित्य में पाए जाने वाले उदाहरणों तथा वर्तमान काल में प्रचलित विभिन्न प्रकार की प्रथाओं का विश्लेषण करके मनुष्य-जाति की विवाह तथा कुटुम्ब-सम्बन्धी प्रथाओं का एक क्रमबद्ध इतिहास तैयार किया। यद्यपि इन लोगों ने जो निर्णय किया है उसमें अनेक बातें अनुमान के आधार पर हैं, तो भी वे युक्तियुक्त अवश्य हैं और धर्मशास्त्रों में पाए जाने वाले एक दूसरे से विपरीत तथा बेसिर-पैर के क़िस्सों से अधिक प्रमाणिक हैं।

वैज्ञानिकों के मतानुसार मनुष्य-समाज के विकास का इतिहास तीन प्रधान भागों में बँटा हुआ है—प्रथम जङ्गली अथवा आदिम युग, दूसरा अर्द्धसभ्य अथवा बर्बर युग और तीसरा सभ्य अथवा आधुनिक युग। इनमें से प्रत्येक युग निम्न, मध्यम और उच्च—इन तीन भागों में विभाजित है। इनमें से प्रत्येक काल में पूर्ववर्ती काल की अपेक्षा उन्नति का परिमाण अधिक था और जीवन-निर्वाह के साधन उन्नत अवस्था में थे। जीवन-निर्वाह के साधनों पर विशेष रूप से ध्यान देने का कारण यह है कि प्रत्येक प्राणी का अस्तित्व तथा उसकी उन्नति-अवनति का आधार भोजन पर ही है। और समस्त जीवधारियों में केवल मनुष्य को ही यह शक्ति मिली है कि वह चाहे जितने परिमाण में भोजन-सामग्री उत्पन्न कर सकता है और इसी के द्वारा वह सब प्राणियों में श्रेष्ठ बन सका है।

आदिम युग

इस युग की सबसे पहली अवस्था वह है, जबकि मनुष्य पेड़ों पर बन्दरों के समान जीवन यापन करता था और वहाँ मिलने वाले फल, कन्द, मूल आदि ही उसके भोजन थे। पेड़ों पर रहने से ख़ूँख़ार जङ्गली जानवरों से उसकी रक्षा होती थी। मनोभाव प्रकाशित करने के लिए मौखिक भाषा की उत्पत्ति इस युग की सबसे बड़ी विशेषता थी। दूसरे काल में मनुष्य को अग्नि के व्यवहार की विधि मालूम हुई और उसकी सहायता से वह मछलियों तथा अन्य छोटे जल-जन्तुओं को भून कर खाने लगा। इस आविष्कार के कारण नदियाँ और समुद्र के किनारे रहने में मनुष्यों को विशेष सुविधा होने लगी और उनकी संख्या भी तेज़ी से बढ़ने लगी। इस समय मनुष्य पत्थर के बेढङ्गे हथियार बना कर तथा सङ्घबद्ध होकर जङ्गली जानवरों से अपनी रक्षा करने लगा। तीसरा काल तब आरम्भ हुआ जब मनुष्य को तीर-कमान का उपयोग करना आया और उसकी सहायता से वह तरह-तरह के पशु-पक्षियों को मार-मार कर अपना निर्वाह सुगमतापूर्वक करने लगा।

बर्बर-युग

जब मनुष्य मिट्टी के बर्तन बनाने लगे, दूध और मांस के लिए जानवरों को पालने लगे और खेती-बारी करने लगे, तो उनके जीवन-निर्वाह की समस्या बहुत सुगम हो गई। इसी समय पृथ्वी के दूरवर्ती स्थलों और देश के भीतरी भागों में मनुष्यों की बस्ती बढ़ने लगी। क्योंकि ये लोग जहाँ कहीं जानवरों को चराने का सुभीता देखते थे, वहीं जाकर रहने लगते थे। फिर जब धातुओं और विशेष कर लोहे का आविष्कार हुआ और हल तथा बैलों से खेत जोतने की प्रथा आरम्भ हुई तो लोग बर्बर युग की सर्वोच्च चोटी पर जा पहुँचे। अब उनको अपने भोजन तथा वस्त्रों की चिन्ता बहुत कम हो गई और संस्कृति तथा कला-कौशल की उन्नति का अवसर मिलने लगा। इसी काल में लिखने की लिपि का निर्माण हुआ और ग्रन्थ-रचना होने लगी। इसके पश्चात् मनुष्य ने सभ्य अथवा आधुनिक युग में प्रवेश किया। इस युग की विशेषता प्राकृतिक शक्तियों, जैसे वाष्प, विद्युत आदि से जीवन-निर्वाह सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करना है। इसमें मनुष्य की शारीरिक शक्ति का महत्व दिन पर दिन कम होता जाता है और सब प्रकार के काम यन्त्रों द्वारा होते हैं।

विवाह का आरम्भ

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि किसी काल में मनुष्य एक प्रकार का पशु ही था और प्रायः उन्हीं की भाँति जीवन व्यतीत करता था। उस अवस्था में विवाह अथवा कुटुम्ब जैसी किसी बात की कल्पना करना अज्ञानता का सूचक है। जिस प्रकार हम पशुओं में पति-पत्नी, पिता-पुत्र, भाई-बहिन आदि की कोई धारणा नहीं देखते, वही अवस्था उस समय मनुष्य की हो सकना असम्भव थी। हम समझते हैं कि कितने ही परम्परा-भक्त इस प्रकार का जीवन व्यतीत करने वाले प्राणी को मनुष्य के नाम से पुकारना स्वीकार न करेंगे। वास्तव में उसमें तथा वर्तमान काल के मनुष्य में बहुत बड़ा अन्तर है, तो भी सुविधा के लिए और इसलिए भी कि मनुष्य का विकास उसी से हुआ है, हम उसको मनुष्य ही कहेंगे। हमारे पास यह जानने का कोई साधन नहीं है कि जिस समय यह प्राणी सर्वथा पाशविक अवस्था में था, उस समय वह एक स्त्री के साथ अलग रहता था अथवा अन्य लोगों के साथ मिल कर। जैसा अधिकांश पशुओं और अन्य कितने ही प्राणियों में देखने में आता है कि उनके नर स्त्री-सहवास के सम्बन्ध में दूसरे नर को ईर्ष्या की दृष्टि से देखते हैं और यदि कभी दो नर एक ही मादा पर आसक्त हो जाते हैं तो उनमें भयङ्कर युद्ध होता है, जिसके फल से दोनों में से एक या तो मर जाता है या भाग जाता है, उसी प्रकार सम्भव है, आरम्भ में एक स्त्री का सम्बन्ध एक ही पुरुष से होता हो और वे कितने ही जङ्गली पशुओं की भाँति अपना कुटुम्ब लेकर पृथक् रहते हों। पर इसमें सन्देह नहीं कि जब प्रकृति की प्रेरणावश अथवा आत्मरक्षा के लिए मनुष्य दल बना कर रहने लगा और विभिन्न दलों ने फ़िर्क़ों का रूप ग्रहण कर लिया, तब परिस्थिति से लाचार होकर मनुष्य ने अपना स्वभाव बदल दिया और एक फ़िर्क़े के समस्त स्त्री-पुरुषों में अबाध सहवास का नियम प्रचलित हो गया। उस अवस्था में फ़िर्क़े की प्रत्येक स्त्री प्रत्येक पुरुष की पत्नी

होती थी और उससे जो बच्चे उत्पन्न होते थे, वे सभी लोगों के पुत्र या पुत्री समझे जाते थे। कितने ही लेखकों का, जो एक पुरुष और एक स्त्री के सम्बन्ध को ही मनुष्यत्व का आभूषण अथवा सबसे बड़ा सद्गुण समझते हैं, मत है कि चूँकि उच्च श्रेणी के पशुओं और सब प्रकार के पक्षियों में, जो मनुष्यों के संसर्ग से दूर अपनी स्वाभाविक अवस्था में रहते हैं, एक मादा का अनेक नरों से सम्बन्ध देखने में नहीं आता, इसलिए मनुष्य के सम्बन्ध में यह कल्पना करना कि आदिम अवस्था में एक स्त्री फ़िर्क़े के तमाम पुरुषों की पत्नी होती थी, अनुचित है। पर उनका यह तर्क विशेष युक्तियुक्त नहीं जान पड़ता। यदि मनुष्य सब प्रकार से पशुओं के ही समान होता और उसके स्वभाव में कुछ विशेषता न होती तो वह भी सदैव उसी अवस्था में पड़ा रहता, जिसमें पशु अब तक मौजूद हैं। पर मनुष्य के भीतर विचार करने की और परिस्थिति के अनुकूल अपने को बना लेने की विलक्षण शक्ति है और इसीके द्वारा वह अपने से कहीं अधिक बलवान पशुओं और उनसे भी अधिक शक्तिशाली प्राकृतिक शक्तियों पर विजय प्राप्त करके संसार का स्वामी बन सका है। यदि ऐसा न होता तो मनुष्य के समान निर्बल प्राणी का जगत में अस्तित्व रह सकना असम्भव था। मनुष्य में न तो हाथी के समान बल है, न शेर के समान उसके दाँत-पञ्जे तेज़ हैं, न उसका शरीर गेंडे के समान कठोर खाल से ढका है, न उसकी देह पर साही की भाँति तीक्ष्ण काँटे हैं, और न वह गिरगिट की भाँति अपना रङ्ग बदल कर चाहे जहाँ छिप सकता है। ऐसे आत्मरक्षा के साधनों से रहित और सर्वथा असहाय प्राणी के दुनिया में स्थिर रह सकने और उन्नति तथा वृद्धि कर सकने का एकमात्र आधार यही था कि उसकी जाति के सब व्यक्ति एक सूत्र में बँध कर रहें। कई सौ अथवा कई हज़ार मनुष्यों की शारीरिक और मानसिक शक्ति के सम्मिलित हो जाने से एक ऐसे समाज-रूपी प्राणी का आविर्भाव हो सकता है जो हाथी के बल और शेर के दाँत तथा नाख़ूनों को भी सहज में परास्त कर सकता है। पर इस प्रकार का सङ्गठन तब तक असम्भव था, जब तक मनुष्य एक स्त्री को अपनी ही वस्तु बना लेता और किसी अन्य पुरुष के उसकी तरफ़ आकृष्ट होने से लड़ने-मरने को तैयार हो जाता। क्योंकि जिस काल में न मनुष्यों के रहने के लिए पृथक-पृथक घर थे, न भोजन-सामग्री से भण्डार भरा था और सभी स्त्री-पुरुष बिना वस्त्रों के प्रकृति की गोद में स्वच्छन्द विचरते थे, यह सम्भव न था कि किसी समय किसी स्त्री पर दूसरे व्यक्ति का चित्त चलायमान न हो जाय। इसलिए अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए मनुष्य ने धीरे-धीरे स्त्री-सहवास सम्बन्धी ईर्ष्या पर विजय पा ली और एक प्रकार की सामूहिक-विवाह (Group marriage) की प्रथा प्रचलित हो गई। इसके अनुसार पति-पत्नी का सम्बन्ध फ़िर्क़े के स्त्री-पुरुषों तक ही सीमित था और अन्य फ़िर्क़े या दल के स्त्री-पुरुष से कोई सम्बन्ध नहीं कर सकता था। यही विवाह अथवा स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को किसी सीमा तक नियमित करने की सबसे पहली प्रथा थी और आज तक कहीं-कहीं इसके चिन्ह पाए जाते हैं।

भाई-बहिन का विवाह

जैसे-जैसे समय व्यतीत होने लगा, उपर्युक्त सामूहिक विवाह की प्रथा में परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन होने लगा और उससे क्रमशः अनेक प्रकार की विवाह प्रथाओं का आविर्भाव हुआ। इनमें सबसे पहली 'कन्सैनूगाइन' (Consanguine) विवाह-प्रथा थी। इसमें पति-पत्नी का सम्बन्ध पीढ़ी दर पीढ़ी के हिसाब से रक्खा गया था। अर्थात् एक विशेष परिवार के भीतर समस्त पितामह और पितामही परस्पर में पति-पत्नी होते थे। फिर उनके जितने लड़के-लड़कियाँ होते थे, वे एक दूसरे के पति-पत्नी होते थे। इसी प्रकार यह क्रम आगे चलता जाता था। इस प्रकार इस प्रथा में भाई और बहिनों में पति-पत्नी का सम्बन्ध होता था, चाहे वे सगे हों अथवा चचेरे और ममेरे। इस काल में केवल विभिन्न पीढ़ी वालों का जैसे पिता और पुत्री अथवा पुत्र और माता का पति-पत्नी-सम्बन्ध वर्जित माना गया था। अब भी अनेक जातियों में, जो सभ्य मानी जाती हैं, चचेरी और ममेरी बहिन से विवाह करने का नियम पाया जाता है। पर सगी बहिन से विवाह करने की प्रथा का अब कहीं चिन्ह नहीं मिलता और प्राचीन साहित्य में भी इस प्रकार के उदाहरण बहुत कम प्राप्त होते हैं। इस प्रकार का एक उदाहरण नार्वे के प्राचीन ग्रन्थों में, जो वेदों के सदृश

प्रमाणिक माने जाते हैं, मिलता है। उसमें एक स्थान पर कहा गया है—"देवताओं के सम्मुख तुम अपने सगे भाई का आलिङ्गन करो।" आगे चल कर लिखा है—"अपनी बहिन से तुम एक पुत्र उत्पन्न करो।" हमारे पुराणों में भी ऐसी कथाएँ कहीं-कहीं पाई जाती हैं। वैसे भी यदि पुराणों की इस कथा को, कि सृष्टिस्वायंभुव मनु और शतरूपा से आरम्भ हुई, सच मानें, तो स्पष्ट है कि उनकी सन्तानों में, जो परस्पर में भाई-बहिन थीं, विवाह-सम्बन्ध अवश्य हुआ होगा। पर आजकल भाई-बहिन के सहवास की बात इतनी गर्हित तथा घृणित हो गई है कि कोई व्यक्ति उसका उल्लेख बिना नाक-भौं सिकोड़े नहीं कर सकता। कितने ही लोगों को तो यह विषय इतना 'लज्जाजनक' प्रतीत होगा कि वे यह स्वीकार ही न करेंगे कि दुनिया में कभी इस प्रकार की प्रथा प्रचलित रही होगी। पर समाज के विकास की सम्भावनाओं को समझ कर और हवाई टापू में प्रचलित कुछ प्रथाओं के आधार पर यह निश्चय होता है कि कभी न कभी दुनिया में यह प्रथा अवश्य प्रचलित रही होगी।

सगोत्र-विवाह

जब प्रथम प्रकार की विवाह-प्रथा कुछ काल तक प्रचलित रह चुकी और लोगों को किन्हीं कारणों से भाई-बहिन का सहवास-सम्बन्ध हानिकारक प्रतीत होने लगा, तो एक दूसरी प्रथा का आविर्भाव हुआ, जिसके अनुसार भाई-बहिन का विवाह उसी प्रकार वर्जित मान लिया गया जैसे पहली प्रथा के अनुसार पिता और पुत्री का विवाह माना गया था। पर ऐसा परिवर्तन एकदम नहीं हो सकता था, इसलिए आरम्भ में एक माँ की सन्तान अर्थात् सगे भाई-बहिनों का सहवास-सम्बन्ध वर्जित हुआ। इसके पश्चात् अन्य पास के रिश्ते की बहिनों से विवाह करना भी अनुचित समझा जाने लगा। सुप्रसिद्ध अमेरिकन लेखक मार्गन के मतानुसार यह नवीन प्रथा कहीं अधिक सुविधाजनक थी और जिन फ़िरक़ों में इसका प्रचार हुआ उनकी शीघ्रतापूर्वक वृद्धि होने लगी। क्योंकि जब एक परिवार की एक ही पीढ़ी के भीतर विवाह-सम्बन्ध होने का नियम टूट गया और पुरुष किसी भी स्त्री के साथ सम्बन्ध कर सकने को स्वतन्त्र हो गए, तो जन-संख्या का विशेष रूप से बढ़ना स्वाभाविक था।

इस प्रथा का एक परिणाम यह भी हुआ कि प्रत्येक वंश कुछ पीढ़ियों के पश्चात् कई भागों में बँट जाने लगा। क्योंकि अब भाइयों का वंश अलग चलता था और बहिनों का अलग। इस प्रकार जब परिवार के लोगों की संख्या बहुत अधिक बढ़ जाती थी और अनेक बाहरी व्यक्ति भी आकर उसमें सम्मिलित हो जाते थे, तो उसके सञ्चालन में बाधा पड़ने लगती थी और लोग अपनी सुविधा के अनुसार अलग होकर रहने लगते थे। यद्यपि आजकल उक्त प्राचीन प्रथा में बहुत परिवर्तन हो गया है, तो भी आजकल एक-एक व्यक्ति के परिवार में सौ-सौ और दो-दो सौ प्राणी देखने में आते हैं। ऐसी दशा में कोई आश्चर्य नहीं कि प्राचीन काल में एक-एक परिवार के व्यक्तियों की संख्या हज़ारों तक पहुँच जाती हो और कुछ पीढ़ियों के पश्चात् वे अपने पुराने रिश्ते को भूल कर अपना पृथक् वंश स्थिर करते हों।

सामूहिक विवाह-प्रथा के जिन स्वरूपों का ऊपर वर्णन किया गया है, उनमें किसी बच्चे के पिता का पता लग सकना असम्भव था, पर माता का निश्चय कर सकना कुछ भी कठिन न था। यद्यपि उक्त प्रथा के अनुसार प्रत्येक स्त्री अपनी समस्त बहिनों और भाइयों के बच्चों को अपना ही बच्चा बतलाती थी और उनके साथ उसी प्रकार का व्यवहार करती थी, तो भी वह अपने गर्भ से उत्पन्न बच्चों को पहिचान सकती थी। इसलिए जब तक सामूहिक विवाह की प्रथा जारी रही, तब तक वंश-क्रम केवल स्त्रियों से ही स्थिर किया जा सकता था। जङ्गली और निम्न श्रेणी के बर्बर लोगों में सदैव यही नियम प्रचलित रहा है और अब भी पाया जाता है। हमारे देश के मालाबार प्रान्त और ट्रावनकोर रियासत के ब्राह्मणों में इसी से मिलती-जुलती प्रथा अभी तक मौजूद है और वहाँ घर की उत्तराधिकारिणी सदैव पुत्री ही होती है।

सामूहिक विवाह का एक उदाहरण

जिस सामूहिक विवाह की प्रथा का उल्लेख हमने ऊपर किया है, उसका उदाहरण अभी भी आस्ट्रेलिया

के आदिम निवासियों में, जो पैपन कहलाते हैं, पाया जाता है। यह प्रथा ऐसी विचित्र और पेचीदा है कि अन्य देशीय व्यक्ति को उसका पता अनेक वर्षों तक जाँच-पड़ताल करने पर ही लग सकता है। इस प्रथा का लोरीमर फ़िसन नामक अङ्गरेज़ पादरी ने, जो मुद्दत तक इन लोगों में रहा था, बड़ा रोचक वर्णन किया है। उससे विदित होता है कि दक्षिणी आस्ट्रेलिया में गैम्बियर पहाड़ के पास रहने वाले पैपन दो बड़े समूहों में बँटे हुए हैं, जिनमें से एक को क्रोकी और दूसरे को कुमाइट कहते हैं। इन दोनों समूहों के भीतर स्त्री-पुरुषों का पारस्परिक सहवास सर्वथा वर्जित है। पर एक समूह का कोई भी पुरुष जन्म से दूसरे समूह की किसी भी स्त्री का पति माना जाता है। इन लोगों में किसी ख़ास व्यक्ति का ख़ास स्त्री से विवाह नहीं होता, वरन् एक समूह का दूसरे समूह से विवाह-सम्बन्ध माना जाता है। इसके अतिरिक्त उम्र या किसी अन्य सम्बन्ध का भी इन लोगों में ख़्याल नहीं रक्खा जाता। क्रोकी दल का प्रत्येक व्यक्ति कुमाइट दल की किसी भी स्त्री के साथ इच्छानुसार सहवास कर सकता है। ऐसी कुमाइट स्त्री से जो कन्या उत्पन्न होगी, वह यद्यपि उसकी पुत्री होगी तो भी कुमाइट दल की होने से वह उसकी स्त्री ही मानी जायगी। यद्यपि यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि ये लोग व्यवहार में इस प्रकार का आचरण करते हैं या नहीं, पर उनमें जो नियम प्रचलित है, उसके अनुसार पिता-पुत्री का सम्बन्ध अवैध नहीं कहा जा सकता। यह भी जान सकना कठिन है कि इस प्रथा का आविर्भाव उस काल में हुआ था, जब कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष में अबाध रूप से सहवास-सम्बन्ध होता था अथवा ऐसे किसी काल में, जब कि पिता और पुत्री का संयोग सामाजिक नियमों के अनुसार जायज़ माना जाता था।

यह दो फ़िर्क़ों वाली विवाह-प्रथा गैम्बियर पहाड़ के समीप ही नहीं पाई जाती, वरन् आस्ट्रेलिया के अनेक भागों में इसका प्रचार है। इसके अनुसार केवल सगे भाई-बहिनों और भाइयों की सन्तान तथा बहिनों की सन्तान का विवाह-सम्बन्ध वर्जित समझा जाता है। डारलिङ्ग नदी के आस-पास रहने वाले आदिम निवासियों में दो के बजाय चार समूह पाए जाते हैं। इन लोगों में पहले और दूसरे समूहों में क्रोकी और कुमाटिन लोगों की भाँति विवाह सम्बन्ध होता है और उनकी सन्तानें क्रम से तीसरे चौथे समूह में शामिल कर दी जाती हैं। इसी प्रकार तीसरे और चौथे समूह में परस्पर विवाह-सम्बन्ध होता और उनकी सन्तानें पहले और दूसरे समूह में सम्मिलित कर ली जाती हैं। इस प्रकार इस प्रथा के अनुसार सगे भाई-बहिनों की सन्तान का परस्पर में विवाह सम्बन्ध नहीं हो सकता, पर उनकी अगली पीढ़ी में इस प्रकार का सम्बन्ध हो सकता है।

इस प्रकार आस्ट्रेलिया के निवासियों में यह सामूहिक विवाह की प्रथा सर्वत्र फैली हुई है और इसने एक ऐसी सामाजिक रूढ़ि का रूप ग्रहण कर लिया है, जो सब प्रकार से वैध समझी जाती है और जिसके नियमों का पालन प्रत्येक व्यक्ति को अवश्य करना पड़ता है। ऊपरी दृष्टि से यह बड़ी घृणित जान पड़ती है, पर यदि विचार किया जाय तो वर्त्तमान समय में प्रायः सभी सभ्य देशों में प्रचलित वेश्या-प्रथा की अपेक्षा इसे घृणित नहीं कहा जा सकता। इन सभ्य देशों में पिता, पुत्र, भाई सब एक ही वेश्या के पास जाते हैं और उससे उत्पन्न सन्तान के साथ सहवास करने में भी किसी प्रकार का सङ्कोच नहीं किया जाता। इसके विपरीत आस्ट्रेलिया के आदिम निवासियों की प्रथा यद्यपि एक अनजान व्यक्ति को स्त्री-पुरुषों के अबाध सम्बन्ध की तरह जान पड़ती है, पर जब उसके विषय में खोज की जाती है तो वह दृढ़ नियमों के आधार पर जान पड़ती है। इस प्रथा के फल-स्वरूप पैपन जाति के एक व्यक्ति को अपने घर से सैकड़ों कोस दूर अनजान प्रदेश में पहुँच जाने पर भी ऐसी स्त्री मिल जाती है, जो बिना सङ्कोच के उसको अपना पति स्वीकार करती है और उसकी मनोकामना पूर्ण करती है। क्योंकि वह स्त्री उसके सहयोगी समूह की होने से अपने को जन्म से ही उस व्यक्ति की पत्नी समझती है। पर यदि वही स्त्री या पुरुष इन दोनों समूहों के बाहर के किसी व्यक्ति से सम्बन्ध करलें तो भेद खुलने पर वे तुरन्त मार डाले जायँ। इस प्रकार जो प्रथा विदेशियों को सर्वथा अनियमपूर्ण तथा स्वेच्छाचारयुक्त जान पड़ती है, वह दरअसल हमारे वैवाहिक-जीवन से कम सुदृढ़ और विधियुक्त नहीं है।

इन जातियों में कहीं-कहीं स्त्रियों के अपहरण की प्रथा भी पाई जाती है, पर उसके भी नियम बँधे हुए हैं। जब कोई नवयुवक अपने मित्रों की सहायता से किसी कन्या को हरण करके लाता है, तो आरम्भ में वे सब उसके साथ सहवास करते हैं, पर बाद में वह उसी व्यक्ति की पत्नी मानी जाती है, जिसने हरण करने की योजना की थी। अगर वह स्त्री कुछ काल पश्चात् उसे छोड़ कर चल दे और कोई दूसरा व्यक्ति उसे पकड़ ले तो वह फिर उसकी पत्नी हो जाती है।

युगल-विवाह

जिस काल में समाज में सामूहिक विवाह की प्रथा प्रचलित थी, तब भी अथवा उससे भी पहिले युगल-विवाह अर्थात् एक स्त्री से एक पुरुष का सम्बन्ध कुछ अंशों में प्रचलित था। उस समय यह सम्भव था कि एक पुरुष का जिन अनेक स्त्रियों से सम्बन्ध हों उनमें से किसी एक को वह मुख्य रूप से अपनी समझता हो, और स्त्री भी अनेक पुरुषों से सम्बन्ध रखते हुए भी किसी एक की विशेष रूप से अनुगत हो। यह एक ऐसी बात है, जिसके समझने में लोगों को कठिनाई पड़ती है और इसी के आधार पर यूरोपियन लेखक असभ्य जाति की स्त्रियों पर प्रायः व्यभिचार का दोष लगाने लगते हैं। ज्यों-ज्यों समाज में सहवास-सम्बन्धी बन्धन उत्पन्न होते जाते हैं और एक ही वंश के विभिन्न रिश्तों की स्त्रियों से विवाह-सम्बन्ध वर्जित माना जाने लगता है वैसे-वैसे ही युगल-विवाह की प्रथा ज़ोर पकड़ने लगती है। इसका उदाहरण हमको अमेरिका-निवासी रेड इण्डियन्स लोगों की सामाजिक अवस्था पर ध्यान देने से मिल सकता है, जिनमें कई सौ रिश्तों में सहवास करना नियम-विरुद्ध माना जाता है। समाज में ऐसी अवस्था उत्पन्न हो जाने पर सामूहिक विवाह की रीति का स्थिर रह सकना कठिन हो जाता है और पुरुष प्रायः एक ही स्त्री को पत्नी बना कर रखना सुविधाजनक समझते हैं, यद्यपि कभी-कभी वे एक से अधिक स्त्रियों से भी विवाह कर लेते हैं और कभी बिना विवाह के भी सहवास सम्बन्ध कर लेते हैं। पर स्त्रियों से यह आशा अवश्य की जाती है कि जब तक वे एक पुरुष की पत्नी रहें तब तक दूसरे से सम्बन्ध न रक्खें। यदि वे इस नियम का उल्लङ्घन करती हैं तो उनको बड़ी निर्दयता-पूर्वक दण्ड दिया जाता है। पर साथ ही यह भी नियम होता है कि यह विवाह-सम्बन्ध पति-पत्नी में से किसी के चाहने पर बड़ी जल्दी भङ्ग हो सकता है। ऐसी अवस्था में बच्चे माँ के साथ रहते हैं। हमारे देश की अनेक शूद्र जातियों में इसी प्रकार की अथवा इससे कुछ ही भिन्न प्रथा अब भी प्रचलित है।

एक ही वंश के अन्तर्गत विवाह-सम्बन्ध की प्रथा के मिटने का एक कारण यह भी है कि प्राकृतिक दृष्टि से विभिन्न वंशों का विवाह-सम्बन्ध अधिक लाभदायक सिद्ध होता है। इस सम्बन्ध में मार्गन ने लिखा है कि "एक दो फ़िर्क़ों में विवाह-सम्बन्ध होने से, जो एक ही वंश के नहीं हैं, भावी पीढ़ी शारीरिक और मानसिक दृष्टि से अधिक शक्तिशालिनी उत्पन्न होती है। दो उन्नतिशील वंशों का संयोग होने से नवीन मस्तिष्क की उत्पत्ति होती है और भावी सन्तान में दोनों वंशों के गुणों का समावेश हो जाता है।" इसलिए जो जातियाँ गोत्रों में बँटी होती हैं, वे शीघ्र ही अन्य जातियों पर प्रधानता प्राप्त कर लेती हैं अथवा दूसरी जातियाँ भी उन्हीं का अनुकरण करने लगती हैं।

इस प्रकार विदित होता है कि कुटुम्ब और विवाह का क्रम-विकाश विवाह-सम्बन्ध के घेरे के निरन्तर सङ्कुचित होते जाने के कारण हुआ है। पहले जहाँ एक फ़िर्क़े के समस्त स्त्री-पुरुष पारस्परिक सहवास के सम्बन्ध में स्वतन्त्र थे, बाद में इस विषय में अनेक प्रकार की रुकावटें उत्पन्न होने लगीं। आरम्भ में समीप के और तत्पश्चात् दूर के रिश्तेदारों में, और अन्त में जिनसे किसी प्रकार का क़ानूनी रिश्ता भी हो उनसे विवाह कर सकना नियम-विरुद्ध माना जाने लगा। अन्त में ऐसी अवस्था हो गई कि एक पुरुष को केवल एक ही स्त्री से सहवास सम्बन्ध रखने को बाध्य होना पड़ा। इस दृष्टि से विचार करने पर उन लोगों का कथन असत्य जान पड़ता है, जो कहते हैं कि एक पुरुष और एक स्त्री के सम्बन्ध की प्रथा का जन्म प्रेम के कारण हुआ है। विवाह के घेरे के सङ्कुचित होने का एक परिणाम यह हुआ कि पहले जहाँ प्रत्येक पुरुष को आवश्यकता से अधिक स्त्रियाँ मिल जाती थीं, अब वे दुर्लभ हो गईं और उनको प्राप्त करने के लिए उद्योग करना आवश्यक हो गया। इसलिए युगल-विवाह की प्रथा जारी होने पर स्त्री-अपहरण और

स्त्री-विक्रय की प्रथाएँ ज़ोर पकड़ने लगीं। दूसरा परिणाम यह हुआ, जिसका उदाहरण भारतीय समाज में सर्वत्र मिल सकता है, कि विवाह-सम्बन्ध निश्चित करने का अधिकार वर तथा कन्या के बजाय उनके माता-पिताओं अथवा अन्य वृद्ध जनों के हाथ में चला गया। इसलिए प्रायः ऐसा होता है कि जिन दो व्यक्तियों का विवाह-सम्बन्ध किया जाता है वे प्रायः एक-दूसरे से सर्वथा अनजान होते हैं और जब तक विवाह का अवसर बिल्कुल समीप नहीं आ जाता तब तक उनको इसका पता भी नहीं लगता। अमेरिका के असभ्य रेड इण्डियन्स में भी यही नियम प्रचलित है और वहाँ कन्याओं के विवाह का सम्पूर्ण अधिकार उनकी माताओं को ही होता है।

परिवर्त्तन के चिन्ह

इस प्रकार परिस्थितियों के कारण यद्यपि सामूहिक विवाह की प्रथा का लोप होकर युगल-विवाह की प्रथा चल पड़ी, तो भी संसार के अधिकांश देशों में अभी तक ऐसे चिह्न पाए जाते हैं, जिनसे वहाँ पर किसी काल में सामूहिक विवाह की प्रथा का अस्तित्व सिद्ध होता है। कैलीफ़ोर्निया (अमेरिका) के निवासी रेड इण्डियन्स कुछ ऐसे त्योहार मनाते हैं, जिनमें अनेक फ़िर्क़ों के स्त्री-पुरुष सम्मिलित होकर अबाध रूप से सहवास करते हैं। ये त्योहार सम्भवतः उस युग के स्मारक स्वरूप हैं, जब कि एक फ़िर्क़े की समस्त स्त्रियाँ दूसरे फ़िर्क़े के समस्त पुरुषों की पत्नियाँ मानी जाती थीं। आस्ट्रेलिया में भी इस प्रकार का रिवाज पाया जाता है। 'विवाह के इतिहास' के लेखक वेस्टरमार्क ने भारत की सन्थाल, पुआ और कोटार नामक कितनी ही जातियों में इस प्रकार के त्योहारों के होने का उल्लेख किया है। अनेक दूसरी सभ्य जातियों में भी ऐसे ही रिवाजों के प्रचलित होने के प्रमाण मिलते हैं, पर वर्तमान काल में सभी देशों के सुशिक्षित व्यक्तियों द्वारा ऐसी प्रथाओं के विरुद्ध घृणा प्रकट किए जाने के कारण लोग या तो उनको त्यागते जाते हैं अथवा गुप्त रूप से करते हैं।

कुछ प्राचीन और अर्वाचीन जातियों ने इन रिवाजों को धार्मिक रूप दे दिया है। बैबीलोनिया में स्त्रियाँ वर्ष में एक बार मिलटा के देव-मन्दिर में भेजी जाती थीं, जहाँ उनको स्वेच्छानुसार सहवास करने का अधिकार प्राप्त होता था। पश्चिमी एशिया की अन्य जातियाँ अपनी युवती स्त्रियों को कई वर्ष के लिए एनेटिस के मन्दिर में भेज देती थीं, जहाँ वे अपनी पसन्द के युवकों से सम्बन्ध रखती थीं और इसके पश्चात् उनका विवाह होता था। इस प्रकार की अनेक प्रथाएँ धार्मिक आवरण में एशिया के विभिन्न भागों में प्रचलित हैं। हमारे देश के दक्षिणी प्रदेशों में जो देवदासियों की प्रथा पाई जाती है, वह भी इसी प्रकार की है। इसके सिवा अनेक जातियों में कुमारी कन्याओं का देव-मूर्तियों अथवा पीपल के पेड़, नारियल आदि जड़ पदार्थों के साथ विवाह करके तत्पश्चात् उनको स्वच्छन्द रूप से छोड़ देने की प्रथा पाई जाती है। इन प्रथाओं का अनुशीलन करने से यह भी विदित होता है कि जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, ये प्रथाएँ शिथिल पड़ती जाती हैं। उदाहरणार्थ जिन प्रदेशों में प्राचीन काल में प्रौढ़ा स्त्रियों के स्वतन्त्र रूप से सहवास करने का रिवाज था, अब वहाँ केवल कन्याएँ ही ऐसा करती हैं। जहाँ प्रत्येक वर्ष स्त्रियाँ कुछ समय के लिए पत्नीत्व के बन्धन से स्वतन्त्र कर दी जाती थीं, वहाँ अब जीवन में केवल एक बार ऐसा किया जाता है। जहाँ विवाह के पश्चात् अबाध रूप से सहवास की रस्म प्रचलित थी, अब वहाँ उसे विवाह के पूर्व सम्पन्न किया जाता है। जहाँ शादी के समय वर के समस्त सहकारियों और मित्रों को नव-वधू के साथ सहवास करने का अधिकार था, वहाँ अब वह केवल कुछ विशेष व्यक्तियों तक नियमित कर दिया गया है। भारत, मलाया और दक्षिणी टापुओं के कितने ही आदिम निवासियों और अमेरिका के रेड इण्डियन्स के कितने ही फ़िर्क़ों में आज तक विवाह के पूर्व कन्याओं को इच्छानुसार सहवास करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है। अमेरिका के रेड इण्डियन्स के विषय में अगैसीज़ नामक लेखक ने एक क़िस्सा लिखा है कि एक बार उसने एक वैभवशाली तथा सुशिक्षित वंश की कन्या से पूछा कि तुम्हारा बाप कहाँ है? कन्या कुछ न कह सकी, पर उसकी माँ ने मुस्करा कर कहा—"उसका बाप नहीं है, वह संयोगवश उत्पन्न हुई है।" यही लेखक आगे चल कर कहता है—"रेड इण्डियन और रेड इण्डियन तथा यूरोपियनों के संयोग से उत्पन्न स्त्रियाँ सदैव अपने नाजायज़ बच्चों के सम्बन्ध में इसी प्रकार बातें करती हैं, और उनके कथन में

लज्जा अथवा दुःख का कोई भाव नहीं पाया जाता। उनका हृदय इस सम्बन्ध में निष्पाप होता है और वे कभी यह कल्पना भी नहीं करतीं कि उन्होंने कोई दूषित कार्य किया है। इन लोगों में बच्चे केवल अपनी माँ को जानते हैं, क्योंकि वही उनका पालन-पोषण करती है। बाप के सम्बन्ध में वे प्रायः अनजान होते हैं। उनको तथा उनकी माताओं को कभी यह ख़याल भी नहीं आता कि बाप पर उनका किसी प्रकार का दावा है।" यद्यपि यह अवस्था अनेक बाहरी लोगों को अद्भुत जान पड़ती है, पर वास्तव में वह सामूहिक विवाह और माता से वंशानुक्रम की प्रथाओं से उत्पन्न हुई है।

फिर कितनी ही जातियों में यह प्रथा पाई जाती थी कि वर के साथ जाने वाले बराती और मेहमान परम्परा के अनुसार वधू के साथ सहवास करने का दावा करते थे और वर की पारी सबसे अन्त में आती थी। यह प्रथा एबीसीनिया (अफ़्रीका) की बारिआ नामक जाति में अभी तक मौजूद है। अन्य स्थानों में कोई प्रधान पुरुष, जो फ़िर्क़े का सरदार, धर्मगुरु या राजा होता है, जाति या समाज के प्रतिनिधि की हैसियत से सबसे पहली रात को बधू के साथ सहगमन करता है। हमारे देश में कुछ अत्यन्त धार्मिक तथा आचारशील समझी जाने वाली जातियों में विवाह के पश्चात अपनी नवबधू को अपने धर्मगुरु अथवा आचार्य के पास ले जाते हैं और उससे संयोग हो जाने के पश्चात् प्रसाद स्वरूप उसे पत्नी के रूप में ग्रहण करते हैं! यूरोप के एरेगोनिया नामक प्रदेश में जब किसान सरदारों के ग़ुलाम समझे जाते थे, तो प्रत्येक नवविवाहिता स्त्री को प्रथम रात उनसे सहवास करना पड़ता था। सन् १४८६ में फ़र्डीनैण्ड नाम के शासक ने इस प्रथा का अन्त कर दिया। उसने इस सम्बन्ध में जो आज्ञा-पत्र प्रचारित किया था, उसमें लिखा है—"हम निश्चय करते हैं और घोषणा करते हैं कि अब से आगे कोई सरदार विवाह की प्रथम रात्रि को किसी किसान की स्त्री के साथ न सो सकेगा। पहली रात्रि को जब वह स्त्री अपने शयनागार में जायगी, तो किसी सरदार को यह अधिकार न होगा कि वह अपने पद की हैसियत से उस स्त्री के पास जाय। ये सरदार किसी किसान के पुत्र अथवा पुत्री का उसकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ मिहनताना देकर या बिना मिहनताने के उपयोग न कर सकेंगे।" हमने सुना है और अख़बारों में भी पढ़ा है कि राजपूताने के कितने ही जागीरदार अब भी इस प्रकार का दावा करते हैं और जो विशेष रूप से लम्पट हैं, वे उसे किसी हद तक उपयोग में भी लाते हैं।

आधुनिक विवाह-प्रथा

युगल-विवाह की प्रथा में क्रमशः परिवर्तन होकर एक पति और एक पत्नी के विवाह की प्रथा का आविर्भाव हुआ, जो वर्तमान सभ्यता का एक प्रधान लक्षण समझी जाती है। इसमें स्त्री की प्रधानता मिट कर कुटुम्ब का कर्ताधर्ता पुरुष बन गया है और वही अपनी सम्पत्ति के उत्तराधिकार के लिए सन्तान उत्पन्न करता है। इस विवाह-प्रथा में युगल-विवाह की अपेक्षा एक विशेष अन्तर यह है कि इसमें विवाह-सम्बन्ध प्राचीन काल की अपेक्षा बहुत अधिक दृढ़ हो गया और वह पति-पत्नी में से किसी की इच्छा से ही भङ्ग नहीं हो सकता। अब यदि ऐसा करने की आवश्यकता हो तो इसका अधिकार प्रायः पुरुष को ही होता है और वही स्त्री को त्याग सकता है। पुरुष को सामाजिक रूढ़ियों के अनुसार अन्य स्त्रियों से सहवास-सम्बन्ध स्थिर करने का भी अधिकार अधिकांश में माना जाता है और जैसे-जैसे सभ्यता की वृद्धि होती जाती है, यह प्रवृत्ति ज़ोर पकड़ती जाती है। पर यदि स्त्री अपने सहवास-सम्बन्धी प्राचीन अधिकार को फिर से उपयोग में लाने की चेष्टा करे तो उसे पूर्वकाल की अपेक्षा कहीं अधिक कठोर दण्ड देने की व्यवस्था की गई है। इसका परिणाम यह हुआ है कि प्राचीन समय की सरलता तथा सत्यता का अन्त होकर कपटाचरण की वृद्धि हो रही है। अब भी पुरुष और स्त्रियाँ अपने सगे से सगे सम्बन्धियों से सहवास-सम्बन्ध स्थिर कर लेती हैं; पर यह कार्य समाज की दृष्टि बचा कर किया जाता है। इसके कारण गुप्त व्यभिचार, भ्रूण-हत्या आदि के दोष भी समाज में विशेष रूप से बढ़ रहे हैं। ऐसी दशा में यह नहीं कहा जा सकता कि आधुनिक विवाह-प्रणाली प्राचीन काल की प्रणालियों से अवश्य ही श्रेष्ठ अथवा लाभजनक है। दोनों में कुछ गुण और कुछ दोष हैं और उनका आविर्भाव तथा प्रचार भलाई बुराई की दृष्टि से नहीं, वरन् समाज के आर्थिक सङ्गठन और जीवन-निर्वाह के साधनों में परिवर्तन न होने से हुआ है।

शाम की निमाज़

दि फ़ाइन आर्ट प्रिण्टिङ्ग कॉटेज
इलाहाबाद]

[चित्रकार—श्री० भुवन, बी० ए०
देहली
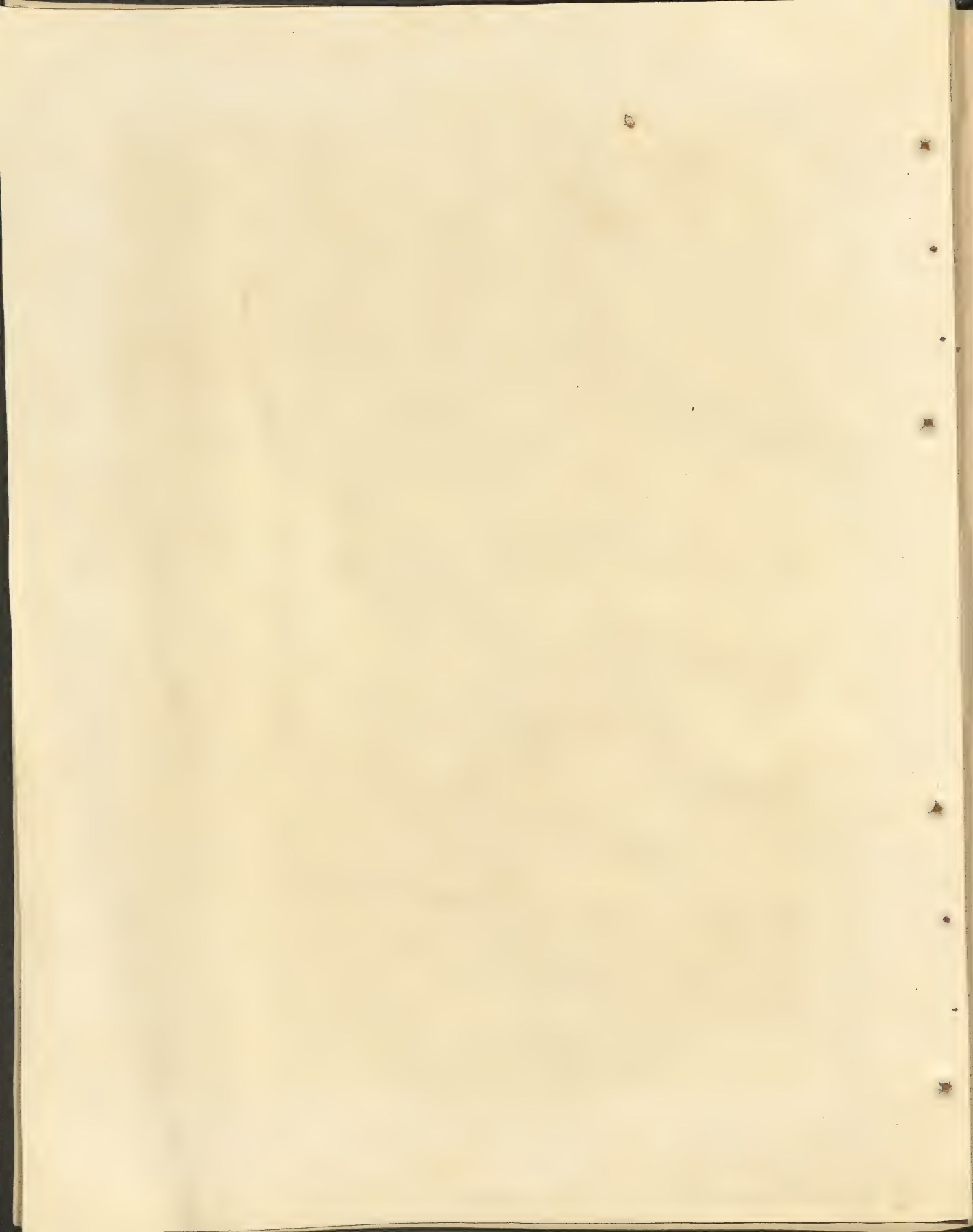
कहानी-कला

[श्री० रामनारायण 'यादवेन्दु', बी० ए०]

कला का उद्देश्य

'हमारी तो यह धारणा है कि जिस मनुष्य में सौन्दर्य-भावना पूर्ण रूप से विकसित हो जायगी, उसकी चञ्चलता आप ही आप नष्ट हो जायगी। सच्चा कलाकार वही है, जो हमारे मन की चञ्चलता को शान्त करके हमें सत्य की ओर ले जाय।'

—प्रेमचन्द

इस प्रसङ्ग में हम कहानी-कला के उद्देश्य पर विचार करना चाहते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि कहानी-कला का उद्देश्य केवल मनोरञ्जन है। परन्तु हम इस मत से सहमत नहीं हैं। कहानी का उद्देश्य 'मनोरञ्जन' के अतिरिक्त कुछ और भी है। मनोरञ्जन कहानी की सर्वोपरि विशिष्टता है; परन्तु वह उसका उद्देश्य नहीं है।

कला क्या है? कला का जीवन से क्या सम्बन्ध है? इन प्रश्नों पर विचार कर लेना आवश्यक है। 'सरस अनुभव की अभिव्यक्ति ही कला है:—'Art is the expression of Aesthetic experience'। सरस अनुभव में मनोभाव, विचार और कल्पनाओं का सन्निवेश होता है। बर्नार्ड शॉ का कथन है कि 'सुखद अनुभव को ही सरस अनुभव कहते हैं।' इससे यह निष्कर्ष निकला कि सुखद, आनन्दप्रद, सुन्दर मनोभावों की अभिव्यक्ति ही कला है।

अभिव्यक्ति के प्रकार अनेक हैं:—यथा काव्य, निबन्ध, नाटक, उपन्यास, कहानी।

जिन भावनाओं और सरस अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की जाती है, उनका मूल स्रोत क्या है? इसका एक शब्द में उत्तर है 'जीवन'। कला और जीवन में घनिष्ट सम्बन्ध है। क्योंकि कला अपने उपकरण जीवन से प्राप्त करती है। कला की विशेषता इसी में है कि वह मानव-जीवन की अन्तर्वृत्तियों का चित्रण करती है और जीवन की विशेषता इसी में है कि वह कला में अपनी छाया देख कर प्रफुल्लित हो जाता है। 'जीवन कला का स्रोत है, अनादि निर्झर है।' आदि-काल से जीवन और कला में अभेद्य सम्बन्ध रहा है।

कला जीवन की छाया है; इसलिए दिव्य कलाकार हमें जीवन के सौन्दर्य के दर्शन कराता है। ऐसा कलाविद् शील, सदाचार और संयम की ओर उदासीन भाव नहीं रख सकता। जिस प्रकार असंयत जीवन में सुख नहीं, उसी प्रकार वह कृति हमें आनन्द प्रदान नहीं कर सकती, जिसमें शीलोत्कर्ष का अभाव हो।

'यथार्थवादी' सम्प्रदाय के अन्ध-भक्त 'कला को कला के लिए' मानते हैं। वे कला में सदाचार और शील की आवश्यकता का अनुभव नहीं करते। परन्तु, यथार्थ में, यह 'वाद' ग्राह्य नहीं हो सकता। क्योंकि कला का अन्तिम लक्ष्य आनन्द है। कला मानव-हृदय में एक अनिर्वचनीय आनन्द का उद्रेक करती है। अतः जब तक कला उद्देश्य-विहीन रहेगी, तब तक वह हमें आनन्द प्राप्त नहीं करा सकती।

पूर्व और पश्चिम की कला-उपासना में बड़ा महत्वपूर्ण अन्तर है! एक वाह्य सौन्दर्य के प्रत्यक्षीकरण में अपने लक्ष्य की सफलता मानती है, तो दूसरी आत्मा के साक्षात्कार—विश्वदर्शन को कला का अन्तिम ध्येय मानती है। भारतीय संस्कृति की सबसे अनूठी विशिष्टता ही यह है कि हमारी संस्थाओं, संस्कारों, कलाओं और साहित्य का अन्तिम ध्येय 'आनन्द' है। सबका प्रयास विश्वात्मा की खोज है।

आर्य-धर्म तथा दर्शन परमात्मा के दर्शन का मार्ग प्रदर्शित करते हैं। परन्तु 'दर्शन' में कला की सरसता

नहीं होती। कला में यही विशेष गुण है कि वह सौन्दर्यानुभूति के द्वारा सत्य विश्व के दर्शन कराती है। उपन्यास-सम्राट श्री० प्रेमचन्द जी के शब्दों में—"कला का प्रधान गुण सुन्दर और सत्य है। जो असुन्दर और असत्य में डूबा हो, वह अपनी कला में गुण कहाँ से पैदा करेगा? जो मन में है वही तो क़लम से निकलेगा। हो सकता है कि कोई कलाकार नास्तिक होकर भी भक्तिपूर्ण चित्रों की या भक्तिरस की कविता की रचना करे, पर इस रचना में कदापि वह ओज और प्रभाव नहीं हो सकता, जो एक आस्तिक की रचना में हो सकता है। सदाचार का उद्देश्य संयम है, संयम में शक्ति है, और शक्ति ही आनन्द की बुनियाद है। × × × जो स्वयं संयमहीन है, वह शक्तिहीन भी होगा और शक्तिहीन आदमी न आनन्द का अनुभव कर सकता है और न उसकी कल्पना ही कर सकता है!"

इसलिए कलाकार का कर्त्तव्य है कि वह आनन्द की सृष्टि करने के लिए—सौन्दर्य का प्रत्यक्षीकरण करने के लिए—संयम और सदाचार* का पालन करे। सौन्दर्य की अनुभूति के लिए तप और साधना की आवश्यकता है।

कहानी में भी सौन्दर्य की सृष्टि के लिए साधना और संयम अपेक्षित हैं। कहानी में चरित्र-चित्रण द्वारा आत्मा के सौन्दर्य का प्रत्यक्षीकरण कराया जाता है। यही सौन्दर्य हमारे हृदय की—मानव-हृदय की सात्विक वृत्ति को जाग्रत कर मानव के लिए उत्कर्ष, विकास और आनन्द का मार्ग प्रशस्त कर देता है। कहानी में 'प्रचार' और शिक्षा के लिए भी गुञ्जाइश है। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि वे सरस अनुभव के अन्तर्गत ही रहें। यदि सरसता से हीन होकर 'प्रचार' का कहानी में सन्निवेश किया जायगा, तो वह 'विशुद्ध प्रचार' (Pure and simple propaganda) होगा, साहित्य या कला नहीं।

कहानी में दर्शन और धर्म के तथ्यों का निर्वाह सम्भव है। इसलिए कलाकार का कर्त्तव्य है कि वह केवल मनोभावों की अभिव्यक्ति को ही अपना लक्ष्य न बनावे, वरन् दार्शनिक और धार्मिक पहेलियों को अपनी कला में स्थान दे। सुप्रसिद्ध साहित्यिक एवं दार्शनिक ब्रैडले का कथन है कि कविता, कला और धर्म विश्व की अन्तिम पहेलियों से अपना सम्पर्क न रक्खेंगे, तो अध्यात्मशास्त्र (Metaphysics) का कुछ भी मूल्य न रहेगा।

लेखक कहानी इसलिए लिखता है कि वह उस सत्य और सौन्दर्य का अनुभव जगत को कराना चाहता है, जिसका उसने प्रत्यक्षीकरण किया है—साक्षात्कार किया है। यदि कलाकार इस सत्य का अपने पाठकों को अनुभव करा सकता है, तो वह सफल कलाकार है।

❀ ❀ ❀

'डोरा'

जब कहानी-लेखक किसी कहानी की रचना करना चाहता है, तो सबसे पहले वह उस भाव को अपनी विचार-पद्धति का केन्द्र बना लेता है, जो किसी घटना के उपरान्त, उसके हृदय पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाता है। ऐसी घटना कभी काल्पनिक होती है, कभी सत्य। 'डोरा' एक उच्च कोटि की प्रेम-कहानी है। इसलिए स्वभावतः उसका मौलिक भाव प्रेम है। प्रेम के इस स्वरूप ने लेखक को एक 'उद्देश्य' प्रदान किया है। 'डोरा' का आधार चाहे सत्य घटना हो या काल्पनिक, परन्तु वह हमें वास्तविक और सत्य प्रतीत होती है। इसमें आत्म-चरित्र-पद्धति का आश्रय लिया गया है। पात्र स्वयम् अपनी कथा कहता है। डोरा का कथानक बड़ा सरल, उत्कृष्ट और रोचक है।

'डोरा' कहानी का नायक भारतीय नवयुवक है; वह अपने स्वास्थ्य-सुधार के लिए लन्दन जाता है। वहाँ

---

*"उच्च सदाचार मनुष्य को यह आदेश देता है कि जो उपयोगी हो, उसे वह ग्रहण करे। वह आदर्शों की आज्ञा का पालन करने की अनुमति देता है। इस परिस्थिति में, सौन्दर्य की खोज करने से, वीरात्मक आदर्शों का सौन्दर्यात्मक आदर्शों के साथ सामञ्जस्य हो जाता है। प्रत्येक वीरात्मक कार्य सुन्दर हो जाता है, और सौन्दर्य के लिए आत्मत्याग का प्रत्येक कार्य वीरात्मक हो जाता है।

जिस दिन ऐसा होगा, उसी दिन कला की सार्थकता सिद्ध हो जायगी।"

—पदुमलाल-पुन्नालाल बख़्शी, बी० ए०

'विश्व-साहित्य' पृ० सं० २१६

दो मास रह कर स्कॉटलैण्ड के हाईलैण्डर्स में आकर वहाँ की एक रम्य घाटी में अपना निवास-स्थान बनाता है। एक गर्मी की रात को पहाड़ी पर सैर करने के लिए वह चल पड़ता है। नीचे घाटी में एक शिकारी कुत्ता एक युवती पर आक्रमण करता है। युवक उसका आर्त-नाद सुन कर उधर दौड़ पड़ता है और युवती की प्राण-रक्षा करता है। युवती अपने ग्राम को चली जाती है। युवक पर उसके सौन्दर्य, सादगी, शील और लज्जा-शीलता का बड़ा गहरा असर पड़ता है। वह पहेली की तरह घण्टों उसके इन गुणों का चिन्तन करता रहता है।

अब वह नित्य सायङ्काल को उसी घाटी में घूमने जाना अपना नियम बना लेता है। सातवें दिन फिर उस युवती से भेंट हो जाती है। युवती उस रूमाल को वापस करती है, जो युवक ने उस दिन उसके घाव पर फाड़ कर बाँधा था। रूमाल में युवती ने 'D' लिख दिया है। युवक के आग्रह से युवती घास पर बैठ जाती है और दोनों में कथोपकथन होता है। नाम-पता पूछा जाता है। युवक का नाम मोहन है और युवती का 'डौरोथी विल्सन' जिसे 'डोरा' भी कहते हैं। युवक और कुछ पूछना चाहता है, परन्तु डोरा भाग जाती है; पर रविवार को मिलने का वादा करके जाती है।

रविवार को दिल खोल कर बातें होती हैं। युवक पर डोरा की साहित्यिक-रुचि, विद्वत्ता और विमल चरित्र का बड़ा प्रभाव पड़ता है। वह डोरा के भारतीय प्रेम पर मुग्ध है। प्रतिदान-स्वरूप डोरा में भी मोहन के लिए प्रेम का उदय हो जाता है।

एक दिन डोरा मोहन को चाय पीने का निमन्त्रण देती है। मोहन आता है। वहाँ उसकी मि० लन से भेंट हो जाती है। भोजन-पान करते समय डोरा और मोहन में परस्पर प्रेमपूर्वक वार्तालाप होता है। पर मि० लन की त्यौरियों में बल पड़ जाते हैं। मि० लन और मोहन में विवाद हो जाता है। जब मोहन नाच के लिए डोरा का हाथ पकड़ता है, तो मि० लन आपत्ति उपस्थित करता है। डोरा के निवेदन पर मि० लन चल देता है। नृत्य होता है। अन्त में मि० लन के विषय में चर्चा छिड़ जाती है। मि० लन डोरा के पिता के मित्र हैं; मृत्यु के समय डोरा के पिता मि० लन को डोरा की कभी-कभी देख-भाल के लिए कह गए थे। एक बार मि० लन डोरा से विवाह का प्रस्ताव भी कर चुका है। परन्तु डोरा ने उसे अस्वीकार कर दिया है।

एक दिन महीनों बाद, उसी घास पर सन्ध्या समय मोहन बैठा है। अपने प्रेम-नाटक के अन्त के विषय में चिन्तन कर रहा है। इसी समय मि० लन आता है और कहता है कि 'डोरा मेरी है, उसे कोई अपनी नहीं बना सकता; जो उसे अपनी बनाने की चेष्टा करेगा उसे मैं मार डालूँगा।' मोहन उत्तर देता है कि डोरा का नाम भूल जाओ, वह तुमसे घृणा करती है। इसके उपरान्त दोनों में गाली-गलौज और हाथा-पाई शुरू हो जाती है। मोहन विजयी रहता है।

इस घटना के दूसरे दिन मोहन डोरा से मिलने आता है। सम्भाषण के सिलसिले में एक स्थान पर कहता है—'मैं शीघ्र लन्दन जाने वाला हूँ।' इस दुखद वाक्य को सुन कर डोरा के हृदय पर आघात होता है। वह वियोग का कारण जानना चाहती है। डोरा आग्रह करती है कि यहीं रहो। मोहन आग्रह को स्वीकार कर प्रेम-पाश में बँध जाता है। प्रेमावेश में आकर जब डोरा मोहन के गले में हाथ डालती है, तो लन प्रवेश करके अपना अमर्ष व्यक्त करता है। वह इस मिलन को अनियमित ठहराता है। लन मोहन को अपने समीप बुलाता है। मोहन आता है। पर ज्योंही मि० लन मोहन की हत्या करने के लिए छुरी निकालता है, त्योंही डोरा बीच में आकर खड़ी हो जाती है। लन की छुरी डोरा के हृदय में घुस जाती है। डोरा के प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं!

इस प्रकार जो युवक अपने स्वास्थ्य-सुधार के लिए स्कॉटलैण्ड गया था, वह अपना हृदय तोड़ कर वापस आता है!

संक्षेप में यही कहानी का कथानक है।

इस कहानी में केवल तीन पात्र हैं, जिनमें एक स्त्री तथा दो पुरुष हैं। मोहन और डोरा में प्रेम का आवि-र्भाव हो जाता है। परन्तु लन इस प्रेम-सम्बन्ध में बाधा डालता है। इस कथानक में घटनाओं की योजना ऐसे उत्तम ढङ्ग से हुई है कि वे एक सूत्र में पिरोए हुए मोतियों के हार के समान हैं। डोरा चरित्र-प्रधान कहानी है। इसलिए घटनाएँ बहुत कम हैं। घटनाओं की शृङ्खला इतनी नियमबद्ध है कि एक के बाद दूसरी घटना घटित

होती है, परन्तु उनमें किसी प्रकार की कृत्रिमता नहीं दिखलाई पड़ती। इसी को संश्लिष्ट योजना कहते हैं। स्कॉटलैण्ड की घाटी में डोरा से प्रथम मिलन होता है। मोहन उसकी प्राण-रक्षा करता है। सातवें दिन मिलन होता है। यह निरुद्देश्य नहीं है। इसमें डोरा के प्रेम का परिचय मिलता है। फिर रविवार को मिलन होता है, इससे प्रेम में और भी दृढ़ता आ जाती है। चाय-पार्टी की घटना तीव्रतम स्थिति के लिए मार्ग प्रशस्त करती है। डोरा की आन्तरिक भावनाओं का परिचय इस मिलन में मिलता है। मि० लन और मोहन के मिलन की घटना का आयोजन बड़ी निपुणता से किया गया है। इस घटना का उद्देश्य है 'कार्य' की ओर पाठक को शीघ्र से शीघ्र मार्ग से ले जाना। कहानी की अन्तिम घटना वह है, जहाँ प्रेम-नाटक का पटाक्षेप होता है।

मोहन और डोरा के प्रथम मिलन में मोहन डोरा की प्राण-रक्षा करता है; परन्तु अन्तिम मिलन में डोरा मोहन की प्राण-रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग करती है। कैसा विचित्र विधान है !!

कहानी की गति बड़ी तीव्र है और शीघ्र से शीघ्र वह अपने चरम ध्येय तक पहुँचना चाहती है। इस कहानी की तीव्रतम स्थिति उस स्थल पर है, जहाँ मि० लन मोहन की हत्या के लिए छुरी उठाता है। यही स्थल है, जहाँ पाठक की अभिरुचि चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है। पाठक की मोहन के साथ हार्दिक सहानुभूति हो जाती है।

कहानी में नाटकीय तत्त्वों का सन्निवेश बड़ी निपुणता से हुआ है। नाटकीय तत्त्व-कार्य (Action) का प्रयोग कहानी की घटनाओं से स्पष्ट विदित होता है। जो घटनाएँ, कहानी में, घटित होती हैं, वे सामान्य नहीं हैं। उनका प्रभाव हमारे हृदय पर ही नहीं पड़ता, वरन् वे हमारे हृदय में विविध भावों को जाग्रत करती हैं। हमारा हृदय डोरा के साथ है; हम मोहन से सहानुभूति रखते हैं; पर मि० लन के प्रति हममें घृणा का भाव उत्पन्न हो जाता है।

लेखक ने मानव-प्रकृति का ख़ूब निरीक्षण किया है। यही कारण है कि हम इसमें मनोयोग-तत्व का अच्छा निर्वाह पाते हैं। लेखक में मर्मस्पर्शी स्थलों को पहिचानने की पूरी क्षमता है। कहानी के मर्मस्पर्शी स्थल ये हैं :—(१) घाटी में, शिकारी कुत्ते से डोरा की मुठभेड़। (२) मि० लन और मोहन का द्वन्द्व-युद्ध, (३) मोहन की हत्या के लिए मि० लन का प्रयत्न। इन तीनों मर्मस्पर्शी स्थलों का बड़ी कुशलता से निर्वाह किया गया है। यदि इन स्थलों में किञ्चित् भी भूल हो जाती तो कहानी का सब सौन्दर्य ही नष्ट हो जाता। यदि डोरा की मोहन द्वारा रक्षा न होती, तो कहानी बन ही न पाती। यदि मि० लन और मोहन में द्वन्द्व-युद्ध न होता तो 'कार्य' की सिद्धि के लिए समय अधिक लगता और यदि इसी समय मोहन की मृत्यु हो जाती तो कहानी का सौन्दर्य ही नष्ट हो जाता। यदि लन ने मोहन की हत्या के लिए प्रयत्न न किया होता तो 'कार्य' (Action) की साधना न होती। डोरा को प्राणोत्सर्ग का सुवर्ण योग ही न मिलता।

कहानी में कार्य-कारण-तत्व का प्रयोग आद्यन्त मिलता है।

घटनाएँ कारण-कार्य के सम्बन्ध का ध्यान रख कर ही आयोजित की गई हैं। मोहन डोरा से क्यों प्रेम करता है? डोरा मोहन से क्यों विवाह करना चाहती है? मोहन डोरा से लन्दन जाने की बात क्यों कहता है? लन मोहन से क्यों द्वेष रखता है? डोरा लन से क्यों प्रेम नहीं करती? इत्यादि प्रश्नों का उत्तर सकारण है, युक्तिपूर्ण है और है न्याय-सङ्गत।

मानव-अभिरुचि का परिचय तो कहानी के केवल अवलोकन-मात्र से मिल जाता है। डोरा के विमल चरित्र का सौन्दर्य, मोहन का राष्ट्र-प्रेम एवं आत्म-सम्मान, प्रेम में आत्म-समर्पण की स्वीकृति इत्यादि ऐसे प्रसङ्ग हैं, जो लेखक का मानवता से अनुराग व्यक्त करते हैं। कहानीकार ने मानव-जीवन के कृष्ण-पक्ष और शुक्ल-पक्ष, दोनों ही पर प्रकाश डाला है। पर कहीं भी समाज-मर्यादा का उल्लङ्घन नहीं हुआ। प्रकृति के नियमों की अवहेलना कहीं भी नहीं हुई है।

लेखक ने Unity of Impression (प्रभावान्वय) सिद्धान्त का पालन भी बड़ी उत्तमता से किया है। डोरा कहानी के पठन के उपरान्त पाठक के हृदय पर उसके आत्मोत्सर्ग एवं विमल प्रेम का जो प्रभाव पड़ता है, वह आदि से अन्त तक एक रस बना रहता है। यह

प्रभावान्वय इतना उत्कृष्ट है कि कहानी की वस्तु और दृश्य इस उत्सर्ग के सामने फीके दीख पड़ते हैं।

कहानी चरित्र-प्रधान है और इसका नामकरण नायिका के नाम पर हुआ है। शीर्षक-निर्वाचन में भी लेखक ने अपनी निपुणता का परिचय दिया है। नायिका का नाम 'डौरोथी नैर्था विल्सन' है। लेखक ने इस बड़े लम्बे नाम की जगह 'डोरा' नाम रक्खा है। यह दो अक्षरों का नाम प्रेम का अनुरूप है।

'डोरा' में चरित्र-चित्रण बड़ा अनूठा हुआ है। इसके लिए लेखक महोदय ने कथोपकथनात्मक प्रणाली का आश्रय लिया है। डोरा के विमल, पवित्र और आदर्श चरित्र का चित्रण बड़ा उत्कृष्ट हुआ है। डोरा का भारतीय आदर्शों के प्रति बड़ा अनुराग है। डोरा का चरित्र आदर्श चित्रण की कोटि में आता है। कहानी में, डोरा का जितना चरित्र अङ्कित है, उतना सबसे विमल, सबसे निर्मल और सबसे निर्दोष है। डोरा के शारीरिक अङ्ग-प्रत्यङ्गों का वर्णन बड़ा उपयुक्त और सूक्ष्म है। केवल निर्देश-पद्धति का निर्वाह किया गया है। डोरा में श्री० चण्डीप्रसाद जी 'हृदयेश' की विलासिनी का-सा कृत्रिम सौन्दर्य नहीं है। वरन् उसमें वह प्राकृतिक लावण्य है, जिस पर मूर्तिमान सौन्दर्य निछावर होना चाहता है। डोरा भोली, सरल स्वभाव की ग्रामीण कुमारी है, परन्तु उसने उच्च शिक्षा प्राप्त की है। यही कारण है कि वह समुन्नत विचार रखती है। साहित्य, भूगोल, सङ्गीत और नृत्य में उसका अनुराग है। परन्तु सबसे अधिक आकर्षक गुण उसका पवित्र जीवन एवं विमल चरित्र है। डोरा अपने समाज के आधुनिक वातावरण से असन्तुष्ट है। लड़कियों का स्वेच्छाचार उसे पसन्द नहीं और न तलाक़ को ही उचित मानती है। डोरा की यह दृढ़ धारणा है कि इङ्गलिश समाज में दाम्पत्य प्रेम सच्चा नहीं है। इसका कारण है विवाह को Contract मानना। डोरा की एक पतिव्रत-धर्म में पूर्ण आस्था है। वह गाँधी की फ़िलॉसफ़ी में श्रद्धा रखती है।

प्रेम-नाटक का सूत्रधार मोहन है। सबसे पूर्व मोहन में प्रेमोदय होता है। परन्तु प्रतिदान में, डोरा भी अपनी प्रेमाञ्जलि भेंट करती है।

डोरा का प्रेम सच्चा प्रेम है। वह अन्य अङ्गरेज़ महिलाओं के प्रेम की तरह मोह या लोभ नहीं है और न गार्हस्थ्य-धर्म से विमुख करने वाला प्रेम है। इस प्रेम के लिए डोरा अपने प्राणोत्सर्ग का भी कुछ मूल्य नहीं आँकती।

इस कहानी का नायक मोहन है। वह धनवान और रसिक-हृदय है। प्राकृतिक जीवन से उसे बड़ा अनुराग है। मोहन पहले शारीरिक सौन्दर्य पर मुग्ध होता है, फिर गुणों पर और अन्त में उसकी आत्मा एवं हृदय के अपूर्व सौन्दर्य पर। परन्तु मोहन में डोरा का-सा आध्यात्मिक प्रेम नहीं है। डोरा का चरित्र जैसा पुनीत और पवित्र है, वैसा मोहन का नहीं है। हम मोहन के चरित्र को सामान्य चित्रण की कोटि में मानते हैं। क्योंकि प्रकृति-भेद-सूचक विभिन्नता के उसमें दर्शन होते हैं। मोहन में भारत के लिए प्रेम है—राष्ट्रीय गौरव का अभिमान है।

कहानी का तीसरा पात्र मि० लन है। यह उन ईर्ष्यालु प्रकृति के पुरुषों में से है, जिनकी समाज में कमी नहीं होती। ऐसे व्यक्ति लोक-संग्रही नहीं होते। वे दूसरों के उत्कर्ष को स्पर्द्धा की दृष्टि से देखते हैं। मि० लन डोरा के पिता का मित्र है। परन्तु वह डोरा का 'स्वामी' बनना चाहता है। लन डोरा-मोहन के प्रेम-नाटक में बाधक बनता है। अन्त में डोरा की हत्या कर देता है। मि० लन में गोरी चमड़ी का अभिमान है; इसलिए 'काले आदमी' की क़द्र करना उसे नहीं आता। वह प्रेम की महानता को भी नहीं समझता।

कहानी में कथोपकथन का प्रयोग मानवोचित, भावपूर्ण एवं पात्रोपयोगी हुआ है। सरल और सुबोध भाषा का व्यवहार हुआ है। स्कॉटलैण्ड की कुमारी डौरोथी की भारतीय धर्म एवं संस्कृति के प्रति अगाध श्रद्धा है। उसने अनेक भारतीय ग्रन्थों का अध्ययन किया है। इसीलिए उसकी भाषा में भारतीयता की छाप है।

कहानी का Setting (दृश्य) भी बड़ा मनोरम है। घटना-स्थल, समय, पात्र एवं परिस्थिति का पाठक के हृदय पर चित्र खिंच जाता है। कहानी में जिन घटनाओं और पात्रों का प्रयोग किया गया है, वे अलौकिक नहीं हैं, प्रत्युत इसी लोक के हैं।

कहानी का कथानक बड़ा उत्कृष्ट है, यह कहा जा चुका है। कभी-कभी तो ऐसा आभास होने लगता है कि लेखक कहानी के बहाने अपनी आत्म-कथा सुना रहे

हैं। इसी कारण पाठक कहानी को पढ़ते समय लेखक के साथ हँसता है, रोता है। लेखक को प्रकृति से जो अनुराग है, उसकी अभिव्यक्ति भी स्थान-स्थान पर की गई है।

कहानी में स्थानान्वय, समयान्वय और कार्यान्वय का निर्वाह नाटकीय ढङ्ग के अनुकूल ही है। स्थानान्वय का निर्वाह तो इतना नियमित है कि कहानी के लिए केवल एक ही दृश्य है। उसी में प्रेम-नाटक का चित्र खींचा गया है। कहानी में समय भी अधिक भ्रान्तिकारी नहीं लगता। घटनाएँ ऐसी मनोहरता से घटित होती हैं कि पाठक को समय का ध्यान भी नहीं रहता।

इसी प्रकार 'कार्यान्वय' (Unity of Action) का निर्वाह भी कुशलतापूर्वक हुआ है। इसके लिए सबसे मुख्य नियम यह है कि घटनाओं की संख्या कम रक्खी जाय। लेखक ने पूर्णतः इस नियम का पालन किया है। इस कहानी का कार्य है प्रेम की वेदी पर डोरा का प्राणोत्सर्ग।

'डोरा' कहानी में भारतीय आदर्शवाद (Idealism) एवं वास्तविकवाद (Realism) का जैसा हृदयहारी सामञ्जस्य दीख पड़ता है, वैसा यथार्थवादी लेखकों की रचनाओं में बहुत कम मिलता है। डोरा के चरित्र-चित्रण में आदर्शवाद का आश्रय लिया गया है। मानव-प्रकृति के शुक्ल-पक्ष का चित्रण ही उसमें मिलता है। दूसरी ओर मि० लन के चरित्र-चित्रण में वास्तविकवाद का मर्यादित प्रयोग मिलता है। यह मानव-प्रकृति के कृष्ण-पक्ष का चित्र है। डोरा की हत्या एक ऐसा प्रसङ्ग है, जो भारतीय आदर्श के प्रतिकूल आ पड़ता है। परन्तु लेखक ने अपनी 'कल्पना-सुधा' से डोरा को जिला दिया है! डोरा के अन्तिम शब्द इसकी साक्षी देते हैं। डोरा कहती है :—

'आज हमारे प्रेम का दिन है—अनन्त प्रेम का दिन !! मैं बड़ी भाग्यशालिनी हूँ, जो तुम्हारे लिए मर रही हूँ तथा तुम्हारे मुख से यह सुनने के अनन्तर कि तुम मुझसे प्रेम करते हो। अब तुम मेरे हो। कभी किसी जीवन में पुनर्मिलन होगा। मेरा सोच न करना। समझना स्वप्न था, बीत गया !'

इन शब्दों ने—डोरा के इन हृदयोद्गारों ने—एक दुःखान्त नाटक को सुखान्त बना दिया है। यहाँ भारतीय आदर्श की रक्षा कैसी निपुणता और कौशल से की गई है।

लेखक की शैली प्रसाद-गुण-सम्पन्न है। भाषा में सुबोधता, स्पष्टता और माधुर्य है। माधुर्य के सन्निवेश से प्रेम-नाटक में जीवन आगया है। मधुरता और सरसता का ऐसा सञ्चार हुआ है कि मानव-हृदय द्रवीभूत हुए बिना नहीं रह सकता। भाषा में स्वाभाविकता है। कृत्रिमता का लेश भी नहीं है। यथास्थान उर्दू के शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। अङ्गरेज़ी में गीत उद्धृत करके लेखक ने स्वाभाविकता की रक्षा की है। हमारे विचार में 'डोरा' एक सर्वश्रेष्ठ प्रेम-कहानी है।*

* 'डोरा' कहानी के लेखक डॉ० धनीराम प्रेम, साहित्य-कोविद, S. C. P. S. भूतपूर्व सम्पादक 'चाँद' प्रयाग हैं। यह कहानी राष्ट्रीय साप्ताहिक 'भविष्य' २३ अक्टूबर सन् १९३० ई० की संख्या में प्रकाशित हुई है। डॉक्टर साहब की 'वल्लरी' नामक पुस्तक में भी यह कहानी छपी है, जो चाँद प्रेस लिमिटेड से २॥) में प्राप्त हो सकती है। —लेखक

मेरा जीवन

[श्री० शारदाप्रसाद भण्डारी]

मेरी है करुण-कहानी,
जिसको सुन जग रो देगा।
जीवन की असफलता पर,
अपना धीरज खो देगा॥

रहने दो सुप्त व्यथा को,
जग कर आफ़त लायेगी।
पीड़ित को फिर पीड़ा से,
हँस-हँस कर नहलायेगी॥

यह दृश्य देख कर तुम भी,
दुःख का अनुभव कर लोगे।
सम्भव है, दुःख के कारण,
आँसू-मोती खो दोगे॥

शैशव-प्रभात था मेरा,
अवसाद-पूर्ण अँधियाला।
यौवन की दोपहरी में,
होता था तनिक उजाला॥

फिर उसी उजाले में ही,
मित्रों की बारी आई।
उनकी सङ्गति को पाकर,
मेरी प्रतिभा मुसकाई॥

अपने मन्दिर में मैंने,
उनको सादर बैठाया।
उनके स्वागतहित अपना,
पानी-सा द्रव्य बहाया॥

पर धीरे-धीरे मैंने,
मित्रों को हँसते देखा।
इस हृदय-कसौटी पर कस,
मैंने उनको अवरेखा॥

तब मिली निराशा मुझको,
क्या कहूँ रङ्ग था अपना।
मन से मैंने हँस पूछा—
"यह जीवन है या सपना?"

तब ज्ञान हो गया मुझको,
यह स्वार्थ-पूर्ण जीवन है।
यह जगत् अनोखा वन है,
हिंसक है पर निर्जन है॥

होकर हताश जीवन से,
बैठा था मैं उपवन में।
मेरा तो कटु-अनुभव था,
असफलता का जीवन में॥

मन्थर गति से आती थी,
लेकर सुमनों की माला।
तन्मयता से सिञ्चित कर,
छलकाती यौवन-प्याला॥

उसका था रूप अनोखा,
मादकता थी चितवन में।
पग-पग में आकर्षण था,
'जीवन' था उस 'जीवन में'॥

सोचा, भरने आई है,
नवजीवन 'इस जीवन' में।
टूटी आशा जोड़ेगी,
उसको मुझसे उपवन में॥

उसने आकर यह पूछा—
"पथ क्या तुम भूल गए हो?
होकर निराश जीवन से,
जग से क्या रूठ गए हो?"

उसकी बातों को सुन कर,
जग गईं व्यथाएँ सारी।
आशा के उज्ज्वल नभ पर,
छा गई घोर अँधियारी॥

मैं सिसक-सिसक कर बोला,
"मत छेड़ो इस निर्जन में।
एकाकी ही काटूँगा,
अवशिष्ट घड़ी जीवन में॥"

सौ वर्ष पूर्व दिल्ली के लाल क़िले में

[श्री० बनारसीदास, बी० ए०]

“लेकिन एक साधारण दर्शक इन भव्य भवनों में क्या देख सकता है ? वह इन भवनों की अनुपम पच्चीकारी, अनोखी नक़्क़ाशी को भले ही निर्निमेष नेत्रों से देखे, वह भले ही सङ्गमरमर के धवल प्रासादों में बैठ कर शीतलता का आनन्द ले; किन्तु फिर भी वह जो कुछ देखता है वह पत्थर, केवल पत्थर ही तो है। क्या वह यह भी सोचेगा कि इन सूने महलों में एक दिन जीवन के सभी आनन्द थे—सुकुमारियों की अठखेलियाँ और दरबारियों की चहल-पहल रहती थी।”

—सर यदुनाथ सरकार

प्रातःकाल के चार बजे तो धायँ से तोप चली। बादशाह 'अल्लाह-रसूल' कहते बिस्तरे से उठे। बाँदियाँ चिलमची और आफ़ताबा लिए अदब से खड़ी हैं। रूमालख़ाने वालियाँ, पाँव-पाक और नीनी-पाक (नाक साफ़ करने का रूमाल) लिए तैयार हैं। बादशाह उठे तो सबने मुजरा किया और मुबारकबादी दी। बादशाह तख़्ते (चौकी) पर गए। वज़ू किया, नमाज़ पढ़ी और वज़ीफ़ा पढ़ने बैठ गए। एक घण्टे तक परमात्मा के ध्यान में मग्न रहे।

उसी समय तोशेख़ाने वालियाँ कमख़्वाब का दस्त-बुकचा लेकर उपस्थित हुईं। बादशाह ने पोशाक बदली। फिर हकीम जी आए और बादशाह की नब्ज़ देखी। शाही दवाख़ाने से ठण्डाई भिजवाई; जिसकी मुहर बादशाह के सामने तोड़ी गई। बादशाह ने ठण्ढाई पी। फिर 'दर्शनी खिड़की' पर आए और अपने प्रजाजन को दर्शन दिया। इसके बाद महल की सवारी लाने का हुक्म दिया।

और उधर महलों में तो देखो। लौंडियाँ-बाँदियाँ नींद के झोंके लेती गिरती-पड़ती उठीं और अपने-अपने काम-काज में लग गईं। ज़रा सूरज निकला तो मोरछल लेकर शाहज़ादियों के बिस्तरों के पास आ गईं, कि कोई मक्खी उन्हें जगा न दे।

शाहज़ादियों को तो देखो। काले, आसमानी, नीले, पीले बहुमूल्य दुशाले ओढ़े सुख से सो रही हैं। मख़मल के गद्दे और रेशम के कोमल तकिये हैं। गोरे-गोरे हाथ तकियों पर पड़े हैं। किसी का मुख जो दुशाले से बाहर निकला तो सारी उपमाएँ झूँठी पड़ गईं। धीरे-धीरे आँख खोलतीं, अँगड़ाई लेतीं, बाल सम्हालतीं उठीं। बाँदियों ने कपड़े सँभाल दिये, और सोते में जो कोई बाली-बुन्दा गिर पड़ा तो फिर पहना दिया। अगर कोई कच्ची नींद जग पड़ी तो क़ह्र हो गया। बाँदियों की आफ़त आ गई। जिसे सामने खड़ी पाया उसी पर नाराज़ होने लगीं—

“अलामा दहर, चुड़ैल, किसी दूसरे के दर्द को भी देखती है? रात से मेरा सिर दर्द के मारे फटा जा रहा है। ज़रा मक्खियाँ तक नहीं उड़ाई जातीं। ऐसा दीदे का डर निकल गया! भला री, देख तो तेरे कैसे बल निकालती हूँ!”

किसी बड़ी-बूढ़ी ने सुना तो समझाने लगी—

“चलो बहुत सो लीं। अब उठ बैठो। दिन निकले मुँह न बिगाड़ो। तुम्हें किसी दूसरे के घर जाना है। ज़रा सलीक़ा सीखो।”

“अच्छी बुआ, तुम्हें क्या? सोते हैं, अपना वक़्त खोते हैं। लो, तुम्हें बुरे लगते हैं तो कहीं और जा रहेंगे। बादशाह बेगम (साम्राज्ञी) के पास चले जायँगे।”

दो-चार मिल कर आईं तो अपने साथ लिवा ले गईं।

देखो, दो-दो, चार-चार की टोलियों में हौज़ों पर पहुँच गईं। छोटी-छोटी नहरों से सुगन्धित जल आकर हौज़ों में बहता है। मुँह-हाथ धोने के हौज़ अधिक गहरे नहीं हैं। वे खिले हुए कमल के समान बड़ी रकाबी के बराबर हैं। निर्मल जल से भर जाते हैं तो तले की पच्चीकारी साफ़ चमकती है। सुबह-शाम शाहज़ादियाँ यहीं मुँह-हाथ धोती हैं। जब से लाल क़िले का वैभव लुटा, शायद ही इन अभागे हौज़ों को कभी पानी मिला हो! गुलाबजल और इत्र पड़ा हुआ पानी तो कहाँ से आया, वर्षा का जल कभी-कभी इधर-उधर से बह कर आ जाता है। इनमें अब फूल कौन डाले, सफ़ाई तक नहीं होती। कूड़ा-कर्कट भरा रहता है। सूखी पत्तियाँ न जाने कहाँ से उड़-उड़ कर यहाँ इकट्ठी हो जाती हैं। सङ्गमरमर के तले काई से काले पड़ गए हैं। महलों के इन हौज़ों को देखो तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे पृथ्वी के कलेजे में शोक से छेद हो गए हों।

हाँ तो, बादशाह की (महल की) सवारी निकली, बाँदियाँ हवादार लाईं, बादशाह सवार हुए, बेगनियाँ मर्दाने कपड़े पहिने सर पर पगड़ी, कमर में दुपट्टे बाँधे, हाथ में ज़रेब लिए, साथ में जश्नियाँ, तुर्किनियाँ, कल्माकनियाँ ज़रेब पकड़े तख़्त के साथ-साथ हैं। जसोलिनियाँ आगे-आगे हाथ में ज़रेब लिए पुकारती जाती हैं—ख़बरदार रहो! ख़बरदार रहो!

दरगाह में सवारी आई; बादशाह ने उतर कर फ़ातहा पढ़ा और सवारी फिर वापिस गई।

हम्माम

महलों में कितने ही हम्माम हैं। इम्तियाज़ महल का हम्माम सबसे अच्छा है। सङ्गमरमर का अठपहलू बहुत अच्छा बना है। ऊपर दीवालों में रौशनदान हैं, जिनमें से रोशनी आती है, पर धूप नहीं आती।

इस हम्माम की अजब तासीर है। गर्मियों में ठण्ढा और जाड़ों में गरम रहता है। बीच में एक बड़ा हौज़ है, जिसमें ख़ुशबूदार पानी आता है। गुलाब के फूल पड़े रहते हैं। शाहज़ादियाँ यहाँ नहाने आती हैं। अजब अठखेलियाँ और नोक-झोंक रहती है। बस, इसका वर्णन यहीं तक है; आगे किसी ने कुछ नहीं देखा।

शाहज़ादियाँ भले ही एक दूसरे के शरीर को देखती और छूती हों, परन्तु इस संसार में तो कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जिसने चर्म-चक्षुओं से उन रूप-राशियों को नहाते देखा हो। कल्पना भी वहाँ नहीं पहुँच सकती।

कवियों ने मामूली स्त्रियों को अप्सरा, मृगलोचनी, चन्द्रबदना बना डाला और अपनी कल्पनाएँ समाप्त कर दीं। जब उन्हें पनिहारियों ने ही "अमी-हलाहल-मद" के प्याले पिला दिए और वे जीवित हो गए, मर गए और झूमने लगे तो फिर उनका यहाँ क्या हाल होता? कदाचित् हम्माम के द्वार पर ही उनका दम निकल जाता। शाहज़ादियों के शरीर से जो गन्ध की लपटें निकलती होंगी, उनसे तो उनका मस्तिष्क फट जाता और सारी कल्पनाएँ द्वार पर ही बिखर जातीं।

हम्माम में तो उस समय देवता भी नहीं झाँक सकते थे। सूर्य को सिर्फ़ रौशनदान तक आने की इजाज़त थी, भीतर किरण डाल कर किसी के अङ्ग को वह भी नहीं छू सकता था।

पवन भी हम्माम के द्वार तक ही आ सकता था, अन्दर जाने का काम नहीं, फिर मनुष्यों की क्या ताब? हाँ, वह सूना हम्माम कदाचित् कुछ बता सके, किन्तु वह तो बेज़ुबाँ है। वह गुलाबजल भरा हुआ हौज़ सूखा पड़ा है। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कोई हम्माम का हृदय काट कर निकाल ले गया हो और ख़ाली घाव छोड़ गया हो, जो अब तक नहीं भरा!

हम्माम की छत शताब्दियों से हौज़ की सूनी गोद को देख रही है, जिसमें वे कल्पनातीत सुन्दरियाँ केलि-क्रीड़ा करती थीं। इन्हें काल-चक्र का भयङ्कर अनुभव है।

❀ ❀ ❀

अब जुलूस की सवारी देखो। निशान के हाथी आए। तमामी का फ़रेरा, रेशम की डोरियाँ लटक रही हैं। छत्र का हाथी आया। ऊपर सोने की कलशी लगी है। माही मरातिब के हाथी आए। सूरज की शक्ल, मछली की शक्ल, आदमी के पञ्जे आदि सोने के बना कर लकड़ियों पर लगा रक्खे हैं। ज़म्बूरों के ऊँट पीछे आए। ज़म्बूरची बन्दूक़ें छोड़ते हैं। फिर फ़ौज आई। घुड़सवार, तिलङ्गे, बछेड़ा पल्टन और अगरई पल्टनें आईं। ताशा, मरफ़ा, तुरही बजती हैं। अहा, कैसे सजे

हुए घोड़े आए; सोने-चाँदी के साज, हैकल, गण्डे, पूजी, दुमची, कलग़ियाँ, पाखुरे, झाँझन, कारचोबी ग़ाशियों से कैसे सजे हुए हैं।

लो, बादशाह हाथी पर सवार होकर आए। सर पर दस्तार (पगड़ी), उस पर चेग़ा, सरपेंच, गोशवारा, बादशाही ताज, मोतियों का तुर्रा, गले में मोतियों का कण्ठा, मोती-मालाएँ, हीरों का हार, बाज़ू पर भुजबन्द, नौरतन, हाथों में ज़मुर्रद, याक़ूत की सुमिरनें पहने हुए हैं। झण्डे (अलबोला) का पेंच हाथ में लिए बैठे हैं। ख़वासी में युवराज बैठे मोरछल करते जाते हैं। पीछे बादशाह बेगम और शाहज़ादों की सवारियाँ आईं। इसके बाद राजा-अमीर इत्यादि आए। इसके पीछे फ़ौज निकली। बेले का हाथी तबल बजाता था। ख़ैरात बँटती थी। नक़ीब-चोबदार पुकारता था—"मुलाहिज़ा आदाब से करो, मुजरा जहाँपनाह बादशाह सलामत।" बादशाह बैठक में पधारे। बीबियाँ अपने-अपने पदानुसार दाईं ओर बैठ गईं। शाहज़ादे शाहज़ादियाँ और बेगमें सब बाईं ओर बैठ गईं। यहाँ आकर सम्राट् ने अर्ज़ियों पर हस्ताक्षर किए, हुक्म-एहकाम जारी किए।

फिर ख़ासा के दारोग़ा (भोजन-प्रबन्ध का अधिकारी) ने बड़े अदब से अर्ज़ किया—जहाँपनाह, ख़ासा तैयार है।

जसोलनी ने ख़ासेवालियों को आवाज़ दी—'बीबियो, ख़ासा लाओ—नियामत-खाना लाओ।' यह नियामत-ख़ाना एक प्रकार का लकड़ी का कठहरा होता था, जिस पर मक्खियाँ रोकने के लिए जाली लगी रहती थी। अस्तु—

कहारियाँ और कश्मीरिनें दौड़ीं। छोटा ख़ासा और बड़े ख़ासे के ख़्वान सर पर लिए चली आती हैं। ख़्वानों का तार लग रहा है।

चपातियाँ, फुलके, पराँठे, रोग़नी रोटी, बर्री रोटी, बेसनी रोटी, ख़मीरी रोटी, नान, शीरमाल, ग़ावदीदा, गावज़मा, कुलचा (पिट्ठी की रोटी), बाकरख़ानी, गोसी रोटी, बादाम की रोटी, पिस्ते की रोटी, चावल की रोटी, गाजर की रोटी, मिसरी की रोटी, नान पब्बा, नान गुलज़ार, नान क़म्माश, बादाम की नान ख़ताई, पिस्ते की नानख़ताई, छुआरे की नानख़ताई, पख़्ती पुलाव, मोती पुलाव, नूरमहली पुलाव, नुक़ती पुलाव, फ़ालसई पुलाव, आबी पुलाव, सुनहरी पुलाव, रुपहली पुलाव, बैज़ा पुलाव, अनन्नास पुलाव, कोफ़्ता पुलाव, बिरियानी (भुना हुआ) पुलाव, सारे बकरे का पुलाव, बूँट पुलाव आदि अनेक प्रकार के पुलाव हैं जिनके नाम तक नहीं गिनाए जा सकते। क़बूली ताहरी, मुतञ्जन, ज़र्दा, मुज़फ़्फ़र, सोनियाँ, फ़रनी, खीर, बादाम की खीर, कद्दू की खीर, गाजर की खीर, कङ्गनी की खीर तथा दूध बादाम के अनेक सामान हैं। मीठे नमकीन समौसे, शाख़ें, सैकड़ों तरह के मुरब्बे, चटनी, गोश्त और फल इत्यादि हैं। जिसका जी चाहे वह खाय।

पहिले सब चीज़ें एक बड़ी सी रकाबी में बहुत थोड़ी-थोड़ी रखकर देखी गईं। कोई देखता तो समझता शायद किसी फ़क़ीर के लिए या चढ़ावे के लिए निकाली जा रही हैं। नहीं; उस रकाबी से विष का पता चलता था। यदि भोजन में किसी प्रकार थोड़ा भी विष होता तो रकाबी का रङ्ग बदल जाता। ऐसी अद्भुत रकाबी अब नहीं बनती। परन्तु ऐसी एक रकाबी अब भी ताज के म्युज़ियम में रक्खी है। इन भोजनों के भी अब केवल नाम रह गए हैं, क्योंकि वे खानेवालियाँ तो ग़दर में दिल्ली की सड़कों पर ठोकर खा-खाकर मर गईं, जङ्गलों में पड़ी-पड़ी सूख गईं या सूखी रोटियों के मोल मज़दूरों के हाथ बिक गईं! यह तो अब केवल स्वप्न की ही बातें हैं।

× × ×

दोपहर हो गया। महलों में इधर से उधर सगड़े मारती फिरती हैं। कोई कबूतर चुगा रही है, कोई चिड़ियों को दाना डाल रही है, कहीं क़िस्से-कहानियाँ हो रही हैं और कहीं शतरञ्ज और चौपड़ की बाज़ियाँ चल रही हैं। वह देखो, कितना अच्छा शामियाना लग रहा है। एक-एक करके कितनी इकट्ठी हो गईं! एक से एक अच्छे बनाव-सिङ्गार करके आई हैं। बाँदियाँ, लौंडियाँ, अन्ना, मानी, हप्पा, छूछू 'वारी गई, बलिहारी गई' के तार बाँध रही हैं। शामियाने में नाच-रङ्ग जमने की तजवीज़ें हो रही हैं। लौंडियाँ, बाँदियाँ चाँदी के थालों में सोने का इत्रदान लाईं और सबके इत्र लगाने लगीं। यह लो, नाचने वाली आई और अदा से नाचने लगी! अब एक-एक पर बोलियाँ ठठोलियाँ मार रही

हैं। भूल से जो बेचारी कोई बड़ी-बूढ़ी आ फँसी तो उसकी आफ़त आ गई। सबने उसे घेर कर बीच में बैठा लिया—

"अच्छी बुआ, तुम यहाँ क्यों आईं ?"

"ज़रा देखो तो, सींग कटा के बछड़ों में मिली हैं।"

"अयहय, और इस पोपले मुँह में मिस्सी लगा कर आई हैं।"

"दरगारे, तुम्हारी सूरत ! क़ब्र में जाने को बैठी हो, बिना नाच देखे अब भी चैन नहीं पड़ता।"

"ज़रा देखो तो क्या टमाक से बाले-बुन्दे लटकाए बैठी हैं !"

"ख़ाक, क्या बुरे लगते हैं ! अच्छी, उनके दिल से तो पूछो।"

"उनके मियाँ के दिल से तो पूछो।" बेचारी की आफ़त आ गई।

चलो भाई, वक्त हो गया दर्बार में चलें—सब छम-छम करती महल के दर्बार में गईं। आज बादशाह की सालगिरह का महल में दर्बार होगा। ख़ुशी से कोई फूली नहीं समाती।

चाँदी का तख़्त बिछा हुआ है, उस पर ग़ज़ब की नक़्क़ाशी है। पीछे की ओर तकिया, आगे तीन सीढ़ियाँ हैं। पायों में अनेक प्रकार के फूल-पत्ते बने हुए हैं। ऊपर करकरी ताश का तख़्त-पोश पड़ा हुआ है। बाईं ओर बादशाह-बेगम (साम्राज्ञी) मसनद के सहारे बैठी हुई हैं। ख़ानिम के बाज़ार * की सारी कला उनके शरीर पर शोभा पा रही है।

इनके बराबर और बीबियाँ अपनी-अपनी सोज-नियों पर आभूषणों से लदी हुई नाकों में नथें पहिने बैठी हैं। बाईं तरफ़ शाहज़ादियाँ हैं जो सर्वोत्तम वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर आई हैं। सामने जश्नियाँ, तुर्किनियाँ, कल्लाकनियाँ, अर्दाबेगनियाँ, जसोलनियाँ और ख़्वाजासरा ज़रेबें पकड़े अदब से खड़े हैं। बादशाह महल में पधारे। जसोलनी ने आवाज़ दी—'ख़बरदार हो।' सब बेगमें खड़ी हो गईं और मुजरा किया। तख़्त पर से तख़्त-पोश ख़ोजों ने उठाया। कहारियों ने हवादार तख़्त के बराबर लगा दिया। सम्राट तख़्त पर विराजे। ख़्वाजासरा मोरछल लेकर तख़्त के बराबर खड़े हो गए। पहिले बादशाह-बेगम ने मुजरा किया। नज़र दी और फिर मुजरा करके बैठ गईं। अब औरों ने भी अपने पदानुसार इसी प्रकार भेटें दीं और मुजरा किया। सम्राट् ने स्वयं हाथों से सब को बहुमूल्य दुपट्टे दिए। सब ने खड़े होकर दुपट्टे लिए और मुजरा करके बैठ गईं।

अब नाच-गाना शुरू हुआ। न जानें कहाँ से अचानक नाचने वाली बादशाह के सामने आकर नाचने लगी। साज़िन्दे पर्दे के पीछे बाजे बजा रहे हैं।

फिर तान रसखान आए तो दो-चार तानें उनकी सुनीं। दरबार समाप्त हुआ। बादशाह ने आराम किया। तीसरे पहर के बाद फिर सब आकर इकट्ठे हो गए। बादशाह मसनद पर आकर बैठे। मिठाई के ख़्वान सजे हुए रक्खे हैं। एक चाँदी की कश्ती में बड़ा सा कलावा, पान के बीड़े, हरी दूब, मिस्री के कूज़े, चाँदी के छल्ले वग़ैरह रक्खे हैं। ऊपर कमख़ाब का कश्ती-पोश पड़ा है जिसमें कलाबत्तू की झालरें झिलमिल कर रही हैं।

जसोलनी ने झुक कर कहा—हज़रत साहब तशरीफ़ लाए हैं।

बादशाह स्वागत करने के लिए खड़े हो गए और उन्हें मसनद पर बिठाया। हज़रत साहब ने पहले हज़रत फ़ातमा, बाबर बादशाह आदि की नयाज़ें दीं। फिर कश्ती में से कलावा निकाला। पहले "सुबहान अल्ला अलरहमान रहीम" कह कर उसमें एक गिरह लगाई। दूसरी गिरह में पान का बीड़ा बाँधा, तीसरी में हरी दूब और मिस्री की डली बाँधी, चौथी में चाँदी का छल्ला बाँधा और पाँचवीं गिरह बादशाह के सिर से छुआ कर उस कलावे में लगाई। सबने खड़े होकर मुजरा किया और मुबारकबादी दी—यह एक साल

---

* ख़ानिम का बाज़ार ज़ेवर जवाहरात का उस समय भारत का सबसे बड़ा बाज़ार था। सारे देश का कला-कौशल वहीं समाप्त होता था। शाही महल की सोने-चाँदी और जवाहरात की चीज़ें सब वहीं बनती थीं। यह बाज़ार क़िले के बिल्कुल पास था। अब तो उसकी एक दुकान का भी पता नहीं। एक सीधी कोल-तार की सड़क उसकी जगह बन रही है। उस बाज़ार का निशान भी तो नहीं है।

हज़ार साल और ख़ुदा नसीब करे। साजगिरह के बाजे बजने लगे। अब महीनों मेहमानदारी रहेगी।

× × ×

शाम हो गई। मशालचियों ने रोशनी की। गश्त हुआ। क़िले के पहरेदारों की फ़ौज क़दम से क़दम मिलाती आई। क़वायद की, और सलामी उतारी। पहरा लग गया।

रोशनी से सारे महल जगमगा रहे हैं। जलती हुई बत्तियों की सुगन्धि से सारा क़िला महक रहा है।

दिन के खेल-कूद से जो शाहज़ादी ज़रा थक गई तो नौ बहार, सब्ज़ा बहार, नर्गिस, मान कुँवर, आनन्द कुँवर तलुए सहलाने लगीं, पाँव दाबने लगीं। ज़रा किसी के माथे में दर्द होने लगा तो सबके पिण्डे फीके पड़ गए। बाँदियाँ, लौंडियाँ दौड़ी-दौड़ी शाही दवाख़ाने से दवा लाईं। अन्ना, मानी, हप्पा, छू-छू सब इकट्ठी हो गईं।

"हाय, किस कल्ज़नी ने आज बिटिया को होंस दिया। मेरी बच्ची का मुँह फीका-फीका दिखाई देता है। अरी, ज़रा जइयो, कल्हारी के पाँव तले की मिट्टी चूल्हे में जलइयो। हज़रत फ़ातमा, हज़रत महम्मद के नाम की ख़ैरात बोलूँ, सुबह होगा तो बहुत सी ख़ैरात करूँगी।"

लो रात हो चली। सम्राट दीवाने-ख़ास में साम्राज्य सम्बन्धी बातें अपने वज़ीरों से कर रहे हैं। आठ बजे तो वहीं गाना हुआ और फिर ईशा की नमाज़ पढ़ कर महलों में आए। वहाँ फिर गाना-बजाना हुआ और किताबें पढ़ कर सुनाई गईं। बादशाह ने "आबे-हयात" माँगा और सुख लिया।

बाहर क़िस्सेख़्वाँ क़िस्से कह रहे हैं। चप्पीवालियाँ चप्पी कर रही हैं। ड्योढ़ियाँ सब भरी हुई हैं। अन्दर तुर्किनियाँ, जश्नियाँ, कल्माकनियाँ पहरा दे रही हैं। जगह-जगह कहानी, पहेली और पचीसी हो रही है।

बाहर हब्शी, कलार, दरबान, परधे-प्यादे और सिपाही पहरे-चौकी पर होशियार हैं।

किसी दिन जो कोई महल में खेल-तमाशा हुआ तो दीवाने-ख़ास में इन्तज़ाम हो गया। बेगमें शाहज़ादियाँ परदे में बैठ गईं। तमाशा देखा। ख़ुश हो गईं तो छल्ला, अँगूठी, माला, अशर्फ़ी, मुहर, रुपए जो तबियत में आया दे आईं। ग़रीब तमाशे वाले को बात की बात में मालामाल कर दिया। फिर सब अपने-अपने महलों में गईं। सेजों पर सो गईं। भारी-भारी गहने आलों में पटक दिए। बाँदियाँ पैर दाबने लगीं।

रात में बाहर जमुना किनारे से जो कोई लाल क़िले को उस समय देखता तो परिस्तान को अवश्य हेच मानता—असंख्य दीपकों का प्रकाश सङ्गमरमर के धवल-धाम, सोने की कलशियाँ और सङ्गीत स्वर-लहरी। उसी स्थान पर लाल क़िले के महल अब भी है। रात में अब देखो तो यही विचार आता है कि मनुष्य क्षण-भङ्गुर सुख के लिए क्यों इतने आडम्बर रचता है। काल-चक्र कितना भयङ्कर है!! चुपचाप क़िले के पास रात को अब भी कोई कहता है:—

सुबहे इशरत की शाम होती है,
बज़्म आख़िर तमाम होती है।
हाँ अजल, आज आ जो आना है,
अञ्जुमन इख़्तताम होती है।

मुट्ठी भर हाड़ में!

[श्री० सत्यव्रत शर्मा 'सुजन', बी० ए०]

सूट-बूट धारने पे ठूँठ जग दीखता है, खाँड़ सी मिठास भरी मख़मल पाड़ में।
ऐनक की आँखों में प्रवेश पतिव्रता का न, रण्डी दालमण्डी की सुहाती ख़ूब आड़ में॥
कृश पीत होवें भले, हेज़लिन रोज़ मलें, अकड़-अकड़ चलें, पुंसत्व जाए भाड़ में।
मिट्टी के शरीर को सजाने से न छुट्टी कभी, क्या धरा है सारहीन मुट्ठी भर हाड़ में॥

परम सौभाग्यवती स्वर्गीया दुर्गारानी कपूर—आप फ़र्रुख़ाबाद-निवासी श्री० जे० एन० कपूर की धर्मपत्नी थीं। अपने अटल पतिव्रत और सेवा से आपने अपने पतिदेव को मृत्यु-मुख से बचा लिया था। ४३ वर्ष की अवस्था में आपने परदा-प्रथा को त्याग दिया। आप दया और धर्म की मूर्ति थीं और अन्त में पति से प्रेमालाप करती हुई एकाएक स्वर्ग सिधार गईं।

कुमारी के० एन० डुनकम—आप दक्षिण भारत की प्रथम महिला हैं, जिन्होंने हवाई जहाज़ चलाने की योग्यता और अधिकार प्राप्त किया है। आपका सम्बन्ध मद्रास के स्कॉटलैण्ड चर्च से है।

पटना-निवासिनी श्रीमती पी० के० सेन—आप भारतीय स्त्रियों की प्रतिनिधि बन कर ज्वाइण्ट पार्लामेण्ट्री कमिटी में साक्षी देने के लिए लन्दन गई हैं।

श्रीमती सरला देवी

आप एक उड़िया महिला-रत्न हैं और कटक के सेण्ट्रल कोऑपरेटिव बैङ्क की डाइरेक्टर नियुक्त हुई हैं।

कुमारी विद्यावती श्रीवास्तव – जिन्होंने इस साल काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में एडमिशन (मैट्रिक) परीक्षा पास की है और समस्त सफल परीक्षार्थिनियों में सर्व-प्रथम स्थान प्राप्त किया है। आप खण्डवा के सुप्रसिद्ध डॉक्टर नर्मदाप्रसाद सिविल सर्जन की सुपुत्री हैं। आप अभी केवल १५ वर्ष की हैं।

कुमारी ज़ेबुन्निसा बेगम

आप मुज़फ़्फ़रगढ़ के रईस श्रीयुत अज़ीज़ मोहम्मद क़ुरेशी की पुत्री हैं। आपने केवल ११ वर्ष की आयु में ही पञ्जाब-यूनिवर्सिटी की मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास की है।

श्री० रामकुमार जी माहेश्वरी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती श्रीबाई—यह जोड़ी कानपुर की रहने वाली है। श्रीबाई एक वेश्या की पुत्री हैं और भविष्य में पवित्र जीवन बिताने की इच्छा से श्रीरामकुमार जी से विवाह कर लिया है। श्रीमती जी हिन्दी, अङ्गरेज़ी, सङ्गीत तथा शिल्प-कला आदि जानती हैं।

कुमारी बारबरा हलटन। आप अमेरिका के एक महान धनकुबेर की एकमात्र उत्तराधिकारिणी हैं। हाल में ही आपका विवाह एक राजकुमार से हुआ है। यह चित्र उसी विवाह की रजिस्ट्री के समय का है। मिस हलटन विवाह के रजिस्टर पर हस्ताक्षर कर रही हैं।

स्वामी चौखटानन्द*

[श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

प्रेम की धुन

"बेकार न बैठ, कुछ किया कर।" यह धुन हमारे नायक स्वामी चौखटानन्द के सर पर हर वक्त सवार रहती थी। कुछ कर दिखाएँ और नए ढङ्ग से, इसी फ़िक्र में दिन-रात रहा करते थे। मगर बेचारे अक़्ल के बोझ से हैरान थे। कोई चीज़ हो, जहाँ ज़रूरत से ज़्यादा हुई, तहाँ वह वबालजान हो ही जाती है। यही हालत आपकी समझ की थी। जिस बात का पीछा करते उसके पीछे डण्डा लेकर इस बुरी तरह पड़ जाते कि अपनी खोपड़ी की सलामती की भी परवाह नहीं रखते थे। बस दूर ही की सूझा करती, पास की चीज़ कभी दिखाई नहीं पड़ती थी।

आजकल के हिन्दी मासिक पत्रों की आँधी में स्वामी जी भी चौंके और कान फटफटा कर उठ बैठे। आँखें फाड़ के देखा कि लेखक बनने का मौक़ा बड़ा अच्छा है। अगर कहीं इस वक्त लयाक़त अच्छी तरह से फूट पड़ी तो फिर क्या, नाम प्लेग की तरह फैलेगा। यह सोच-विचार कर हिन्दी की बहुत सी किताबें चाट गए। मगर मज़ा न आया। ग़ौर करने पर आपको पता यह चला कि अभी हिन्दी में बहुत सी बातों की कमी है, ख़ास कर उपन्यास और नाटक-रचना में। भाव कहीं जाते हैं और भाषा कहीं। मुहावरा और बोल-चाल का तो कुछ पूछना ही नहीं। ऐसा मालूम होता है कि उपन्यास और नाटक के चरित्र अपनी-अपनी स्पीचों को बोलने से पहले लिख कर रट लिया करते हैं। इसीलिए चाहे वह बालक हों, बेपढ़े हों, चोर या उठाईगीर हों, मगर जब मुँह खोलते हैं, तब व्याख्यान ही झाड़ने लगते हैं और वह भी ऐसे कड़े और टेढ़े शब्दों में कि सुनते ही होश उड़ जाएँ। बस आप समझ गए कि यह सारी गड़बड़ी बनावट की बू ने पैदा कर रक्खी है। जब लेखक दुनिया को बिना देखे दुनिया का हाल लिखने लगें, तब उनकी रचनाओं में असलियत का आनन्द भला कैसे मिलता? इसी को सुधारने के लिये हमारे स्वामी जी कमर कस कर तैयार हो गए और दिल में ठान लिया कि जो कुछ लिखेंगे, उसका पहले ख़ुद तजुर्बा कर लेंगे, तब उस पर लेखनी चलाएँगे। शाबाश!

बात तो इन्हें तुक की सूझी। क्योंकि शकर जिसने ज़बान पर रक्खी ही नहीं, वह मिठास का मज़ा बताना क्या जाने? जिसे असलियत का ख़ुद ही पता नहीं है, वह असलियत की छटा कैसे दिखला सकता है? इसलिए साहित्य के सौभाग्य से आप उसी साइत से असलियत की खोज में पेन्सिल और 'पाकेट-बुक' लिए गली-गली ठोकरें खाने लगे। जहाँ कोई नई बात देखी तहाँ अड़ियल टट्टू की तरह बीच सड़क पर खड़े होकर

---

* लगभग सत्तरह-अट्ठारह वर्ष हुए, मैंने इस उपन्यास को लिखना आरम्भ किया था और इसके अंश उन दिनों के मासिक 'मनोरञ्जन' और 'इन्दु' आदि पत्रों में कुछ निकले भी थे। जिनका अनुवाद भी गुजराती भाषा की 'बीसवीं सदी' नामक पत्रिका में सचित्र प्रकाशित होता था। मगर अवकाशाभाव के कारण मैं इसे उस समय सिलसिलेवार लिख न सका और न इसका विकास ही दिखला सका। अब 'चाँद' के पाठकों की ख़ातिर इसकी बुनियाद फिर नए सिरे से डाल रहा हूँ। —लेखक

झट उसे नोट करने लग जाते। ऐसा करने में एकाध दफ़े आपको ताँगे और मोटर वालों की गालियाँ भी सुनने की नौबत आई। मगर साहित्य के सच्चे अनुराग में आपने इसकी कुछ परवाह न की।

इसी तरह भटकते-भटकते शाम को पार्क में जा पहुँचे। वहाँ आपने एकान्त में एक बेञ्च पर बैठे हुए एक प्रेमी जोड़े को आपस में प्रेमालाप करते हुए ताड़ा। आपने सोचा कि इन लोगों की बातचीत अगर कहीं मैं लिख लूँ, तो प्रेम में लोग कैसी बातें करते हैं, इसका सच्चा हाल मैं जान जाऊँगा। बस, आप जाकर भद से उसी बेञ्च पर बैठ गए। मगर वह लोग इन्हें देखते ही एकदम चुप हो गए। आध घण्टा तक बेचारे मुँह बाए उनके मुँह ताकते ही रहे, मगर उन कम्बख़्तों ने ज़बान तक नहीं हिलाई। तब आजिज़ आकर आपने कहा—"क्यों जनाब, आप लोग अब बोलते क्यों नहीं? आपस में बातचीत किए जाइए। हाँ-हाँ, शौक़ से कीजिए। मैं आप लोगों की बातचीत अख़बार में छपा दूँगा।"

दोनों बिगड़ कर उठ खड़े हो गए और एक तरफ़ चलते बने। यहाँ पाकेट-बुक का सफ़ा साफ़ का साफ़ ही बना रहा।

रास्ते में आपको दो आदमी किसी मामले पर ज़ोरों से बहस करते हुए जाते मिले, जिसका कुछ अंश सुनते ही आप चौंक कर बोल उठे—"आ हा हा! कैसी ज़ोरदार बातचीत है।" यह कह कर आप उनके पीछे हो लिए। उनमें से एक ने उन्हें घूम कर देखा और क़दम बढ़ाया। आप भी लपके। तब वे दोनों एक गली में मुड़ गए। वहाँ भी इन्हें साए की तरह अपने पीछे पाकर वे लोग पलट पड़े। गली से निकल कर उन लोगों ने देखा कि हज़रत दुम की तरह यहाँ भी लगे हुए हैं। तब तो दोनों घबड़ा कर कहने लगे—

"यह कम्बख़्त हमारे पीछे क्यों पड़ा है?"

"कोई सी० आई० डी० है।"

"नहीं जी, यह पाकेटमार मालूम होता है। बुलाओ पुलिस को।"

बेचारे स्वामी जी बड़े सङ्कट में पड़ गए। बड़ी मुश्किल से कान्सटेबिल के चङ्गुल से छूटे। मगर अभी आप घर लौटने की सोच ही रहे थे कि तरकारी मण्डी में दो कुँजड़िनों की लड़ाई देखते ही आप दीन-दुनिया फिर भूल गए। बहुत झख मारने के बाद यह कामयाबी का मौक़ा इन्हें मिला था। क्योंकि इन लड़ाकों की न ज़बान बन्द होने का खटका था और न स्वामी जी से भड़क कर कहीं भागने का। ऐसा मौक़ा भला आप कैसे छोड़ सकते थे। लगे अँधेरे में पाकेटबुक पर अन्दाज़ से सरासर पेन्सिल घसीटने। मगर कहाँ उन लोगों की कतरनी की तरह चलने वाली ज़बान और कहाँ इनकी टटोल-टटोल कर रेंगने वाली पेन्सिल? आख़िर इनसे न रहा गया। एकाएक जोश में आकर बीच में पिल पड़े—

"तुम लोग अजब बेवक़ूफ़ मालूम होती हो। दोनों एक साथ क्यों लड़ती हो। एक-एक करके बोलो तो कुछ समझ में भी आए। हाँ, तुम क्या कहती हो? मगर ज़रा रुक-रुक कर कहो। ख़बरदार, तुम अभी मत बोलना। हाँ-हाँ, कहो-कहो × × ×"

ग़ज़ब हो गया। इन्हें एकाएक बीच में फट पड़ते देख कर पहले तो कुँजड़िनें दङ्ग हो गईं। मगर इनकी बातें सुन कर समझीं कि यह हमारी हँसी कर रहा है। बस, आपस का लड़ना भूल कर दोनों ही इन पर बरस पड़ीं और इस बुरी तरह कि बेचारे को भागने तक का रास्ता न मिला। वह तो न जाने कहाँ से ऐन मौक़े पर इनके चचा खटखटानन्द पहुँच गए, नहीं तो इनके बदन पर कोई कपड़ा साबित नज़र न आता।

इनके चचा साहब वज्र दिहाती और उजड्डपन में तो इनसे भी दो-चार जूते बढ़े हुए थे। लिखने-पढ़ने के नाम पर बस वह अँगूठा ही दिखाते थे। इसलिए उन्हें अपढ़ मूर्ख समझ कर हमारे मिडिल पास स्वामी जी उनके बकने-झकने का कुछ ख़याल नहीं करते थे। मगर इस दफ़े घर पहुँचते-पहुँचते चचा साहब की गालियाँ इतनी बढ़ गईं कि घर की सभी औरतें घबड़ा उठीं और सोचने लगीं कि आज स्वामी जी ने ज़रूर कोई ऐसा काम किया है, जिससे इनकी जान की ख़ैरियत नहीं। मगर स्वामी जी अपनी धुन के पक्के थे। इन्हें इन बातों की परवाह कब थी? चचा बकबक लगाए हुए थे और आप सोच रहे थे कि लेखक को अपने दिल में प्रेम का भी अनुभव कर लेना ज़रूरी है। बिना इसके साहित्य के अखाड़े में लेखनी का काम

नहीं चलता। रचना बिल्कुल फीकी पड़ जाती है। मगर यह सवाल अटका हुआ था कि प्रेम कहाँ और किससे किया जाय। एकबारगी ख़याल आया कि घर में जोरू तो मौजूद ही है। फिर क्या, बाछें खिल पड़ीं। अपना काम का काम, ईश्वर भी ख़ुश और साहित्य की सेवा घाते में। आज तक यह बात इन्हें कभी सूझी ही न थी। ख़ैर, अब भी सबेरा था। सुबह का भूला शाम को घर आ जाय तो उसे भूला नहीं कहते। इसलिए प्रेम करने की पूरी तैयारी करके आप स्त्री के सामने जाकर बैठ गए और लगे धौंकनी की तरह आहें पर आहें भरने। मगर बोले एक लफ़्ज़ भी नहीं।

बीबी बेचारी चचा की बातों से पहले ही से घबड़ाई हुई थी और अब इनका यह रङ्ग देखा तो उसके और होश उड़ गए। परेशान होकर वह बार-बार पूछने लगी कि—"क्या हुआ क्या? आख़िर तुम पर कौन सी ऐसी मुसीबत आ गई है, कुछ बताओ तो।"

स्वामी जी और कस-कस के आहें भरने लगे। मगर ज़बान अब भी बन्द ही रक्खी। क्योंकि दिमाग़ तो इस समय कहने के लिए कोई प्रेम की बात सोचने में लगा हुआ था। आख़िर स्वामी जी को जब कुछ न सूझा तो रो पड़े। स्वामिनी जी को भला अब धैर्य कहाँ? घबड़ा कर वह भी रोने लगीं। चौखटानन्द ने झट स्त्री के पैरों पर सर रख के ज़ोरों से सिसकियाँ लेना शुरू कर दिया, ताकि इस तरह प्रेम का भाव कुछ तो दिल में पैदा हो जाए। उद्योग कुछ ज़्यादा सफल नहीं हुआ। ख़ैर, किसी नाटक के प्रेमी का एक जुमला याद आ गया। आप उसी को गिड़गिड़ा कर कह बैठे—"तुम्हारे लिए मेरी जान जाती है। ईश्वर के नाम पर कुछ तो दया करो। नहीं तो यह अभागा बेमौत मरेगा।"

अब तो स्वामिनी जी को विश्वास हो गया कि स्वामी जी को ज़रूर फाँसी या कालापानी का हुक्म हो गया है या होने वाला है, तभी तो ऐसा कहते हैं, और चचा जी भी इसीलिए इतनी बक-झक लगाए हुए थे। आँसुओं की धारा बह चली। रोते-रोते हिचकियाँ बँध गईं। स्वामी जी ने हाथ पकड़ कर समझाया कि—"देखो, ग़लती कर रही हो। तुम मत रोओ। रोना तो सिर्फ़ मुझी को चाहिए।"

बीबी ने कहा—नहीं, तुम्हीं पर नहीं, बल्कि असल में तो यह मुसीबत मेरे सर है। क्योंकि तुम्हारे बाद मैं भला किसके भरोसे रहूँगी।

स्वामी जी चौंक कर बोले—यह तुम क्या कह रही हो?

बीबी—बिल्कुल सच। तुम चले जाओगे × × ×

स्वामी जी—कहाँ?

बीबी—अभी तुम्हीं ने तो कहा था।

स्वामी जी—क्या कहा था?

बीबी—यही कि फाँसी पर बेमौत मरेंगे।

स्वामी जी—किस हरामज़ादे ने कहा था? बहरी कहीं की। हमारी सारी बनी बनाई भावना बिगाड़ दी।

बीबी दङ्ग हो गई। उसकी समझ में ख़ाक-पत्थर कुछ न आया। इधर स्वामी जी ने फिर रोंधी सूरत बनाई और धीरे-धीरे सिसकने लगे। जब तोंद के भीतर थोड़ी सी भावना फिर तैयार हुई, तो स्त्री की ओर मुड़े और हाथ जोड़ कर कहने लगे—अरी निर्दयी, अब क्यों मुझे इतना सताती है?

बीबी—तुम्हें हो क्या गया है?

स्वामी जी—(बिगड़ कर) अरी कम्बख़्त, इस वक़्त ज़रा झिड़क कर बोल, झिड़क कर। नहीं तो सब चौपट हुआ जाता है।

बीबी—सच बताओ, तुम्हें हुआ क्या है?

स्वामी जी—(रोकर) प्रेम की बीमारी।

बीबी—(घबड़ा कर) क्या? क्या? प्लेग की बीमारी?

स्वामी जी—(अपनी धुन में) हाँ प्यारी!

बीबी बदहवास होकर स्वामी जी की गर्दन और बग़ल टटोलने लगी।

बीबी—कहाँ है? यहाँ तो कुछ मालूम नहीं होता।

स्वामी जी—मालूम कैसे हो, दिल के भीतर है दिल के।

बीबी—यह कौन किसिम का प्लेग है?

स्वामी जी—प्लेग नहीं प्रेम प्रेम।

बीबी—प्रेम! क्या इसमें भी गिल्टी निकलती है?

स्वामी जी—गिल्टी नहीं, गिल्टा निकलता है। उल्लू की पट्ठी कहीं की। घण्टा भर से कह रहे हैं कि देख भावना न बिगड़ने पावे। मगर कम्बख़्त को ज़रा भी

ख़याल नहीं। मैं तो कह रहा हूँ कि मैं तेरी मुहब्बत में बेहाल हूँ और यह हरामज़ादी मेरा गला टटोल रही है।

बीवी ने जो दो-एक दफ़े भावना का नाम सुना और स्वामी जी की उल्टी-सुल्टी कारवाई देखी, तो उसने समझा कि जैसे औरतों पर भवानी आती हैं, वैसे मर्दों पर शायद 'भावना' आते हैं। बस यही सारी आफ़तों की जड़ है। वह चिल्ला कर भागी और बाहर जाकर ख़बर कर दी कि उन पर कोई भूत सवार है। घड़ी में रोते हैं, घड़ी में बिगड़ते हैं। यह सुनते ही सब लोग दौड़ पड़े। कोई हाँडी में मिर्चा जला कर स्वामी जी के मुँह के सामने ले गया। कोई जूता और झाड़ू सुँघाने लपका। स्वामी जी बहुत झल्लाए और पिनपिनाए कि यह क्या वाहियात बात है। इधर इसको डाँटा, उधर उसको मारा। मगर घर में सभी ओझा गुनी थे। लोगों ने इन्हें देखते ही देखते बाँध-छाँद दिया और बचा साहब भक्कोटना लेकर लगे इनसे भूत का नाम क़बुलवाने। भूत न बोला। मगर स्वामी जी की हड्डियाँ चुरमुराने लगीं, ख़ैर जान बच गई। यही बड़ी ग़नीमत हुई। (क्रमशः)

आँसू

[श्रीमती कमलादेवी राय]

आशा की थपकी देकर
अब तक थी जिन्हें सुलाए,
अन्तर्जग के कोने में
पलकों की ओट लगाए।

वे मधुर वेदनाएँ अब
सुधि-अधरों का चुम्बन कर,
आँखों से निकल पड़ी हैं
अव्यक्त लालसा लेकर।

चिर दुख का आलिङ्गन पा
क्रन्दन कर उठा हृदय है,
निर्वाक, शान्त नेत्रों में
घिरता गम्भीर प्रलय है।

मानस उन्मुक्त करों से
सञ्चित निधियाँ बिखराता,
तिरती आँखों की पलकों—
से, मुक्ता-कण बरसाता !

इनमें अतीत का सुख है,
है वर्तमान की पीड़ा,
मेरे सन्तप्त हृदय से
मेरे अभाग्य की क्रीड़ा !

इनमें ही छिपी हुई है
जीवन की चिर अभिलाषा,
उन्मुक्त व्योम में फैले
मेघों-सी घनी निराशा।

दुख मूर्तिमान होकर के
इनमें सोया है मेरा,
मीठा-सा अन्तर-क्रन्दन
करता है यहाँ बसेरा।

अन्तर्ज्वाला पानी बन
बहती रहती है इनमें,
यह छोटी जीवन-नौका
डूबी जाती है जिनमें।

चिर तृष्णामय, नीरस ही
रहने दो मेरा जीवन,
नित का सहचर हो केवल
मीठी पीड़ा की कसकन।

इन आँखों में छाया हो
निशि-वासर सावन का घन,
आँसू की अविरल धारा
बहती रहती हो प्रति छन।

जीने का अधिकार सबको नहीं

पिछले फ़रवरी मास के 'चाँद' में "जीने का अधिकार किसको" शीर्षक एक लेख मेरी ओर से प्रकाशित हुआ था। वह लेख 'युगान्तर', 'सुधा', 'तेज' और 'प्रकाश' आदि कई पत्र-पत्रिकाओं में उद्धृत किया गया था। उसे हिन्दी पाठकों ने बहुत पसन्द किया। मेरे पास बहुत से पत्र उसके सम्बन्ध में आए। कई प्रेमियों ने प्रश्न भी पूछे, जिनका उत्तर मैंने "जीने का मोह" शीर्षक लेख में दिया है, जो जुलाई की 'सरस्वती' में प्रकाशित हुआ है। परन्तु किसी कारणवश वह सम्पूर्ण लेख सरस्वती में नहीं छप सका, इसलिए मेरी हार्दिक इच्छा थी कि मैं ज़रा विस्तार से इस विषय पर और भी प्रकाश डालूँ। ईश्वर ने अनायास ही वह अवसर मुझे दे दिया और मैं बड़ा प्रसन्न हुआ, जब 'चाँद' के सुयोग्य सम्पादक मुन्शी नवजादिकलाल जी ने मेरे पास जून का 'चाँद' भिजवा दिया, जिसमें भाई योहन सुरेन्द्रपाल 'पाल' ने मेरे उस लेख का उत्तर छपवाया है। अब मैं फ़ौरन ही अपने विषय में प्रवेश करता हूँ।

संसार में दो प्रकार के मनुष्य होते हैं, एक सिद्धान्तवादी और दूसरे व्यवहारवादी। सिद्धान्तवादी केवल सिद्धान्त के ही स्वप्न देखते हैं और संसार की ठोस घटनाओं की विवेचना नहीं करते। आज से नहीं, जब से मनुष्य-समाज का सङ्गठन हुआ है, तभी से लोग आदर्शवाद के गीत गाते चले आते हैं और विश्व-बन्धुता के स्वप्न देखते रहे हैं। वेदों में "मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षमताम्"—ऐसे आशय के वाक्य बहुत मिलते हैं। परन्तु इसका यह तो अभिप्राय नहीं कि उस काल के समाज ने विश्व-बन्धुता को पा लिया था। विश्व-बन्धुता का आदर्श बड़ा पुराना है और यह भविष्य में भी आदर्शवादियों के साथ जायगा। परन्तु हमें तो यह देखना है कि मनुष्य का लाखों वर्षों का अनुभव क्या कहता है? उसकी घोषणा यह है :—

The good old plan—
He will have, who has the power,
He will keep who can.

अर्थात्—"पुराना और भला नियम यही है कि जिसके पास शक्ति है, उसी को वस्तु मिलेगी और वही उसे सँभाल सकेगा, जिसमें उसे रखने की शक्ति होगी।" आज सारा संसार महात्मा गाँधी को संसार का सर्वश्रेष्ठ पुरुष घोषित कर रहा है, परन्तु उसी सर्वश्रेष्ठ पुरुष को भारतीय सरकार करोड़ों नर-नारियों की इच्छा के विरुद्ध जेल में बन्द कर देती है। आप उसका क्या कर सकते हैं? क्या है आपके पास शक्ति? अधिकार उसी दम तक सच्चा अधिकार है, जब तक उसकी रक्षा की शक्ति भी आपके पास है। आपके "अधिकार, अधिकार" चिल्लाने से आपको जीने का अधिकार नहीं मिल सकता। दो मामूली अङ्गरेज़ इञ्जिनियरों को सोवियट रूस के अधिकारियों ने बन्द कर दिया था, परन्तु जब ब्रिटिश-सिंह गरजा और उसने अपने दाँत दिखलाए तो रूसी रीछ दब गया और फ़ौरन दोनों अङ्गरेज़ों को छोड़ना पड़ा। भारतवर्ष के तीस करोड़ नर-नारी महात्मा गाँधी को जेल से नहीं छुड़ा सकते, इसीलिए न कि उनके पास शक्ति नहीं है। यदि आज हमारे बाहुओं में भी बल होता, तो क्या हमारे जीते जी कोई बड़ी से बड़ी सरकार भी हमारे प्यारे नेताओं को जेल में बन्द रख सकती? अधिकार की पुकार व्यर्थ है, जब तक कि आपकी हड्डियों में उस अधिकार को लेने की

शक्ति नहीं। संसार में सभी मनुष्य उस शक्ति को नहीं पा सकते। इसलिए शक्तिहीन, आलसी, निकम्मे और भीरु नष्ट करने के योग्य हैं, पालने के योग्य नहीं। जब मानव-समाज दया-धर्म के नाम पर और अहिंसा के बहाने इन निकम्मे पौधों को पालना प्रारम्भ कर देता है, तभी उस समाज की तबाही आती है। हमें समाज में अच्छी नस्ल के बलशाली स्त्री-पुरुष रखने हैं, जो प्रभु के अनन्त ज्ञान की खोज कर सकें और संसार को आगे बढ़ा सकें। बेशक, आप ऐसे अन्धे, लूले, लँगड़ों को, जो उपयोगी बन सकते हैं, लाभदायक बनाइए। मैं उस कार्य के विरुद्ध नहीं हूँ। परन्तु सबसे पहला हक़ नीरोग और सबल पौधों का है। उनका लालन-पालन करने के बाद यदि खाने की सामग्री बच जायगी और हमारे पास समय होगा, तो हम अवश्य ही दूसरे दर्जे के पौधों में से छान-बीन करेंगे, इसी प्रकार तीसरे दर्जे में से। परन्तु जब हमारे पास नीरोग पौधों के लिए ही काफ़ी भोजन नहीं है, तो हम निकम्मे पौधों के पालने में अपनी शक्ति नष्ट क्यों करें? केवल दया के नाम पर ऐसे निकम्मे पौधों में जीने का मोह उत्पन्न करना महान् पाप है। जीना, बज़ाते ख़ुद कोई हक़ नहीं, बल्कि जीने वाले की योग्यता ही उसका हक़ पैदा करती है। जिन मकई के पौधों को कीड़ा लग जाता है, किसान उन्हें फ़ौरन उखाड़ कर फेंक देते हैं, ताकि दूसरे पौधों को भी वही कीड़े न लग जायँ। इसी प्रकार जिन लोगों को प्लेग और चेचक हो जाती है, उन्हें भी नीरोग मनुष्य से अलग कर दिया जाता है। अब अगर राष्ट्र के पास इतना भोजन हो, जिसे वह केवल अपने नीरोग बच्चों को ही दे सकता है, तो मैं यही कहूँगा कि केवल उन्हीं को जीने का अधिकार मिले, बाक़ी सब नाश कर दिए जायँ। मैं विश्व-बन्धुता के नाते भोजन को रोगी और निकम्मे मनुष्यों में नहीं बाटूँगा। क्योंकि उसका परिणाम बड़ा भयङ्कर होगा और नीरोग पौधे भी निर्बल हो जाएँगे। मेरे लिए—"The claim of the race is the claim of religion"—अर्थात्—"नस्ल की रक्षा का हक़ धर्म की सबसे कड़ी आज्ञा है।" हम संसार में किसी उद्देश्य के लिए आए हैं, केवल खाने और मैला करने के लिए नहीं। जो उस उद्देश्य को पूरा नहीं करते, उन्हें जीने का कोई अधिकार नहीं। यूरोप और अमेरिका के राष्ट्र अपने अन्धे, लूले और अपाहिज़ सदस्यों के लिए जो कुछ कर रहे हैं, वह मेरे लिए नया नहीं है। परन्तु उन राष्ट्रों ने भी अभी तक जीवन के इस तत्व को समझना प्रारम्भ नहीं किया। उनके यहाँ अत्यन्त निकम्मे, सुस्त और व्यभिचारी पूँजीपति मज़े से चरते हैं और उन्हें कोई भी अनन्त ज्ञान की खोज में नहीं लगा सकता। मेरे जीवन की फ़िलॉसफ़ी में ऐसे पूँजीपतियों को जीने का कोई हक़ नहीं, जो दिन-रात भोग-विलास, ताश-शतरञ्ज, सिनेमा-थियेटर और गप्पबाज़ी में अपना समय खोते हैं। समाज में बहुत से नियम धर्म के नाम पर ऐसे चला दिए गए हैं, जिनकी वजह से समाज अपने मुख्य उद्देश्य से पीछे हटता चला जाता है। उन ग़लत सिद्धान्तों में से एक यह जीने का मोह है। हम यह समझते हैं कि जिसे हम पैदा नहीं कर सकते, उसे मारने का हमको हक़ नहीं; हालाँकि हमीं उसे पैदा करते हैं। हमारी सन्तान हमारे ही पुरुषार्थ का फल है। हमें उस सन्तान को, यदि वह समाज के लिए हितकर न हो, बलिदान करने को सदा तैयार रहना चाहिए।

आगे चल कर अपने लेख में भाई पाल ने मेरे लेख का आशय बिल्कुल न समझ कर दूसरे ही विषय की चर्चा कर दी है और लगे हाथों हज़रत ईसा मसीह का एक वाक्य भी उद्धृत कर दिया है, जिसका आशय भी आप नहीं समझे। हज़रत ईसा मसीह कहते हैं—"यदि कोई मनुष्य सारे संसार का धन कमा ले और अपनी आत्मा खो दे, तो उसे क्या लाभ?" जिसका आशय यह है कि यदि तुमने दुनिया भर के छल-प्रपञ्च करके पैसा पैदा कर लिया, तो उससे तुमको लाभ ही क्या, क्योंकि इससे तुम्हारी आत्मा तो कलुषित हो गई। तुम अपनी आत्मा की रक्षा सच्चरित्रता और ईमानदारी से ही कर सकते हो। यहाँ केवल नैतिक सिद्धान्तों से अभिप्राय है, मारने और जिलाने का कोई सम्बन्ध इस वाक्य से नहीं। ख़ैर।

अन्त में मैं अपने सब प्रेमी पाठकों से यह निवेदन करता हूँ कि वे पहले मेरे अभिप्राय को भली प्रकार समझ लें। मैं किसी इल्हामी किताब के सहारे मनुष्य का धर्म निश्चित नहीं करता। मैं तो संसार की ठोस घटनाओं को सामने रख कर और मनुष्य के अनुभव से

उसे तोल कर सत्य की परख करता हूँ। इसलिए मैं फिर बलपूर्वक यही कहता हूँ कि संसार में जीने का अधिकार सबको नहीं और सब कभी भी नहीं जी सकेंगे, चाहे राम-राज्य हो चाहे ईसा-राज्य। प्राकृतिक नियम अटल हैं, वे अपना काम बराबर करते चले जायँगे। हमें परिस्थितियों को समझना चाहिए। देश-काल देखना चाहिए और अपने इर्द-गिर्द की हालतों को तोलना चाहिए और तब अपना कर्तव्य निश्चित कर आगे बढ़ना चाहिए। सदा चैतन्य और जागरूक रहिए और प्रत्येक मिनिट को क़ीमती समझिए। जो भी ज्ञान आपको मिल सकता है, उसे प्राप्त करने में कभी न चूकिए। जितना अधिक आप समाज के लिए उपयोगी होंगे, उतने ही आप सक्षम बनेंगे और उतना ही अधिक आपको जीने का अधिकार प्राप्त होगा।

—स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

❀ ❀ ❀

रूस में स्त्रियों के अधिकार

ज़ार के शासन-काल में स्त्रियों की अवस्था

कुछ वर्ष पहले रूस में स्त्रियों की अवस्था ऐसी ही थी, जैसी आजकल भारतवर्ष में है। बोलशेविक क्रान्ति ने जब रूस का कायापलट कर दिया, तब स्त्रियों के भी भाग्य जागे। ज़ार के शासनकाल में स्त्री को कोई भी अधिकार प्राप्त न था। विवाह के पूर्व यदि वह पिता की पुत्री थी, तो विवाह के बाद वह पति की पत्नी बन जाती थी। विवाह के समय उसे प्रेम और आज्ञा-पालन का पाठ पढ़ाया जाता था। उसके अधिकारों में कोई अन्तर नहीं आता था। वह केवल घर में काम-काज करने वाली लौंडी समझी जाती थी। बहुधा उस पर मार भी पड़ती रहती थी। जायदाद पर उसका कोई अधिकार नहीं था। कोई उच्च पद प्राप्त करने का अधिकार उसे नहीं था। जीवन के किसी भी क्षेत्र में उसे उत्तरदायित्व का कोई अधिकार नहीं था।

स्त्रियों में परिवर्तन

समय के साथ रूस की स्त्रियों में भी परिवर्तन आया। साम्यवाद ने स्त्रियों को भी समानता का दर्जा दिया। सबसे प्रथम लेनिन और उसके साथियों ने स्त्रियों को वह अधिकार दिया, जिसका उन्होंने कभी स्वप्न में भी ख़याल नहीं किया था। राजनीति और सामाजिक क्षेत्रों में भी स्त्रियों को पुरुषों के बराबर ला बैठाया गया। आज वे सरकार के बड़े-बड़े कामों में पुरुषों से कन्धे भिड़ा कर चलती हैं। बड़े से बड़े पद उनके लिए खुले हैं। आज वे बड़े-बड़े कमीशनों की सदस्याएँ होती हैं और बड़े-बड़े व्यापार चलाती हैं।

स्त्री कार्यकर्त्रियाँ

रूस में आज १,२०,००० स्त्रियाँ ऐसी हैं, जो सरकारी या लोगों के खेतों का प्रबन्ध करती हैं। १८५ स्त्रियाँ ऑल यूनियन सेन्ट्रल और ऑल रशियन सेण्ट्रल एक्जीक्यूटिव कमेटी की सदस्या हैं। कम्यूनिस्ट पार्टी के कुल तीन लाख सदस्य हैं। उनमें स्त्रियों की संख्या ५० हज़ार के लगभग है। यही नहीं, काम करने वाली स्त्रियों की संख्या दिन-दिन बढ़ रही है। १९२३ में ४,०४,२०० स्त्रियाँ फ़ैक्टरियों तथा दूकानों में काम करती थीं, परन्तु १९३२ में उनकी संख्या १७,२०,७०० हो गई। इस प्रकार प्रत्येक कार्य में स्त्रियों की संख्या बढ़ रही है।

स्कूलों में स्त्रियों की संख्या-वृद्धि

रूस में स्त्रियों को सब प्रकार के काम सिखलाने के स्कूल हैं। गत महायुद्ध के बाद से पुरुषों के स्कूलों में स्त्रियों का प्रवेश भी होने लगा। स्त्रियों ने भी इस रियायत से पर्याप्त लाभ उठाया। १९२९ में स्त्री विद्यार्थियों की संख्या ६,८०० थी। १९३१ में उनकी संख्या ४७,७०० हो गई। इसी प्रकार प्रत्येक स्कूल में स्त्रियों की संख्या बढ़ी। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार १९३२ में ८० लाख स्त्रियों ने लिखना-पढ़ना सीखा।

इससे स्पष्ट है कि रूस की स्त्रियों में एक साथ बड़ी जागृति हुई। हर एक क्षेत्र में उन्होंने काफ़ी उन्नति की।

स्त्रियों में फ़ौजी शिक्षा

कम्यूनिस्ट पार्टी ने स्त्रियों की अवस्था को सुधारने का बड़ा यत्न किया। स्त्रियों के लिए उन्होंने विशेष पत्रिकाएँ निकालीं, जिनमें उनके सुधार-सम्बन्धी बातें रहती थीं। ८ मार्च १९३३ को मॉस्को में "अन्तर्राष्ट्रीय स्त्री-दिवस" मनाया गया। उसमें १२ स्त्रियों को
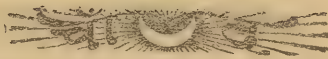
लेनिन की सेना के समान सजाया गया और १७ को लाल झण्डे वाले मज़दूरों के साथ। सोवियट सरकार न केवल स्त्रियों को अन्य क्षेत्रों के लिए तैयार करती है, बल्कि उन्हें फ़ौजी शिक्षा भी दी जाती है। फ़ौजी शिक्षा अनिवार्य नहीं है, फिर भी यह यत्न किया जाता है कि अधिक से अधिक संख्या में स्त्रियाँ अपनी छुट्टी के दिन स्त्रियों के फ़ौजी कैम्पों में बितावें। वहाँ उन्हें फ़ौजी क़वायद और दूसरी बातों की शिक्षा दी जाती है।

इन कैम्पों में रहने का ख़र्च भी बहुत थोड़ा है। दो हफ़्ते के लिए केवल १ डालर और ५० सैण्ट देने पड़ते हैं। वहाँ उनको बार-बार बताया जाता है कि पूँजीपति राष्ट्र रूस से सदा लड़ने को तैयार रहते हैं। यह स्त्रियाँ जब घर वापस जाती हैं, तो इन्हीं शब्दों को दोहराती हैं।

रूसी स्त्रियों का आदर्श

रूसी स्त्रियों का आदर्श अङ्गरेज़ महिलाओं के आदर्श से सर्वथा भिन्न है। पश्चिमी सभ्यता का उन पर कोई प्रभाव नहीं। वे कविता, कला और सौन्दर्य की उपासना में मस्त होकर अपनी गृहस्थी को नहीं भूल जातीं। वे अपने काम का सदा ध्यान रखती हैं।

सन्तान

रूस में विवाह कोई धार्मिक बन्धन नहीं है। बच्चा पैदा होते ही देश का समझा जाता है और देश जैसा चाहता है, उसे वैसे ही शिक्षा-दीक्षा देता रहता है। माता-पिता पर उसकी कोई ज़िम्मेदारी नहीं होती। उसका पालन-पोषण सरकार करती है।

विवाह

१९१८ में विवाह की रजिस्ट्री करानी पड़ती थी। परन्तु १९२७ में वह नियम भी रद्द कर दिया गया। तब से विवाह की रजिस्ट्री कराना या न कराना एक बराबर है। रजिस्ट्री कराओ या न कराओ, सन्तान जायज़ समझी जाती है। रजिस्ट्री से केवल सरकार को सुभीता होता है। वह आसानी से उन पिताओं से कर वसूल कर सकती है, जो अपने बच्चों का पालन नहीं करते। इसलिए रूस के पारिवारिक जीवन में बड़ा परिवर्तन आ गया है, जिसकी मर्ज़ी हो जिससे शादी कर ले। शादी की कोई रस्म नहीं, रिवाज़ नहीं। अदालत में रजिस्ट्री कराने की भी कोई आवश्यकता नहीं। बच्चे पैदा होने में कोई क़ानूनी रोक-टोक नहीं। बच्चे होंगे उन्हें सरकार के सुपुर्द कर दो। माँ-बाप पर उनका कोई बोझ नहीं। यह एक नया आदर्श है, जो संसार के सामने आया है। देखें, इसका क्या प्रभाव अन्य देशों पर पड़ता है!

—जगदीशचन्द्र शास्त्री

(सहकारी सम्पादक "अर्जुन")

❀ ❀ ❀

इटली के क़ैदी और क़ैदख़ाने

राज-हठ और प्रजा-हठ में सदा से सङ्घर्ष होता चला आया है। शासन जब निरङ्कुश हो जाता है, जब उसका उद्देश्य प्रजा का रक्त-शोषण ही हो जाता है, उस समय प्रजा शासन के विरुद्ध खड़ी हो जाती है और शासकों को शासन-तन्त्र बदलने के लिए, उसमें सुधार करने के लिए बाध्य करती है। कभी-कभी शासन की प्रणाली और सामाजिक नियमों के सम्बन्ध में शासक और शासित अथवा प्रजा के ही दो दलों में भिन्न दृष्टि-कोणों को लेकर सङ्घर्ष हो जाता है और उस समय जिनके हाथों में शासन की बागडोर अथवा शक्ति रहती है, वे अपने विरोधियों को, अपने ही देश-भाइयों को बड़ी बेरहमी और बड़ी क्रूरता से कुचलने का प्रयत्न करते हैं। इस समय संसार के प्रायः सभी देशों में एक न एक प्रकार का सङ्घर्ष चल रहा है, किन्तु कहीं-कहीं तो राजसत्ताधारियों ने विरोधियों को परास्त करने के लिए दमन की इति कर दी है। इसी प्रकार की विषमताओं के युग से होकर गुज़रने वाले देशों में से इटली देश में वर्तमान शासन-तन्त्र के विरोधियों का किस निर्दयता के साथ दमन हो रहा है, शासन के सूत्रधार मुसोलिनी ने विरोधी दल के विद्वान और योग्यतम प्रतिष्ठित व्यक्तियों को जेलों में किस प्रकार ठूँस रक्खा है और जेलों में उनके साथ कैसा दुर्व्यवहार किया जा रहा है, उसी का संक्षिप्त परिचय पाठकों को दिया जा रहा है।

इटली का शासन इस समय एकतन्त्रवादी (फ़ैसिस्ट) दल के हाथों में है। इस दल के प्रवर्तक मुसोलिनी हैं और वही एकतन्त्र रूप से इटली का शासन कर रहे हैं। यद्यपि इटली के हिज़-मैजेस्टी किङ्ग विद्यमान हैं, उनकी एक राज-सभा है और मुसोलिनी कहने को प्रधान मन्त्री हैं, किन्तु वास्तव में मुसोलिनी ही इटली के सर्वेसर्वा हैं, डिक्टेटर हैं और देश का शासन उन्हीं की इच्छा के अनुसार होता है। मुसोलिनी पिछले दस वर्षों से इस प्रकार से इटली का शासन कर रहे हैं। फ़ैसिस्ट दल के शासन-काल से ही नहीं, उसके जन्म-काल से उसके विरोधी डिमोक्रैटिक और सोशलिस्ट, दो दल हैं। फ़ैसिस्ट दल और मुसोलिनी ने शासन-सूत्र हाथ में लेने के बाद किस अमानुषिकता और नृशंसता के साथ उपर्युक्त दोनों दलों को दबाया है, इसका एक काला इतिहास है, जिसका वर्णन करने के लिए न उपयुक्त अवसर है और न स्थान ही। किन्तु यूरोप की गर्वीली सभ्यता का अनुगामी इटली का शासक-वर्ग इस बीसवीं सदी में अपने ही रक्त-मांस के भाइयों के साथ जेलों में कैसा बर्बरतापूर्ण व्यवहार कर रहा है और वहाँ की जेलों की क्या दशा है, इसका वर्णन कर देना आवश्यक है।

फ़ैसिस्ट दल के शासनारूढ़ होने के बाद सन् १९२२ से १९२६ तक डेमोक्रैटिक और सोशलिस्ट दलों का निरङ्कुशता के साथ दमन किया गया था। उन दिनों फ़ैसिस्ट दल वाले विरोधी दलों के लोगों का हरण कर लेते थे, लाठियों और बन्दूक़ों के कुन्दों से उन्हें आहत करते थे और कभी-कभी तो आम सड़कों पर रिवाल्वरों की गोलियों से उनके प्राण ले लेते थे। चार वर्षों तक यह धींगा-धींगी रही, किन्तु सन् १९२६ में नूतन सरकार का दबदबा सर्वत्र स्थापित हो जाने पर विशेष क़ानून बनाए गए और उन क़ानूनों की आड़ में विरोधियों को गिरफ़्तार कर राजनीतिक क़ैदियों के रूप में जेलख़ानों में रक्खा जाने लगा, लम्बी-लम्बी सज़ाएँ दी जाने लगीं और द्वीपान्तरवास का भी दण्ड दिया जाने लगा। इस प्रकार सन् १९२६ से लेकर १९३२ तक, अर्थात् ६ वर्षों के अन्दर दस हज़ार से अधिक विरोधी गिरफ़्तार किए गए और विशेष अदालतों द्वारा उन्हें कड़ी क़ैद की सज़ाएँ दी गयीं। इन दस हज़ार में वे 'आतङ्ककारी' और उपद्रवी शामिल नहीं हैं, जो वर्ष-भर में फ़ैसिस्ट उत्सवों के अवसर पर अनेक बार हज़ारों की संख्या में गिरफ़्तार किए जाते हैं और उत्सवों की समाप्ति के बाद छोड़ दिए जाते हैं।

जेलों में यातनाएँ

कहते हैं कि इटली की जेलें यूरोप के अन्य देशों की जेलों के मुक़ाबले में सबसे निकृष्ट हैं। इटली की जेलों में क़ैदियों और विशेषतः राजनीतिक क़ैदियों को असह्य यातनाएँ पहुँचाई जाती हैं। यातनाएँ कैसी होती हैं और वहाँ के जेलख़ाने कैसे होते हैं, इस सम्बन्ध में कार्लो ऐसेली नामक एक भुक्तभोगी इटैलियन राजनीतिक क़ैदी ने इङ्गलैण्ड के 'मैनचेस्टर गार्जियन' नामक पत्र में एक पत्र प्रकाशित कर अपने कुछ अनुभव लिखे हैं। उन्होंने लिखा है कि इटली में विचाराधीन क़ैदियों को भी, जिनके मुक़दमे महीनों और कभी-कभी सालों चलते हैं, एकान्त में रक्खा जाता है, पुस्तकें या समाचार-पत्र भी नहीं दिए जाते और भोजन के लिए केवल रोटी तथा एक उबाल का शोरबा दिया जाता है। सैकड़ों मामलों में अमानुषिक रूप से शारीरिक यातनाएँ दी जाती हैं, पैर के नाख़ून नुचवा लिए जाते हैं। खौलता हुआ पानी तलुवों पर छोड़ा जाता है, रबर के हथौड़ों से छातियों पर चोटें लगवाई जाती हैं और जिरह के समय लाठियों से पिटवाया जाता है। राजनीतिक क़ैदियों को काग़ज़, क़लम, पेन्सिल, पुस्तकें आदि कुछ नहीं दी जातीं। पिछली शरद ऋतु में बहुत से क़ैदियों को कई महीने के लिए तनहाई में रक्खा गया था और खाने के लिए सूखी रोटी तथा पानी दिया जाता था। जिन लोगों ने जेल की शक्ल कभी नहीं देखी है, उनकी दृष्टि में तनहाई की बातें कदाचित कुछ न समझ पड़ें। किन्तु उक्त इटैलियन का कहना है कि मैं अपने निजी अनुभव से उन्हें विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि जेल के एकान्तवास में लिखने और पढ़ने की स्वतन्त्रता न देना नैतिक यातना है और वह शारीरिक यातना से भी कहीं बढ़ कर है। जिन टापुओं में कालेपानी के क़ैदी भेजे जाते हैं, वहाँ की दशा भी अच्छी नहीं है। एक द्वीप में ६०० क़ैदी हैं, जिनमें बहुत सी स्त्रियाँ भी हैं। इन क़ैदियों के साथ भीषण दुर्व्यवहार किया जा रहा है।
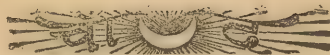
उसके लिए बहुत चीत्कार मचाया जा चुका है। ज़मीन और आसमान के कुलाबे एक किए गए, किन्तु अधिकारियों के कानों पर जूँ नहीं रेंगी।

पिछले नवम्बर मास में शाही घोषणा के अनुसार प्रायः २० हज़ार क़ैदी छोड़े भी गए थे, किन्तु इनमें राजनीतिक क़ैदियों की संख्या केवल ५०० ही थी और वे भी हलकी तथा कम दिनों की सज़ा के क़ैदी थे। डेमोक्रैटिक और सोशलिस्ट दलों के प्रायः सभी नेता जेलों में ही बन्द रक्खे गए और शाही घोषणा के अनुसार वे नहीं छोड़े गए। इन लोगों को १५ से लेकर ३० वर्ष तक की सज़ाएँ दी गई हैं। कितने ही क़ैदी आठ-आठ और दस-दस वर्ष की सज़ा बिता भी चुके हैं, कितने ही निराश होकर जेलों में ही मर गए हैं और कितनों ही को राजयक्ष्मा, तपेदिक़ आदि रोग लग गए हैं। ग्रैमसी नामक एक कम्यूनिस्ट दल का सुप्रसिद्ध नेता गत सन् १९२७ से जेल में पड़ा सड़ रहा है और शाही घोषणा के अनुसार सज़ा घट जाने पर भी वह सन् १९४० तक छूट सकेगा। कितने ही शाही घोषणा के अनुसार मुक्त क़ैदी जेलों से ही सीधे कालेपानी के टापू भेज दिए गए और घर लौटने की उनको नौबत ही नहीं आई।

यह है, संक्षेप में, यूरोप के एक सुसभ्य देश के क़ैदियों और क़ैदख़ानों की दशा और सत्ताधारी शासकों के निर्मम अत्याचार, जिनके बल पर वे शासन कर रहे हैं। परन्तु वहाँ का प्रजा-हठ भी मुसोलिनी के दस वर्षों के लौह-शासन के बाद भी मन्द नहीं पड़ा है और एक न एक उपद्रव नित्य ही खड़ा रहता है।

—रामकिशोर मालवीय

❀ ❀ ❀

अद्भुत स्वप्न

उस दिन एक मित्र के यहाँ प्रीति-भोज का निमन्त्रण होने के कारण कुछ अधिक छन गई थी। इसी से जिस समय ख़ोमचे वाले ने खट्टे, मीठे, चरपरे, आदि अनेक तरह के पदार्थों के दोने एकत्रित मित्र-मण्डली के सामने रखने शुरू किए, उस समय मेरे मुँह में अनायास ही पानी का सोता उमड़ पड़ा और साथ ही पेट के रग-पट्ठों में भी ऐंठन सी होने लगी। फिर भी निमन्त्रित मित्र-मण्डली का नम्बर अधिक और ख़ोमचे वाले खूसट के सुस्त होने से मुझे कुछ देर तक मन को मार, दोनों से मुँह तक सरपट दौड़ लगाने की इच्छा वाले हाथ को रोक रखने के लिए जेब के हवाले करना पड़ा। परन्तु मेरी दोनों आँखें अड़ियल टट्टू की तरह दोनों पर ही अड़ी रहीं।

हमारी इस मण्डली में एक विलायती हिन्दुस्तानी भी थे; जो लन्दन शरीफ़ में हिन्दुस्तानी आचार-विचार का क्रिया-कर्म करके हाल ही में भारत लौटे थे। यद्यपि अपने ही मुँह मियाँ-मिट्ठू बनना अनुचित समझ, उन्होंने आज तक कभी अपने मुख से अपने इस धर्म-ऋण से उऋण होने का बखान नहीं किया था, तथापि उनका मातमी मुख और उस पर डाढ़ी-मूँछ का अभाव ही इसके पर्याप्त प्रमाण थे। आपका 'नख से शिख' तक का बनाव-शृङ्गार तो 'टोडी बच्चे' का सा ही था; परन्तु आपका कर्म-लेख लिखने के समय विधाता की दावात उलट जाने अथवा आपके मर्त्यलोक में पदार्पण करने के वक्त अफ़्रीका की गर्मी या कृष्णसागर के जल-वायु का असर हो जाने से आपका साँवला-सलोना सफ़ाचट मुख पाउडर की पुताई से भी अपनी असलियत छोड़ने को तैयार न था।

ख़ैर, किसी तरह राम-राम कर, मुँह में स्थित दाँतों और दोनों में स्थित पदार्थों के बीच का युद्ध अभी आरम्भ हुआ ही था और जीभ-रूपी चण्डी ने दाँतों द्वारा कुचले गए पदार्थों का रस पान करने के लिए अपना विकट ताण्डव शुरू किया ही था कि हमारे वे नर-नारी-रूपधारी अर्ध-विलायती मित्र न जाने क्या देख कर एकाएक भड़क उठे और लगे विलायती सफ़ाई और खान-पान की प्रशंसा के साथ-साथ हिन्दुस्तानी आचार-विचार और आहार की निन्दा करने। यद्यपि उनके इस अनर्गल आलाप से विजया की हरियाली और उत्तमोत्तम भोज्य-पदार्थों की सरसता में शुष्कता और नीरसता छा गई और वहाँ पर उपस्थित अन्य मित्र इसे मिर्च महारानी की महिमा समझ उन्हें थोड़ा सा मधुर पदार्थ मुख में डाल लेने का उपदेश देने लगे, तथापि अपने राम ने तो सामने रक्खी अन्नदेवता की अनेक प्रकार की सुहावनी मूर्तियों

को भक्ति-भाव से मुख के मार्ग द्वारा उदर-मन्दिर में प्रतिष्ठित करना ही अपना मुख्य कर्तव्य समझा। भला एक धर्मप्राण हिन्दू के सामने यदि कोई उसके इष्टदेव की मूर्ति का अनादर करने को उद्यत हो जाय, तो क्या उसका पहला काम उन मूर्तियों को सुरक्षित स्थान में पहुँचाना नहीं होगा?

अस्तु, जिस किसी तरह मैं अपने कर्तव्य को पूर्ण कर डार्विन के मतानुसार स्त्री और पुरुष के बीच के उस जीव को कोसता हुआ घर आकर पड़ रहा। परन्तु थोड़ी ही देर में मुझे ऐसा भान होने लगा, जैसे मेरी 'पीनियल ग्लाण्ड' ने उभर कर तीसरे नेत्र का रूप धारण कर लिया है और मैं त्रिनेत्र होकर प्रकृति के प्रत्येक रहस्य को देखने में समर्थ हो रहा हूँ। इसी समय मुझे भोजन के समय की घटना का ख़याल आ गया। परन्तु अभी मेरा ध्यान उधर गया ही था कि मैंने देखा, एक विशाल मञ्च पर खड़े धन्वन्तरि महाराज अपने सामने खड़े पास्चर आदि यूरोप और अमेरिका के अनेक वैज्ञानिकों और लब्धप्रतिष्ठ डॉक्टरों को डाँट-फटकार रहे हैं और कह रहे हैं—"जब तुम स्वयं मनुष्य-शरीर को रोगों का सामना करने में सशक्त बनाने के लिए उन रोगों के कीटाणुओं को इन्जैक्शन द्वारा उसमें प्रविष्ट करना आवश्यक समझते हो, तब तुम्हारा ग़रीब भारतवासियों के रहन-सहन और आहार-विहार की प्रथा पर उँगली उठाना क्या अनुचित नहीं है? क्या आँख और समझ रहते भी तुमने कभी इस तरफ़ ध्यान दिया है कि जिस तरह यूरोप और अमेरिका के परिवारों में किसी एक के प्लेग, हैज़ा, चेचक, मात्रा-ज्वर आदि संक्रामक रोगों से आक्रान्त हो जाने पर उसके सारे ही कुटुम्बी नेह-नाता तोड़ उससे दूर भागते हैं, उस तरह काम पड़ने पर भारतवासी क्यों नहीं भागते? जिस तरह तुम्हारे देश में कृमि और आम के रोगी अपने जीवन से हताश हो जाते हैं, उस तरह हमारे देशवासी क्यों नहीं होते? क्या तुम्हारा यह कर्तव्य न था कि तुम लोग भारतवासियों की बुराई करने के पूर्व इन बातों के कारणों का पता लगाते? परन्तु तुमने तो ग़रीब भारत के तिल के समान दोष को भी ताड़ के समान बना कर बिना प्रयास ही वाह-वाही लूटने का ठेका ले रक्खा है। यदि वास्तव में ही तुम लोग भारतवासियों की खिल्ली उड़ाने का ख़याल छोड़ विचार से काम लो तो तुम्हें उनके वैद्यक-शास्त्र में ही नहीं, उनके धर्मशास्त्र तक में आचार-विचार और खान-पान के विषय में अनेक अमूल्य उपदेश भरे मिलेंगे। परन्तु तुम तो सब पर अपना ही रङ्ग चढ़ाने पर तुले हो। तुम्हें भारतवासियों की वर्तमान परिस्थिति पर विचार करने का तो समय ही नहीं है। फिर भी यदि सोच कर देखोगे तो तुम्हें मालूम होगा कि तुम्हारे धनाढ्य देशवासी रहन-सहन की सफ़ाई और खान-पान की चुना-चुनी की 'अति' के कारण ही संक्रामक और कृमि, आम आदि रोगों का सामना करने की सामर्थ्य खो बैठे हैं। परन्तु ग़रीब भारतवासी इस 'अति' से दूर रह कर आज भी इस दोष से मुक्त हैं। परिस्थिति के कारण भारतवासियों को नित्य ही अनेक संक्रामक रोगों के कीटाणुओं से सङ्घर्ष करना पड़ता है। इसीसे उनके शरीर में इन कीटाणुओं को मारने के लिए कीटाणु-नाशक रस बनता रहता है। इसी तरह मिर्च-मसाले के सेवन से भी उदर में पहुँचने वाले कृमि आदि पूरी तौर से बढ़ने के पूर्व ही यमलोक को पहुँच जाते हैं। याद रहे, प्रकृति का नियम है कि अरक्षित आदमी की रक्षा वह स्वयं करती है और सुरक्षित पर मौक़ा मिलते ही आक्रमण कर बैठती है। यदि ऐसा न होता तो शहरों में सफ़ाई का काम करने वाली जातियाँ आज से बहुत समय पहले ही समाप्त हो गई होतीं और उनके अभाव में फैली हुई गन्दगी के कारण संक्रामक रोगों के कीटाणुओं द्वारा यह सारा संसार भी सूना पड़ा मिलता।

"शायद अब तुम्हारी समझ में आगया होगा कि यूरोप और अमेरिका के धनाढ्य देशों में जो काम आज-कल करोड़ों रुपये ख़र्च करके तैयार किए गए कीटाणु-विष-नाशक इन्जैक्शन करते हैं, वही काम ग़रीब भारत ने प्रकृति को सौंप रक्खा है। परन्तु इतना होने पर भी तुम्हें अपनी शक्ति पर पूर्ण विश्वास न होने से तुम अपने रोगाक्रान्त प्रियतम कुटुम्बी से भी दूर भागते हो; लेकिन भारतवासी प्रकृति के नियम को अटल समझ अपने पड़ोसी तक की सेवा-शुश्रूषा करने से मुँह नहीं मोड़ते।"

इसी समय धन्वन्तरि महाराज ने पास ही खड़े ऐडवर्ड जीनर की तरफ़ इशारा करके कहा कि "क्या इसने

चेचक के टीके का रहस्य प्रकृति से ही नहीं सीखा है और क्या इस कृत्रिम विधि के प्रचलित होने के पूर्व इस काम को स्वयं प्रकृति नहीं करती थी? हम अपने इस कथन के प्रमाण में संसार के मनुष्येतर प्राणियों को उपस्थित कर सकते हैं; जो आज भी अपने व्रणों को चाट कर बिना इञ्जेक्शन के ही अपने शरीर में विष-नाशक रस उत्पन्न कर लेते हैं और रोगों से मुक्त हो जाते हैं।

"फिर अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि तुम्हारे ही भाई होमियोपैथ तुम्हारी ही इस धारणा को निरर्थक सिद्ध करते हैं। उनका मत है कि शरीर में इस प्रकार वाह्य-द्रव्यों (Foreign matters) का प्रवेश कराने से रोग का प्रकोप कुछ दिन के लिए भले ही रुक जाय, परन्तु कालान्तर में वही रोग और भी भयङ्कर रूप से अथवा किसी अन्य रूप से अवश्य ही प्रकट होगा। इसके अलावा तुम लोगों का करोड़ों रुपया तो शहरों में बड़े-बड़े अस्पताल बनवाने और व्यर्थ के आडम्बर रचने में ही ख़र्च हो जाता है। उससे ग्रामवासी उन कमाऊ पूतों का, जिनकी पसीने की कमाई से ही आज तुम इस लायक़ बने हो, कुछ भी उपकार नहीं होता। उनकी रक्षा का भार तो आज भी प्रकृति को ही करना पड़ता है। ऐसी हालत में तुम्हारे अस्पतालों के ये विशाल भवन तुम्हारी अपने अन्नदाताओं के प्रति प्रदर्शित कृतघ्नता के मूर्तिमान स्मारक ही हैं।

"यदि इच्छा हो तो हाल ही में ऐग्रीकलचरल कमीशन के सामने दिए अपने ही भाई पञ्जाब के डाइरेक्टर ऑफ़ पब्लिक हैल्थ के वक्तव्य और अमेरिकावासी डॉक्टर ऐल्फ्रेड पी० स्कोल्ज की लिखी 'Defective sight and how to cure it' नामक पुस्तक को पढ़ कर भी तुम अपना सन्देह निवृत्त कर सकते हो।"

धन्वन्तरि के इस कथन को सुन सामने खड़े सारे ही श्रोताओं ने लज्जा से अपना-अपना मुख नीचा कर लिया। यह देख मुझसे शान्त न रहा गया और मैं विजयोल्लास से फूल कर ताली बजाने लगा। परन्तु इतने ही में एकाएक मुख पर पड़े शीतल जल के छींटों से मैं चौंक पड़ा। यद्यपि एक बार तो ऐसी धृष्टता करने वाले पर बड़ा ही क्रोध आया, परन्तु जब सामने खड़ी श्रीमती जी को, मुझे विजया से विक्षिप्त हो ताली पीटते जान, जल के छींटे मारते देखा, तो सारा आनन्द ही किरकिरा हो गया। —'मौजी'

❀ ❀ ❀

जीवन और मृत्यु

युवकों और दार्शनिक विचारों से दूर भागने वाले पाठकों के लिए ऐसे विषय प्रायः रुचिकारक नहीं होते। साधारण मनुष्य जल की सतह पर दृष्टि डालते हैं, वे बुलबुले देखते हैं; परन्तु जिस वायु या जिन कारणों से बुलबुला उत्पन्न हुआ, उसका विचार नहीं करते।

जीना भला है, जीने में सुख-दुख है; परन्तु जीने-जीने में भेद है। विज्ञान-शास्त्र (Science) के ज्ञाता की बुद्धि का परिचय उस धातु से किया जाता है, जिसे वह भिन्न-भिन्न द्रव्यों के संयोग से तैयार करता है। इसी तरह मृत्यु भी मनुष्य के जीवन की परीक्षा है। महान आत्माओं के जीवन, उनकी मृत्यु से पहिचाने जाते हैं। मृत्यु एक निबन्ध है, जो मनुष्यों के जीवन भर के कार्यों का फल प्रदर्शन करता है। किसी सत्पुरुष के जीवन को जानना चाहो, तो उसके जीवन-पर्यन्त के कार्यों की पड़ताल करो। परिणाम की सफलता में पुरुषार्थ का लाभ ज्ञात होता है। जो सेनापति युद्ध में विजयी हुआ, यशस्वी बना, और अन्त में रणक्षेत्र से प्राण बचा कर भाग निकला और परास्त होगया, उसका सारा यश अपयश में बदल जाता है। हम अपने सामने सैकड़ों मनुष्यों को देखते हैं, जो किसी समय उच्च कोटि के धर्मात्मा थे, किन्तु मोह, लोभ तथा काम के भँवर में पड़ कर गिर गए। अब उनके सद्गुणों को भूल कर भी कोई याद नहीं करता। जहाँ मनुष्य ने जीवन-सुधार पर दृष्टि डाली और छल-कपट को दूर किया, वहाँ सत्य का प्रकाश होने लगता है। जिस मनुष्य ने दुराचार, दुर्व्यसनों और कुसंस्कारों में समय खोया है, वह मृत्यु के समय शान्तचित्त और वीत-शोक नहीं हो सकता। पाप और कामनाओं के चित्र उसके सामने आते हैं, और उसके हृदय को कम्पायमान करते हैं। वह अपने जीवन के कुसंस्कारों को स्मरण कर घबराता और चिल्लाता है। यदि तुम आनन्दपूर्वक मरने

की विद्या सीखना चाहते हो, यदि तुम्हें यशस्वी और प्रतापी बनने की उत्कण्ठा है, तो मरने के पहले अपनी बुराइयों को मार दो। बुराइयों के दूर होते ही मानसिक शक्तियाँ शुद्ध होने लगेंगी। छल-कपट दूर हो जायँगे। सत्य में अनुराग और श्रद्धा उत्पन्न होगी। पाप में घृणा और अश्रद्धा के भाव उठेंगे। सत्याभिमानी, सत्यपरायण, सत्यवादी बनने से जगत आनन्दमय प्रतीत होगा। वही मनुष्य आनन्द में है, जिसने मृत्यु के आने के पहले ही जीवन के कार्यक्रम को समाप्त कर लिया है। उसके लिए जब मृत्युकाल उपस्थित होता है, तो मरने के सिवाय उसके पास और कुछ कार्य ही नहीं होता। वह विलम्ब की कदापि कामना नहीं करता, क्योंकि अब उसे समय की आवश्यकता नहीं रही। मृत्यु से मत भागो, क्योंकि यह दुर्बलता का चिन्ह है। मृत्यु से भयभीत मत हो जाओ, क्योंकि तुम्हें ज्ञात नहीं कि यह क्या वस्तु है? सृष्टि का नियम ही है, जो "बनेगा सो बिगड़ेगा।" जो कुछ निश्चित रूप से तुम्हें ज्ञात है, वह यह है कि मृत्यु से तुम्हारे दुःखों का अन्त होगा।

स्वप्न में भी ख़याल न करो कि अधिक दिन जीने में अधिक प्रसन्नता होगी। जो समय सब से उत्तम प्रयोग में आता है, उसी से मनुष्य का कल्याण होता है, क्योंकि उस समय के सुपरिणामों को याद करके मनुष्य स्वयं सुख को प्राप्त होता है। बस, जीवन और मृत्यु दो सापेक्ष शब्द हैं। यदि जीते हुए भी समय का सदुपयोग नहीं किया, तो यह जीना भी मृत्यु सदृश है, और यदि जीवन के कुछ भी काल को उत्तम कार्य में लगाया है तो उसका फल अमिट है।

पाठक-वृन्द! जीवन और मृत्यु का यह लेख किसी दार्शनिक विज्ञान के लिए नहीं, परन्तु हमारे नित्य के कार्यों और जीवन की सफलता के लिए है। सोचिए, संसार के इतिहास के पन्नों में क्या कभी नीरो (Nero) जैसे पापात्मा को किसी ने सुखी देखा? इसके विपरीत साधनों द्वारा संयम करने वाले किसी धर्मात्मा को क्या कभी दुःख-सागर में डूबा हुआ सुना?

जीवन और मृत्यु का प्रश्न हमारे लिए, प्रत्येक पग पर उपस्थित होता है। यह हमारे अपने ही अधीन है, कि धर्म और न्याय के पथ पर चल कर अक्षय जीवन को प्राप्त करें, अथवा पाप और अधर्म के मार्ग पर चल कर क्षण-क्षण में मृत्यु से भयभीत होकर दुःख-सागर में डूबे रहें। —जगदीशचन्द्र फैके

❀ ❀ ❀

स्त्रियों की शिक्षा किस प्रकार की होनी चाहिए

उस परमपिता परमात्मा ने इस अनुपम सृष्टि को रच कर अपनी कार्य-कुशलता का परिचय भली-प्रकार दिया है। इस सृष्टि में उसने दो प्रकार के जीव बनाए हैं, एक तो वह जो केवल कर्मफल ही भोगते हैं, जैसे पशु, पक्षी, वृक्ष इत्यादि और दूसरे मनुष्य जो अपने पूर्वजन्म के कर्मफलों को भोगते हुए कर्म भी करते हैं। मनुष्य को ही ईश्वर ने इतनी बुद्धि दी है, जिसके द्वारा वह अपनी भलाई-बुराई का भली-प्रकार निर्णय कर सके, अतः मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अपनी बुद्धि को स्वच्छ रख कर उसके विकास की चेष्टा करे और उसका सदुपयोग करता हुआ सत्कर्म की ओर लगाए। बुद्धि का विकास मनुष्य के संस्कारों तथा शिक्षा पर निर्भर है। जिस प्रकार एक कुशल बढ़ई भद्दी-टेढ़ी लकड़ी को छील कर सुन्दर लुभावनी चीज़ें बना सकता है, उसी प्रकार मनुष्य भी शिक्षा तथा संस्कारों द्वारा देव बनाया जा सकता है।

बालक के मस्तिष्क पर शिक्षा का प्रभाव गर्भ-काल से ही पड़ना आरम्भ हो जाता है और यदि बचपन से ही सदाचार और नीति की उत्तम शिक्षा मिल जाती है, तो बालक बड़ा होने पर सदाचारी और नीतिज्ञ होता है। इसी सिद्धान्त पर इङ्गलिश में एक कहावत है—"Childhood is the father of the man" अर्थात्—"बचपन मनुष्य का पिता है।" चूँकि बाल्य-काल में बालक अपनी माता से ही शिक्षा ग्रहण करता है, अतः पुरुषों का कर्त्तव्य है कि भावी सन्तानोत्पादन तथा पालन करने वाली लड़कियों की शिक्षा का विशेष ध्यान रक्खें, जिससे कि भावी सन्तान अपनी माता द्वारा सुशिक्षित होकर सर्वगुणों से अलङ्कृत हो सके।

अब प्रश्न यह है कि स्त्रियों की शिक्षा किस प्रकार की होनी चाहिए। इस विषय पर भिन्न-भिन्न मनुष्य भिन्न-

भिन्न सम्मति रखते हैं। मेरे विचार से चार-छः हिन्दी भाषा की पुस्तकें पढ़ा देने से ही स्त्री-शिक्षा का कार्य पूरा नहीं हो जाता, बल्कि स्त्रियोपयोगी प्रत्येक विषय का पूरा ज्ञान होना उनके लिए अत्यन्त आवश्यक है।

गृह-प्रबन्ध शास्त्र की शिक्षा में प्रत्येक भोज्य पदार्थ के गुण-अवगुण जानना, कपड़े सीना, गृह को स्वच्छ रखना, पुष्टिकारक तथा शीघ्र पचने वाला भोजन बनाना तथा लौकिक व्यवहार, जो नीति से परिपूर्ण हो, सिखाना चाहिए। स्वास्थ्य-रक्षा तथा वैद्यक की थोड़ी जानकारी भी लड़कियों के लिए एक अत्यावश्यक विषय है। घर में ऐसी बहुत सी बीमारियाँ होती हैं, जो स्वयं ही दूर की जा सकती हैं। यदि स्त्रियाँ स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों का थोड़ा भी ज्ञान रखती हों, तो ज़रा-ज़रा सी बातों में डॉक्टर या वैद्य बुलाने की आवश्यकता न पड़े। अक्सर ऐसी दैविक घटनाएँ हो जाती हैं, जिनमें डॉक्टर को बुलाते-बुलाते ही रोगी के प्राणों का भय हो जाता है। यदि स्त्रियाँ सुशिक्षिता हों तो तात्कालिक चिकित्सा करलें और रोगी के प्राण सङ्कट में न पड़ें। इसके अतिरिक्त प्रत्येक रोग असावधानता से ही उत्पन्न होता है, यदि हमारा स्त्री-समाज इन सब बातों से पूरी जानकारी रखता हो तो असावधानी द्वारा उत्पन्न होने वाले कष्टों का यदि समूल नहीं तो बहुत अंशों में अवश्य नाश हो जावे। जन्म-मरण सम्बन्धी 'गज़ट' देखने से पता चलता है कि भारतवर्ष में बच्चों तथा स्त्रियों की मृत्यु-संख्या बहुत बढ़ी-चढ़ी है। हमारा वृद्ध दुखी भारत अपनी कमज़ोर आँखों से अपने लाड़ले बच्चों की ओर बड़ी आशा से टकटकी लगाए हुए है। परन्तु आधे से अधिक बच्चे मेंह के बुलबुले की भाँति संसार में अपना मुँह दिखा कर सदा के लिए विदा हो जाते हैं! और जो जीवित रहते भी हैं वे निर्बल, रोगी तथा दुर्गुणी होते हैं! यदि ढूँढ़ा जाय तो हमको केवल उँगलियों पर गिनने लायक़ ऐसी माताएँ मिलेंगी, जिनके बच्चे स्वस्थ, सुन्दर तथा बुद्धिमान हैं। इसका कारण केवल यही है कि स्त्रियों को उचित शिक्षा नहीं दी जाती।

मनुष्य के लिए धार्मिक-शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है। हमारा धर्मशास्त्र कहता है कि धार्मिक शिक्षा-विहीन मनुष्य पशु-तुल्य है। परन्तु आजकल उच्च शिक्षा प्राप्त देवियाँ भी धर्मशिक्षा को उच्च दृष्टि से नहीं देखतीं। मेरे विचार से धर्मशिक्षा स्त्रियों के लिए अनिवार्य विषय होना चाहिए। यदि यह कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी कि विदेशी शिक्षा ने हम लोगों के हृदय में धर्म के लिए कोई स्थान ही नहीं रक्खा है। हम लोग अपने प्राचीन आर्य-धर्म तथा सभ्यता को भूल कर विदेशी सभ्यता को अपना रहे हैं। अतः धर्म-शिक्षा हम लोगों का पहला मुख्य विषय होना चाहिए, जिससे कि भारतवर्ष का स्त्री-समाज अधर्म के गड्ढे में न गिर कर अपने जगत-विख्यात आदर्श को पहले की भाँति उच्च तथा महत्वशाली बनाए रक्खे।

साहित्य एवं मातृ-भाषा भी अन्य आवश्यकीय विषयों में से एक मुख्य विषय है। अपने साहित्य-ज्ञान के बिना अपनी जन्मभूमि का आदर भली प्रकार नहीं होता। बहुत सी स्त्रियाँ यह भी नहीं जानतीं कि आज संसार के प्रत्येक क्षेत्र में क्या हो रहा है। अपनी मातृ-भाषा के अतिरिक्त अन्य देशी भाषाओं की भी शिक्षा देनी चाहिए, जिससे कि अपने तथा दूसरों के साहित्य की विशेषताओं का निर्णय कर सकें, और भारतवर्ष की दशा से भली प्रकार परिचित होकर देश-प्रेम की जागृति करें और उसमें कृतकार्य हों।

देश में जिस समय जिन लोगों का राज्य होता है, उस समय उन्हीं की भाषा राज-भाषा हो जाती है और उसी के द्वारा सारा राज-काज चलता है। अतः पद-पद पर प्रजा को उसकी आवश्यकता पड़ती है। जो राज-भाषा नहीं जानते, उनको प्रत्येक कार्य में कठिनाई उठानी पड़ती है। स्त्रियाँ राज-भाषा (English) बहुत कम जानती हैं (यद्यपि आजकल इसका प्रचार बहुत हो रहा है, परन्तु स्त्रियों की संख्या को देखते हुए इङ्गलिश पढ़ी हुई स्त्रियों की संख्या अत्यन्त न्यून अथवा नहीं के बराबर है)। अतः स्त्रियों में राज-भाषा का प्रचार बढ़ाना चाहिए और प्रत्येक स्त्री तथा लड़की को कम से कम इतना अवश्य पढ़ा देना चाहिए कि वह अपनी बात दूसरे से कह सके और दूसरों के कहने का अभिप्राय समझ सके।

ईश्वर से प्रार्थना है कि वह समय शीघ्र आए, जब भारतवर्ष का प्रत्येक पवित्र गृह सुशिक्षित, धर्मज्ञ तथा वीर रमणियों से भरा हुआ दृष्टिगोचर हो।

—मिसेज़ सौभाग्यवती शङ्कर "विदुषी"

नरपशु

[कविवर श्री० मोहनलाल महतो 'वियोगी']

सर्वसाधारण से अधिक ऊँचा दिखलाई पड़ने के लिए यह आवश्यक है कि किसी ऊँचे स्थान पर खड़े होकर हम दूसरों को यह विश्वास दिला दें कि 'वे मुझसे बहुत ही निम्न-श्रेणी के हैं।' बड़े आदमी के लिए यह नितान्त वाञ्छनीय है कि वह अपना बड़प्पन स्थिर रखने के लिए सदा कुछ ऐसे लोगों को अपने दबाव में रक्खे, जिन्हें इसी काम के लिए अनेक यत्नों से सहनशील बनाया जाता है। पूँजीवादी युग का यही मुख्य धर्म है। बहुत से लेखक 'अगर' 'मगर' 'किन्तु' 'परन्तु' के जालावरण के भीतर इसी तत्त्व को अपनी सलज्ज भाषा में व्यक्त करते हैं, तो पाठक आनन्द-विभोर होकर तालियाँ पीटने लगते हैं।

राजापुर के देवबहादुरसिंह भी बड़े आदमियों में से थे और उनके अधिकार में भी छायामयचकित, हत-आसन, गतगौरव, अर्धमृत और अधभूखे मनुष्यों का एक दल था, जिसे वे 'प्रजा' के नाम से पुकारते थे। दैवात् इन्हीं देवबहादुरसिंह के विरुद्ध पिछले वर्ष एक सङ्गीन मुक़दमा चल गया। घटना इस प्रकार सुनी जाती है कि इनके पड़ोसी दूसरे ज़मींदार की एक घोड़ी न जाने कैसे इनकी बगिया में घुस आई। ज़मींदारी प्रतिष्ठा को एक छलाँग में लाँघ कर उस घोड़ी ने जिस दुस्साहस का जघन्य परिचय दिया था, वह किसी को भी पसन्द न आया। बगिया के जलसिञ्चित कोमल-हरित तृण को जठरानल में झोंक देने का घोड़ी ने जो अपराध किया था, उसकी गुरुता के साथ किसी की भी सहानुभूति नहीं थी, फलतः उसे काँजीहौस भेजने की व्यवस्था की जाने लगी।

उस ज़मींदार को इस महा अपमानजनक व्यापार की सव्याख्या सूचना दी गयी, जिसकी वह घोड़ी थी। संसार में यह नियम अनादि काल से प्रचलित है कि किसी भी वस्तु को दूर तक घसीटते हुए ले जाने से उसका क्षय हो जाता है, पर बात के सम्बन्ध में व्यवस्था ही उलटी है। यह जितनी दूर तक घसीटी जाती है, घटने की अपेक्षा इसका रूप उत्तरोत्तर विकसित अवस्था में परिणत होता जाता है।

उस ज़मींदार के अपमान-ज्वाला-दग्ध हृदय ने इस अवसर पर लठैतों से लाभ उठाना उचित समझा। देवबहादुरसिंह के असावधान सिपाहियों को मारा-पीटा गया और रास्ते में ही घोड़ी छीन ली गयी। अश्वमेध के घोड़े की तरह उस अभागी घोड़ी ने प्याले में तूफ़ान उठा दिया। देवबहादुरसिंह आहत व्याघ्र की तरह हुङ्कार कर उठे और उचित अवसर की ताक में मन मसोस कर बैठ गए।

एक रात को जब उस अपराधी ज़मींदार के गाँव के अधिकांश मनुष्य किसी बड़े आदमी की बारात में

पैसों की आतिशबाज़ी और 'जानकीबाई' की करामात देखने गए थे, तब देवबहादुरसिंह ने उसकी कचहरी पर छापा मारा। तीन ख़ून करके तथा खलिहान में आग लगा कर यह दल सकुशल लौट आया। राजापुर के चिरविजयी ज़मींदार की शान रह गई, पर दारोग़ा जनाब महोदरअली की पड़ताल परिपाटी के चलते दोनों दल को थोड़ी बहुत परेशानी उठानी पड़ी। अन्त में पञ्चमेल मिठाई की तरह रङ्गबिरङ्गी रिपोर्ट कचहरी पहुँची। वकीलों ने भी दारोग़ा जी की चिचोरी हुई हड्डी पर दाँत मारना शुरू किया। इस खण्ड प्रलय में देवबहादुरसिंह के हाथ से उनके तीन गाँव निकल गए और साथ ही यह भी सुना गया कि दूसरे दल की स्त्रियों के नत्थ, कड़े, छड़े तक बाज़ार में बिकते हुए देवबहादुरसिंह के हितैषी गुप्तचरों के द्वारा देखे गए।

धीरे-धीरे मामला सङ्गीन हो गया। देवबहादुरसिंह के सभी हितैषियों के चेहरे का रङ्ग उड़ गया। पर इसी समय आबकारी के विख्यात ठेकेदार मिस्टर रेजीउड साहब का रङ्गमञ्च पर प्रवेश हुआ। साहब ने जज की बग़ल में कुर्सी पर बैठ कर ऐसी गवाही दी कि देव-बहादुरसिंह का सारा मामला काई की तरह पल भर में साफ़ हो गया। यदि साहब बहादुर की अनुकम्पा न होती तो × × × उफ़! इस आफ़ते नागहानी से अपने आपको बचा जान कर देवबहादुरसिंह ने अघाकर साँस लिया और शासक जाति के जीवों के प्रति मन ही मन सदा कृतज्ञ रहने का अटल प्रण किया।

२

पुराने मैले कोट को बेचने वाला इस बात की कभी इच्छा नहीं करता कि उस कोट में रहने वाले चीलरों का उसे अलग मूल्य मिले। कोट के साथ ही उसके चीलर भी बिक जाते हैं। यही दशा हमारे यहाँ ज़मींदारी प्रथा की है। भूमि के साथ हम किसानों को भी बेच डालते हैं। यद्यपि हमारे यहाँ मनुष्यों को भेड़-बकरी के साथ बेच डालना कठोरतापूर्वक मना है, पर ग़ुलाम क्रय-विक्रय का एक अत्यन्त सुसंस्कृत रूप देहातों में देखा जाता है। ज़मींदार जब अपनी ज़मींदारी को बेच डालता है, तब गाँव के कुत्ते, गधे, घोड़े, बैल आदि के साथ उस गाँव के निवासी भी बिक जाते हैं। घर के साथ बिना मूल्य बिक जाने वाले छछूँदर, छिपकिली, चूहे, चिमगादड़ों की तरह किसानों का सम्बन्ध भी अपने भाग्य से ही है, खेत से नहीं। जिस प्रकार जाड़े की रात को हलवाई की बुझी हुई गरम भट्ठी से सट कर कुत्ते सोते हैं और प्रातःकाल हलवाई के द्वारा निष्ठुरतापूर्वक खदेड़ दिए जाते हैं, बस यही सम्बन्ध किसानों का उनके खेतों से है। न तो कुत्ते भट्ठियों पर अपनी होने का दावा कर सकते हैं और न किसान खेतों पर।

देवबहादुरसिंह ने जिन तीन गाँवों को लाचार होकर बेंच डाला था, उनमें से एक था शिवपुर, और शिवपुर के कुत्ते, बिल्लियों, गधों, बैलों के साथ ही बिक जाने वाले किसानों में से एक था मनोहर।

मनोहर पाँच बीघे का छोटा सा काश्तकार था। नये भू-स्वामी का शासन-चक्र घूमते-घूमते किस प्रकार मनोहर के सिर से अचानक टकरा गया, इसका इतिहास बहुत ही विस्तृत और सकरुण है। मिट्टी के तुनुक घरौंदे पर वज्रपात होने का जो परिणाम हो सकता है, वही मनोहर के सिर से ज़मींदार के शासन-चक्र के टकराने का हुआ। अधमरे किसान का जीवन क्या है—बालू की भीत! हवा का एक हल्का सा झोंका ही उनके विनाश के लिए पर्याप्त है। ज़मींदार अपने अन्नदाता किसानों को कभी पनपने भी नहीं देते। हालाँ कि एक बार एक कवि ने अपनी भाषा में प्रार्थना भी की थी कि—"हम घास बने हरियाया करें, चरि आप गधे से मुटाया करें!" पर किसी ज़मींदार ने इस प्रार्थना पर ध्यान दिया था या नहीं, हमें मालूम नहीं। अस्तु, यह बात ज़मींदारों पर भली भाँति विदित है कि पेट भरे हुए मनुष्यों पर बड़प्पन क़ायम रखना कोई आसान बात नहीं है।

ख़ैर, शिवपुर के नये ज़मींदार हुए मुन्शी देवी-दयाल। देवीदयाल का गठन मनुष्यता के प्रतिकूल तत्त्वों से हुआ था। अर्थात् वे सम्पूर्ण अर्थों में पूँजीपति थे। जितनी कठिनाई से वे गाँठ का पैसा खिसकने देते थे, उतनी ही कठोरता से दूसरे से अपनी अन्तिम पाई तक भी वसूल कर लेते थे। देवीदयाल के प्रबल प्रताप से किसी भी किसान के खपरैल पर एकाध कद्दू या कुम्हड़े का दर्शन पा लेना 'अष्टम आश्चर्य' माना

जाता था। देवीदयाल के एक पुत्र-रत्न भी थे और उन्होंने भी पिता का ही हृदय पाया था। अर्थात् पुत्र, पिता का नवीन संस्करण था। नाम था रामाधीन। कॉलेज के वायु-मण्डल में पलने के कारण नवयुवक रामाधीन उदार विचारों का पोषक था। मानों वह अपनी प्रजा से कह रहा हो कि हम तुम्हारे कष्टों के कारण को समझते हैं और यह भी जानते हैं कि उनसे तुम्हारा उद्धार किस प्रकार होगा। हमने यह निश्चय कर लिया है कि चाहे जिस उपाय से हो, हम तुम्हारा उद्धार कर ही डालेंगे, पर यदि तुमने मुझे अपने कन्धों से उतार डाला तो संसार तुम्हारी कृतघ्नता पर थूकेगा, इसलिए मैं सदा तुम्हारे कन्धों पर ही लदा रहूँगा और वहीं से तुम्हारे कल्याण की बातें सोचूँगा। दूसरी बात यह है कि तुम देख रहे हो कि मैं बहुत ही ऊँचे स्थान पर अर्थात् तुम्हारे कन्धे पर बैठा हूँ। परोसी हुई थाली तक मेरा हाथ पहुँचता ही नहीं, अतएव तुम अपने 'ग्रास' को ही मेरे मुँह में डाल दिया करो।

रामाधीन की उदारता गाँव भर में विख्यात थी। अर्थशास्त्र के सर्वोच्च सिद्धान्त के आधार पर रामाधीन अपनी प्रजा के हित की कामना करता था। बैल के साथ और बैलों की तरह ही खेतों में काम करने वाले नर-पुङ्गवों से मनुष्योचित व्यवहार क्यों किया जाय, इस प्रश्न को रामाधीन बहुत ही महत्व देता था। जिनका जन्म ही केवल सेवा करने के लिए हुआ है, उन्हें तभी तक संसार की वस्तुओं का उपभोग करने का कुछ-कुछ अधिकार है, जब तक वे अपने सेवा-धर्म से च्युत नहीं होते। रामाधीन एक सिद्धान्तवादी नवयुवक था। हाँ, जब-तब वह नौकरों पर कोड़े फटकार दिया करता था। उसके पिता जब किसी अधीनस्थ व्यक्ति पर लात-जूतों की वर्षा करवाते थे, तो उनका यह कार्य ज़मींदारी की सुव्यवस्था के लिए होता था। पर सुशिक्षित रामाधीन केवल उसी व्यक्ति की हित-कामना को मद्देनज़र रख कर वैसे कर्म में प्रवृत्त होता था। शिक्षा-प्रदान की दृष्टि से मार-पीट करना उतना दोषावह नहीं माना जाता।

दो-तीन वर्ष तक लगातार फ़ेल कर लेने के बाद हमारे यही रामाधीन ने एक दिन हठात् वकील बन कर अपने पिता-माता, पुरजन, परिजन, भृत्य, अमात्य, सभों को ऐसा चकित कर दिया कि थोड़ी देर तक विस्मय-विस्फारित नेत्रों से सभी एक दूसरे का मुँह ताकते रह गए। तत्काल आश्चर्य का कुहरा दूर हो गया। आनन्दोत्सव की तरङ्गें सातवें आसमान को चूमने लगीं। उत्सव समाप्त होते ही रामाधीन ने अपने पिता को अनेक अकाट्य युक्ति-तर्कों की सहायता से समझा दिया कि बिना मोटरकार के वकालत का रङ्ग जमना कठिन है। मोटर मानव-जन्म की पूर्णता का एक प्रधान अङ्ग है।

यावज्जीवन ताँगा, टट्टू, बैलगाड़ी और गदहिया सी घोड़ी पर चढ़ने वाले लाला देवीदयाल ने मोटर की महत्ता के विरोध में बहुत कुछ कहा-सुना, पर नये वकील की पैनी बुद्धि के सामने उन्हें स्वयम् अपने तर्क निस्सार जान पड़ने लगे। देवीदयाल के माथे पर चिन्ता की रेखाएँ पुच्छल तारे की तरह चमकने लगीं। विशेषज्ञों की समिति बुलाई गई। मैली दोहर लपेटे अनेक बूढ़े-अधबूढ़े बड़े सरकार की बैठक में जमा हुए। पयाल पर फटी हुई दरी बिछी थी और एक कोने में एक टूटा सा खाट पड़ा था। यही बैठकख़ाने की सजावट थी। बड़े सरकार इसी खाट पर बैठा करते थे और अमात्य लोग नीचे पयाल पर।

अनेक आलोचना-प्रत्यालोचना के बाद सर्व-सम्मति से तय हुआ कि ज़मींदारी भर से 'मोटर-कर' वसूल किया जाय। दो रुपए प्रत्येक घर! इतने बड़े प्रश्न का निर्णय क्षण भर में हो गया। हिसाब करके देखा गया कि अकेले शिवपुर से आठ सौ रुपयों की मोटी रक़म मिलेगी। शिवपुर जैसे बीसों गाँव देवी-दयाल के अधिकार में थे!

इस योजना को कार्य-रूप में परिणत किया जाने लगा। तत्काल चारों ओर से तहसीलदारों के विरुद्ध नाना प्रकार के अत्याचारों की शिकायतें आने लगीं और आने लगे ढेर के ढेर रुपए। ख़ून और आँसुओं से सने हुए चाँदी के टुकड़ों से ज़मींदार की तिजोरी और फ़्रेञ्च मोटर कम्पनी का खाता भरने लगा। मोटर के साथ कलकत्ते से आने वाले सिक्ख ड्राइवर को देखने के लिए लोगों की भीड़ लग गई। पाँच हाथ लम्बा जवान, नाभी तक लटकती हुई घनी काली दाढ़ी, सिर पर काला मुरेठा और ज़ुबान पर पञ्जाबी-भाषा की

रहस्यमयी गालियाँ! सभी अद्भुत, सभी अनुपम!! अलाउद्दीन के चिराग़ का साक्षात् देव!

३

यथासमय मनोहर के टूटे हुए द्वार पर भी ज़मींदार के दूत दो रुपयों के लिए आ पहुँचे। इसके तीन-चार दिन पहले ही मनोहर की स्त्री का अन्त बिना औषधि और उचित उपचार के हो चुका था। तीन-चार मास की एक चिररुग्ना कन्या को छोड़, उसने रोदन-कातर पति की अस्थिचर्मावशिष्ट गोद में सिर रख कर सान्त्वना प्रदान करते हुए प्रस्थान किया था। घर के थाली, लोटे, धोती, कुरता, कुदाल, फावड़े आदि बेच कर किसी न किसी प्रकार मनोहर ने अपनी पत्नी का अन्त्येष्टि संस्कार कर दिया। आगे के राम मालिक!

मातृहीना रुग्ना कन्या को लेकर वह रोना भी भूल गया था। मनोहर घर का अकेला था। दरिद्र के परिजन, कष्ट, हाहाकार, क्षुधा, अपमान आदि ही होते हैं। यह बात सत्य है कि धनी बस्ती में रहते हुए भी दरिद्र अकेला ही है। मनोहर का घर सूना था; हृदय सूना था, संसार सूना था। "सर्वशून्या दरिद्रता!"

एक दिन सन्ध्या समय, जब कि वर्षा ग्राम की गलियों में कीचड़ के रूप में अपनी स्मृति छोड़ कर चली गई थी और धूमिल सन्ध्या जल से भरे हुए हरे-भरे खेतों के उस छोर पर उतर रही थी, ज़मींदार के तीन-चार दूत—जो वस्तुतः पालतू कुत्तों के अतिरिक्त और कुछ न थे—मनोहर के द्वार पर दुर्भाग्य की तरह आकर एकाएक खड़े हो गए।

सिपाहियों ने मनोहर के पिता का नाम लेकर और उसके साथ मनोहर का स्वसुर-जामाता का असम्भव नाता स्थिर करते हुए पुकारा। मनोहर रुग्ना कन्या को गोद में लिए घर से बाहर निकला। उसकी दोनों टाँगें काँप रही थीं, वह भयाकुल था।

"क्यों बे, कल सरकार में क्यों नहीं हाज़िर हुआ?" एक सिपाही ने डाँट कर पूछा! मनोहर ने काँपते हुए स्वर से निवेदन किया—"देखते नहीं सरकार! मुझ पर दैव की मार पड़ी है। इस लड़की की माँ मर गई। यह लड़की × × ×।"

एक सिपाही से मनोहर की यह ढिठाई न देखी गई। उसने वीर-दर्प से पैर पटक कर कहा—चूल्हे में जाय साली लड़की! हम पूछ रहे हैं कि कल तुम सरकार में क्यों नहीं हाज़िर हुए?

"बाबू जी"—मनोहर ने गिड़गिड़ा कर कहा—"लड़की छन भर के लिए भी मेरी जान नहीं छोड़ती।"

"तुम्हें अभी-अभी चलना होगा"—महाप्रभुओं की ओर से आदेश प्रदान किया गया। मनोहर ने असमर्थता प्रकट करते हुए कहा—"आप माई-बाप हैं। रात भर की मुहलत मिले। कल सवेरे हाज़िर होऊँगा।"

परन्तु मनोहर की प्रार्थना विफल हो गई। उसने पड़ोस की एक महरिन को पुकारा। वह न बोली तो रासबिहारी की माँ को, बेनी की चाची को, नरेश भैया की नानी को, पर कहीं से कोई उत्तर नहीं मिला। बड़ा साहस करके सुमेरु आए, पर दूर ही खड़े रहे। मनोहर ने अपनी रुग्ना कन्या का भार उनके हाथों में सौंपना चाहा। लड़की चिल्ला उठी। सिपाहियों ने अनेक यत्न से रट-रट कर कण्ठस्थ किए हुए महावाक्यों की वर्षा कर दी। यहाँ तक कि मनोहर के घर, गली, आसपास के वृक्षों, पहाड़ और बार-बार 'में-में' करने वाली अभागी बकरी को भी लाख-लाख गालियाँ सुनाईं। इस पर भी जब तृप्ति नहीं हुई तो उनमें से एक ने कहा—"यह हरामज़ादी लड़की बहुत चिल्लाती है। यदि अब चुप न रहेगी तो इसके मुँह में डण्डा ठूँस दूँगा।" इस वक्तव्य के बाद उस नराधम ने डण्डा ठूँसने का ऐसा सफल अभिनय किया कि मनोहर आपादमस्तक पीपल के पत्ते की तरह काँप उठा और लड़की को छाती से चिपका कर पीछे हट गया। इतने में एक सिपाही ने लपक कर मनोहर का एक हाथ पकड़ लिया और ऐसा सबल-झटका दिया कि वह गिरते-गिरते किसी प्रकार सँभल सका। चीख़ती हुई लड़की को छाती में छिपाकर मनोहर रोदन-मिश्रित स्वर से बोला—मरे को क्यों मारते हो सरकार! चलो चलता हूँ। हा राम!

पड़ोस के दो-चार मनुष्य नामधारी जीवित मुर्दे यह सब कुछ छिप कर देख-सुन रहे थे। सबने मनोहर को ही एक स्वर से दोषी ठहराया। सुना है कि ग़ुलामों के आत्मा नहीं होती। सुमेरु ने बड़ी कठिनता ने डरते-डरते मनोहर की कन्या का भार सँभाला। मनोहर ने धड़कते हुए हृदय से प्रस्थान किया। उसका मन आगे बढ़ने वाले जहाज़ की ध्वजा की तरह पीछे की ओर ही

मुड़ कर फड़फड़ा रहा था। कन्या का रुदन वह गाँव के बाहर तक सुनता रहा। थोड़ी देर में शिकारी कुत्तों से घिरा हुआ मेमना सिंह की माँद के सामने पहुँचा दिया गया।

मनुष्यता और स्वार्थ से सदा अनबन रही है। दोनों का मेल किसी युग में नहीं देखा गया। देवीदयाल की दृष्टि किसानों के हृदय को नहीं टटोलती थी। वह तो सदा उनकी गाँठ पर ही अटकी रहती थी। ऐसी दशा में दरिद्र किसानों की दरिद्रता से देवीदयाल का किसी प्रकार का नाता रह सकता है या नहीं, यह तो सोचने की बात नहीं, समझने की बात है। ज़मींदार के लिए किसान सोने के अण्डे देने वाली वह मुर्ग़ी है, जो प्रत्येक बार ज़ोर से दबा देने पर एक अण्डा दे देती है।

देवीदयाल उस समय सन्ध्या का नाश्ता कर रहे थे। अर्थात् चाँदी के स्वच्छ दुग्धनिभ कटोरे में रख कर वे भुने हुए चने और चावल हरी मिर्च के साथ धीरे-धीरे उदरस्थ कर रहे थे। तीन-चार सेवक जल का गिलास, हाथ पोछने का अँगोछा, हाथ धुलाने के लिए झारी, कुल्ला करने के लिए चिलमची आदि-आदि उपकरण लिए खड़े थे। देवीदयाल स्वास्थ्यवर्धक चना-चबेना खा रहे थे। एक सिपाही ने आगे बढ़ कर सलाम के बाद निवेदन किया—"सरकार, यही मनोहरा है। सरकारी हुक्म सुन कर इसने बड़ी शान से कहा कि हम देवबहादुरसिंह की प्रजा हैं, ऐसे-ऐसे ज़मींदारों को भुनगे के बराबर भी नहीं समझते।" संक्षेप में अपना वक्तव्य समाप्त करके सिपाही आज्ञा की प्रतीक्षा में पूरी ऊँचाई में तन कर खड़ा हो गया। वह भली भाँति जानता था कि आगे क्या होने वाला है।

सरकारी आदेश हुआ। अर्धमूर्छित मनोहर ने भी सुना—"इसका घर लूट लो। जुर्माने में इससे अभी-अभी पचीस रुपये वसूल किये जायँ और जूतों से पीट कर साले को गाँव से बाहर निकाल दिया जाय।"

मनोहर ने कुछ विनय प्रार्थना करने का प्रयत्न किया, पर उसका मुँह जूतों से बन्द कर दिया गया। मालिक के सामने बेअदबी—ऐं! इतना साहस?

× × ×

जिस समय निरपराध दरिद्र दुर्बल किसान पर जूते तोड़े जा रहे थे और उसकी मूर्छित देह पैरों से रौंदी जा रही थी, उसी समय छोटे सरकार के सजे सजाए कमरे में मेंहदी से रङ्गी हुई लम्बी दाढ़ी पर हाथ फेर कर उस्ताद मुन्ना ख़ाँ ईमन का तान छेड़ रहे थे। एक ही रङ्गमञ्च पर दो दृश्य। हरि इच्छा!

देखते-देखते गोधूलि ने रजनी का रूप धारण किया। बादलों के फाँक से पूर्णिमा की शशिसम्भवा-विभा आकर मनोहर की संज्ञाहीन देह पर कफ़न की तरह लिपट गई। दूरस्थित मन्दिर के सिंह-पौर पर शहनाई बज उठी। मनोहर के मूर्छित पड़े रहने से संसार के किसी भी कार्य में रुकावट नहीं हुई, किसी ने भी उसका अभाव अनुभव नहीं किया।

धीरे-धीरे घटाएँ घिरने लगीं। पुरवा हवा के झकोरों के साथ जल के फ़ौवारे आकाश से छूटने लगे। महाशून्य का हृदय भी पसीज उठा। धीरे-धीरे कराह कर मनोहर ने करवट बदली। किसी ने कहा—"अभी मरा नहीं है।" उत्तर में किसी ने सन्तोष प्रकट करते हुए कहा—"ख़ैर!"

मनोहर ने दूसरी करवट बदली। मूसलाधार वृष्टि हो रही थी और बिजली कौंध रही थी। वह बड़े कष्ट से खिसकता हुआ निकटस्थ वृक्ष के नीचे चला गया। पत्तों से छन कर पानी की बूँदें गिर रही थीं।

४

शहर के एक उजाड़ छोर पर, जहाँ की सड़कों के अच्छी न रहने के कारण अमीरों की और समाज-सुधारक नेताओं की दामी मोटरें वहाँ तक कभी नहीं पहुँच पाती थीं, एक "कजबरिया" संसार भर के धिक्कारों की आँधी से अपने आपको बचा कर उस स्थान की वीभत्सता और निष्ठुरता का अकेली सामना कर रही थी। इस कजबरिया के वायु-मण्डल को यदि बोलने की क्षमता प्रदान कर दी जाय, तो वह युग-युग की सुनी हुई कहानी को सुना कर संसार को निश्चय ही अवाक् कर दे। हमें केवल यही बतलाया जाता है कि कजबरिया चोर-बदमाशों का अड्डा है, ख़ूनी और डकैतों का क्लब है, भयानक पापियों का लीला-स्थल है। यदि हम समाज के इन घृणित अङ्गों का प्रारम्भिक इतिहास धूल झाड़ कर पढ़ें, तो हमें शीघ्र ही ज्ञात हो जायगा कि इन्हें पाप-पङ्क में लिप्त कर देने का

श्रेय हमारे उस सभ्य समाज को भी है, जो आज धन-बल से संसार की शान्ति और व्यवस्था को मिटाने के लिए कृतसङ्कल्प बना बैठा है। सभ्यता के नाम पर हम नित्य कैसी असभ्यता का उदाहरण संसार में उपस्थित कर रहे हैं, उसका प्रमाण इस समय इस कलवरिया के अतिरिक्त दूसरा और हम कहाँ से लावें। असंख्य निर्बलों के मानवोचित स्वत्वों को हथिया कर हम नित्य उनका सामाजिक तथा नैतिक पतन करा डालते हैं। दुःख तो इस बात का है कि चोरी करने के लिए किसी को बाध्य करके हम उलटे उसे 'चोर' कह कर पुकारने लगते हैं। दूसरे पापों के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है।

जो हो, शहर के एक उजाड़ छोर पर एक कलवरिया थी और उस कलवरिया में कुछ धन्तेड़ पियक्कड़ कोलाहल करते हुए चुक्कड़ पर चुक्कड़ चढ़ा रहे थे। बस।

मद्यपों में से एक ने कहा—"भाई कल दो हाथ में पाँच सौ हार गया।" दूसरे ने इस असम्भव सत्य का इस प्रकार प्रतिवाद किया—"साला झूठा है। इस दरिद्र के भाग्य में इतनी गहरी रक़म का पा जाना कहाँ लिखा है।"

पाँच सौ हार जाने वाले ने इस मिथ्या कलङ्क का ख़ूब चिल्ला कर खण्डन किया और एक साँस में तरह-तरह की सैकड़ों क़समें खाकर चुप हो गया।

एक मद्यप ने कहा—"रामू भैया, कल कहाँ थे?" रामू भैया आवश्यकता से अधिक पी लेने के कारण किसी काल्पनिक शत्रु को एकाग्र चित्त से गालियाँ सुना रहे थे। अपना नाम सुनते ही मानों सोते से जाग उठे। इतने में किसी ने फिर पूछा—"रामू भैया, कल तुम कहाँ थे?" रामू भैया बोले—"हम कहीं थे। हमने किसी के बाप का क़र्ज़ खाया है?"

प्रथम वक्ता ने कहा—क्यों रामू चाचा, कल हम तुम्हारे साथ थे या नहीं? यह परतपवा साला कहता है कि × × ×।

प्रताप नामधारी मद्यप ने गरजते हुए कहा—ख़बरदार, मेरा नाम लिया तो नाक तराश लूँगा।

रामू भैया ने कहा—"कल तो सचमुच तुमने कमाल कर दिया। देखते-देखते पाँच सौ की थैली ले आए और बस थोड़ी देर में सब स्वाहा।" एक मद्यप ने कलवार के पिता-पितामह को स्मरण करते हुए कहा कि साला पानी मिला कर बेचता है। कितना भी पियो, रङ्ग नहीं जमता। अब सच्चा माल कहीं भी नहीं मिलता। आज किधर चलोगे रामू चाचा? मेरा दाहिना हाथ खुजला रहा है।

रामू ने कहा—तू साला कायर है। तेरे चलते परसों हाथ में आई रक़म निकल गई।

इस मद्यप ने बहुत-कुछ चाहा कि गले के ज़ोर से अपने आपको वीर सिद्ध कर दे, पर उसके सारगर्भित व्याख्यान को किसी ने भी नहीं सुना। हताश होकर उसने करुण कण्ठ से छेड़ दिया—

"तुम्हारी कसम जनियाँ नहीं दिल को चैन,
हाँ-हाँ तुम्हारी कसम! हाँ-हाँ!!"

एक मद्यप जो अपने आगे एक अद्धा रक्खे विस्मय-विस्फारित नेत्रों से यह सब देख रहा था, धीरे-धीरे बोला—"पाँच सौ! बाप रे! एकदम पाँच सौ की थैली यह छन भर में हार गया। मैं लात-जूते खाता-खाता ऊब उठा और जन्मभूमि त्याग करने को बाध्य हुआ, पर दो रुपयों की व्यवस्था न कर सका। यह कितना सुन्दर व्यवसाय है कि बात की बात में हज़ार-पाँच सौ पा जाना और बात की बात में स्वाहा कर देना।" साहस करके इसने रामू भैया से पूछा—"क्यों भाई, अचानक हज़ार-पाँच सौ कैसे मिल जाते हैं?"

सब लोगों ने एक स्वर से कहा—बहादुरी से और कैसे!

प्रश्नकर्ता ने पूछा—बहादुरी से?

रामू बोला—"अबे कह तो दिया, फिर क्या बड़बड़ा रहा है। हमारे साथ चल, फिर अपनी आँखों से देख कि रुपयों की वर्षा कैसे होती है।" सबने एक स्वर से हँस दिया। प्रश्नकर्ता चिन्तामग्न हो गया।

सड़क के उस छोर पर के टिमटिमाने वाले लैम्प के धुँधले प्रकाश में प्रश्नकर्ता का आकार-प्रकार मनोहर जैसा जान पड़ता है। मनोहर एक सच्चा-सीधा किसान है। वह इस कुचक्र में कैसे फँस गया। नहीं, यह मनोहर नहीं हो सकता।

× × ×

इस घटना के एक मास पूर्व की बात है। मनोहर की चिररुग्ना कन्या का अन्त हो गया था। जन्म का अवश्यम्भावी परिणाम है मरण।

पूस की सुनसान रात थी। मनोहर की गोद में ही उसकी मातृहीना कन्या का शोकमय अन्त हो गया। ज़मींदार ने मनोहर के खेतों को छीन लिया था। घर में एक सूत भी नहीं था। महाजन क़र्ज़ दे तो किस बिरते पर। जिस समय मुन्शी देवीदयाल के प्रकाशपूर्ण गरम बैठकख़ाने में, उनके प्रथम पौत्र की 'बरही' के शुभ-उपलक्ष में ज़िले भर के छोटे, मँझले, बड़े साहबों का विधिवत् भोजन हो रहा था, काँटे-छुरी की झनझना-हट से दिशाएँ गूँज रही थीं, उसी समय मनोहर की कन्या अपने निरुपाय पिता की गोद में ऐंठ-ऐंठ कर धीरे-धीरे दम तोड़ रही थी। घर अन्धकारपूर्ण था और पूस की प्रलयकारिणी हवा बाहर हाहाकार कर रही थी। मनुष्यों की कौन कहे, सर्दी के मारे पेड़-पत्ते तक काँप रहे थे।

सारी रात अपनी अन्तिम निधि को हृदय से चिप-काए और फटी हुई धोती से ढके मनोहर पत्थर की मूर्ति बना बैठा रहा। इस समय वह रोना भी भूल गया था। रह-रह कर वह मृत-कन्या के बर्फ़ जैसे शीतल मुख को बड़े वेग से चूम लेता था।

× × ×

मनोहर ने शिवपुर का त्याग कर दिया। उसके घर की नङ्गी दीवारों पर नाना जाति की घास उग गई और आँगन में लता-पल्लवों का साम्राज्य स्थापित हो गया। मनोहर के कच्चे घर की दीवारों पर की काली रेखाएँ आज तक किसी समय के उज्ज्वल प्रकाश की याद दिला रही हैं। ऊँचे ताख पर काठ का एक छोटा सा घोड़ा रक्खा हुआ है। वह धूलि से लिप्त है। खूँटी से लटक रही हैं तीन-चार लाल-लाल धूमिल चूड़ियाँ, मकड़ी के जाल से घिरी हुई।

कुछ लोगों का कथन है कि गाँव छोड़ देने के कोई छः मास बाद मनोहर बड़ी शान से एक दिन आया। बच्चों को उसने मिठाइयाँ खिलाईं और दोनों हाथों से अठन्नी-चवन्नी बाँट कर तुरन्त चलता बना। इस अफ़-वाह का बहुतों ने खण्डन किया, पर रामप्रसाद पाण्डेय इसकी सत्यता का प्रमाण "यज्ञोपवीत" की क़सम खाकर देते हैं। उन्होंने स्वयम् उससे एक अठन्नी पाई थी।

सावन

[श्री० परमानन्द शुक्ल]

देखो बरस रहे सावनघन—

हरित प्रकृति के ऊपर सुन्दर
नील गगन में छाये जलधर
पूर्व-पवन शीतल चल सुखकर
जगती के ये जीवनधन बन !
देखो०

उमड़ उठे आतुर-से बादल
इन्द्र-धनुष-कर फैला, पागल
चूम रहे ये अधर-कुसुम-दल
भर-भर कर मादक आलिङ्गन !
देखो०

मिटा ताप, छाई हरियाली
बनी अवनि की छटा निराली
किसने ये मादकता ढाली
सिहर रही है पल-पल मुद-मन !
देखो०

अपनी आहों का ही यह बल
बिहँस रही है वसुधा अविकल
पर, मेरे ही आँसू निष्फल
हुए, सदय जो बने न हृद्धन !
देखो०
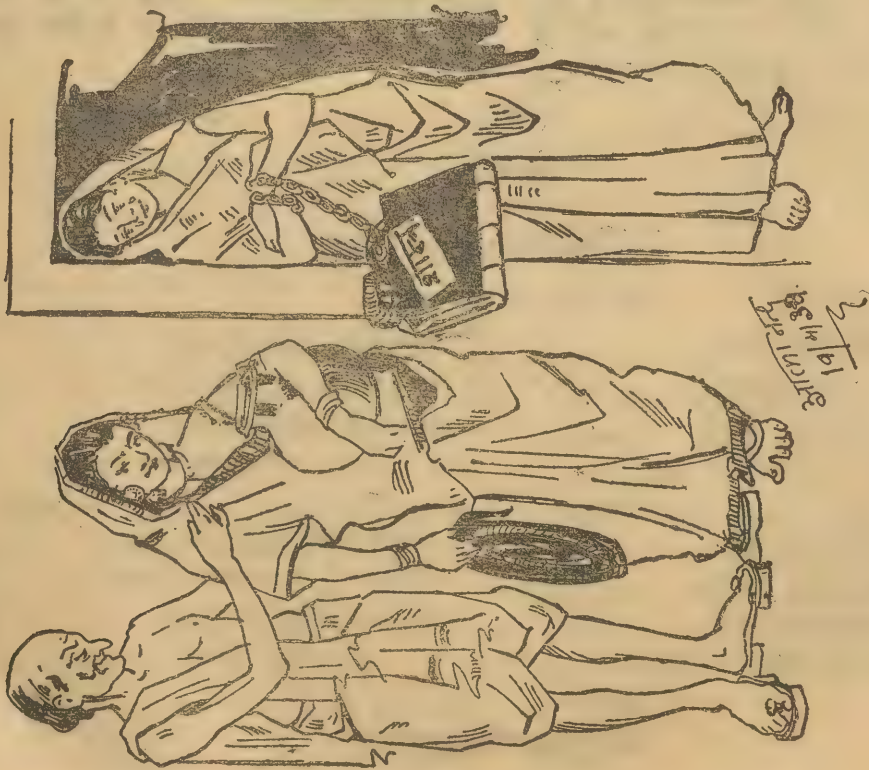
बाहर और भीतर

बाहर बूढ़े ससुर जी घर की दासी से प्रेमपूर्ण वार्तालाप कर रहे हैं और घर में वैधव्य की ज़ञ्जीर से जकड़ी हुई युवती बहू अपने भाग्य को रो रही है !

परदा-प्रेमिनी माता—(झरोखे से झाँक कर) "हाय रे कलिकाल ! बेहयाई की हद हो गई ! देखो न, लल्ला दिन-दहाड़े बहू से बातें कर रहा है !
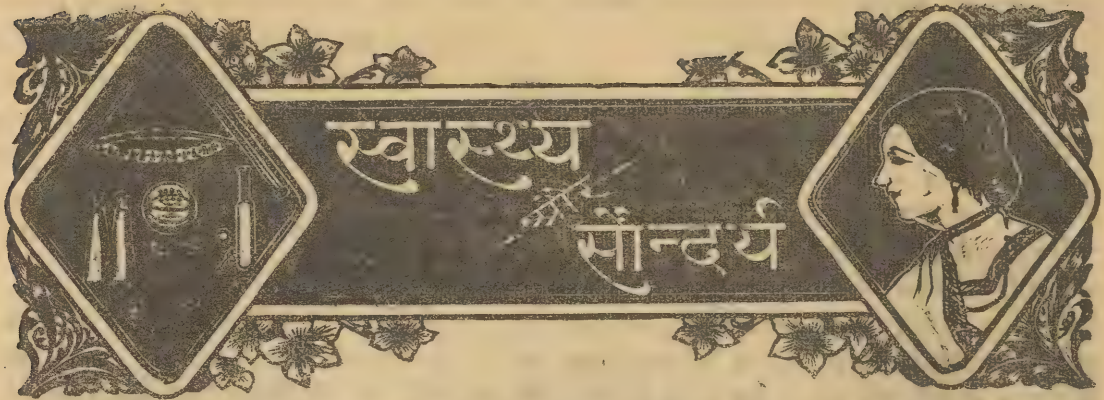
कान और उसका सौन्दर्य

[श्री० बुद्धिसागर वर्मा, बी० ए०, एल० टी०, विशारद]

अनाम देश में 'मोई' नाम की एक जाति है। वहाँ की जङ्गली माताओं का यह पहला कर्तव्य होता है कि वे कन्या के कान छेदें और उन छिद्रों को लकड़ी डाल-डाल कर बढ़ावें। फिर भारी-भारी बालियाँ पहनावें, ताकि कान लटक कर कन्धों तक पहुँच जावें। यदि इसके कारण कन्या का कान फट जावे, तो वह विवाह के लिए कुरूपा समझी जाती है और यदि कान बोझ से लटक कर स्तनों तक पहुँचने की प्रवृत्ति दिखावें तो युवती पूर्ण सुन्दरी मानी जाती है। बर्मा की स्त्रियों में भी कान छिदाने का रिवाज बहुत दिनों से चला आता है। वे भी कानों में लकड़ी डाल कर छिद्र बढ़ाती हैं और जब छिद्र काफ़ी बड़े हो जाते हैं, तो उनमें एक इञ्च लम्बी और पौन इञ्च मोटी लकड़ी डाल दी जाती है। कहते हैं कि प्रशान्त महासागर के द्वीप-समूह में भी ऐसे नर-नारी रहते हैं, जिनकी यह धारणा है कि ईश्वर ने उनके कान इसलिए बनाए हैं कि वे उनमें फूलों के गुच्छे या तम्बाकू की चोंगियाँ खोंसें। वे लोग कान के नीचे के मांसमय भाग को छेद कर धीरे-धीरे उसे यहाँ तक बढ़ाते हैं कि मनुष्य अपना हाथ कोहनी समेत उस छिद्र में से सरलतापूर्वक आर-पार कर सकता है। वे लोग इसे ही सुन्दरता समझते हैं।

हमारे देश में भी कानों की सुन्दरता पर ध्यान नहीं दिया जाता। बचपन से ही दर्जनों छिद्र करके उनमें बालियाँ डाली जाती हैं। जिस प्रकार चीनी महिलाएँ नाना कष्ट सह कर भी सुन्दरी बनने के लिए लोहे के जूते पहिनना स्वीकार करती थीं और जहाँ तक हो सकता था, पैर छोटा बनाने की चेष्टा करती थीं, ठीक उसी प्रकार भारतवर्ष की मूर्खा स्त्रियाँ भी नाना कष्ट सहन कर कानों के छिद्र बढ़ाने का प्रयत्न करती हैं। कन्याएँ कष्ट से रोती हैं, चिल्लाती हैं और कभी-कभी कान पक भी जाते हैं, किन्तु गहना पहनने का शौक़ नहीं मानता। विशेष कर बुन्देलखण्ड में, जहाँ ढारों के पहनने की प्रथा है, कानों के छिद्र बढ़ा कर बहुत बड़े कर लिए जाते हैं, जिससे कानों का स्वरूप अत्यन्त भद्दा हो जाता है। एक समय था, जब इङ्गलैण्ड की स्त्रियाँ भी इस मूर्खतामय रिवाज का शिकार थीं, किन्तु अब उन्होंने इसे छोड़ दिया है।

आभूषण

कर्णफूल और झुमके आदि भारी आभूषणों के पहनने से कानों का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। वे देखने में बहुत ही भद्दे मालूम होते हैं। कानों के लिए केवल हलके ज़ेवर—जैसे बुन्दे, रिङ्ग, आदि—पहनना ही श्रेयस्कर है। इसके लिए दर्जनों छेद कराने की आवश्यकता नहीं, कर्णवेध संस्कार के समय एक बार छिदाना पर्याप्त है।

रक्षा और सफ़ाई

कानों की सुन्दरता चाहने वालों को सदा ध्यान रखना चाहिए कि उन पर अनुचित दबाव न पड़ने पावे, नहीं तो कालान्तर में कानों की आकृति बिगड़ जाती है। कानों में यदा-कदा कड़ुआ तेल डालते रहना चाहिए। इससे कान के परदे मुलायम और तर रहते हैं; कभी-कभी बहिरापन भी दूर हो जाता है; शिर और नेत्रों के लिए भी तेल डालना उपयोगी है। स्नान के समय कर्ण-विवरों में उँगली फेर कर गर्द-गुबार साफ़ करते रहना चाहिए। यदि कान में मैल अधिक हो जाय, तो थोड़े से पानी में साँभर नमक घिस कर डाल देना चाहिए; इससे सारा मैल फूल जायगा; पश्चात् आधा छटाँक गुनगुने पानी में ४ रत्ती सोडा मिला कर इसकी पिचकारी से कान धो देना चाहिए। बिल्कुल साफ़ हो जायगा।

बबूल की फलियों का चूर्ण कान में डालने से उसका बहना बन्द हो जाता है। मूली के पत्तों को गरम करके उनका रस कान में छोड़ने से भी यही लाभ होता है।

प्रायः कान खुजलाते या मैल निकालते समय लोग बड़ी असावधानी से काम लेते हैं। इस प्रकार तिनके या सलाई आदि से बार-बार कान को छेड़ते रहने से परदा कमज़ोर हो जाता है और उसके फटने या विकृत होने का भय रहता है। पेन्सिल तो कभी भूल कर भी कान में न डालनी चाहिए, इसकी नोक टूट कर कान में रह जाने की दशा में कभी कान पक भी जाता है।

एक बार एक क्रोधी व्यक्ति ने अपने बालक की कनपटी पर ज़ोर का थप्पड़ मारा; अकस्मात् वह ठीक कान पर पड़ा और कान में जितनी हवा समा सकती थी उससे कहीं अधिक पहुँच गई और परदा इस प्रकार फट गया जैसे अधिक फूँकने से काग़ज़ का हवा भरा हुआ डिब्बा। कान के छेद पर धक्का देने या बलपूर्वक चूमने से भी कभी-कभी ऐसा ही हो जाता है। प्रायः बच्चों को खिलाते-खिलाते लोग कान के छिद्र पर मुँह लगा कर फूँक मारते हैं या ज़ोर से शब्द करते हैं; इससे कान में गुदगुदी उत्पन्न होती है और कभी-कभी वायु के धक्के से पर्दा फट जाता है और बालक जन्म भर के लिए बधिर हो जाता है। अतः इन बातों का ध्यान रखना चाहिए।

* * *

वर्षा

[कविवर आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव]

उज्ज्वल श्यामल जलद-दलों का
नभ में घुमड़-घुमड़ आना,
रिमझिम-रिमझिम जगती-तल पर
सुधा-सदृश जल बरसाना।

लता-सुमन-द्रुम-तृण समूह का
हरा भरा हो लहराना,
रहना मन्द कभी बतास का
कभी वेग से बह जाना।

कूक मारना पिक-मयूर का,
चिड़ियों का चह-चह गाना,
पुलक-पुलक पशुओं का फिरना
नगर-वनों में मनमाना।

खेल मचाना बाल-वृन्द का
घर-घर मृदु उमङ्ग लाना,
विरह-रहित नर-नारी-जन में
आना नव उमङ्ग नाना।

क्षितिज प्रान्त में कान्त दृश्य ला
मृदु धूमिलता का छाना,
जीवन[1] के शीतल सावन में
जग का नवजीवन पाना।

---

[1] जल

त्रिवान्द्रम् (मद्रास) के श्रीपद्मनाम स्वामी के विख्यात मन्दिर का एक मनोरम दृश्य ।

श्रीरङ्गम् (मद्रास) से एक मील के अन्तर पर स्थित विख्यात जम्बुकेश्वरम् मन्दिर का भीतरी दृश्य ।

श्री० सतीशचन्द्रसिंह—आप फ़र्रुख़ाबाद ज़िले के रहने वाले हैं और हाल में ही अमेरिका से सिनेमा सम्बन्धी कला सीख कर भारत लौटे हैं। विशेष परिचय इसी अङ्क में अन्यत्र देखिए।

हॉलीवुड (अमेरिका) की प्रसिद्ध भारतीय नृत्य-कला-विशेषज्ञा कुमारी आयशा उर्फ़ मिस डोरिस बूथ।
पूर्ण परिचय इसी अङ्क में अन्यत्र देखिए।

हॉलीवुड (अमेरिका) की प्रसिद्ध नर्तकी
कुमारी आयशा (डोरिस बूथ) द्वारा
भारतीय नृत्य-कला का प्रदर्शन

मदुरा (दक्षिण भारत) की एक सुउच्च मीनार। दक्षिण भारत में यही सबसे ऊँची मीनार है।

मदुरा की मीनाक्षी देवी के मन्दिर के सहस्र-स्तम्भ वाले मण्डप के खम्भों पर खुदाई का काम। इस मण्डप का प्रत्येक स्तम्भ एक ही पत्थर का बना है।

मैत्रेयी और अमृतत्व

[श्री० मैथिलीशरण 'नेहनिधि']

भारत का गौरवपूर्ण अतीत इतिहास जिन पुण्यशीला श्रेष्ठ नारियों की कल-कीर्त्ति से भरा हुआ है, उनमें मैत्रेयी का स्थान अन्यतम है। मैत्रेयी ने भारत के इतिहास पर अपनी स्वतन्त्र और विशिष्ट छाप लगा दी है; जिसकी तुलना विश्व के किसी स्त्री-चरित्र से नहीं की जा सकती। उसके जीवन में भारत की साधना और संस्कृति का एक विशेष रूप और एक विशेष ऐश्वर्य परिस्फुटित हुआ है। उसके चरित्र का अपूर्व माधुर्य और अतुलनीय आदर्श सम्यक् रूप से हृदयङ्गम करने से हमें वर्तमान अशान्ति, जीवन का द्वन्द्व और लाभ-हानि भूल कर मन्थर गति से भारतवर्ष की प्राचीन जीवनधारा के मध्य में पुनः अवगाहन करने का अवसर मिल सकता है।

उस समय संसार में इस प्रकार की विश्वग्रासी क्षुधा और हाहाकार नहीं था। मनुष्य मनुष्य में इस प्रकार का जटिल सङ्घर्ष नहीं हुआ था। शान्ति एवं स्वच्छन्दता के मध्य में मनुष्य की जीवनधारा अबाधित गति से प्रवाहित हो रही थी। चारों ओर अजस्र सुख-शान्ति विराज रही थी। उस आनन्दपूर्ण काल में, भारत के शान्तिमय तपोवन में, आरण्यक जीवन के पुलकोच्छ्वास के मध्य में, मैत्रेयी का अनुपम चरित्र विकसित हुआ था।

वैदिक युग में भारतवर्षीय धर्म-साधना के तीन स्तर देखने में आते हैं। सद्यः जाग्रत शिशु की आँखों में विश्व का चारु-छवि-समुद्र जिस प्रकार अपूर्व, अननुभूत, एक विपुल आनन्द का सञ्चार करता है, उसी प्रकार वैदिक ऋषि के प्रथम धर्म-बोध दीप्त अन्तर में, इन्द्रिय-ग्राह्य वस्तु के अन्तराल में जो अज्ञेय, असीम लीला करता था, उसी का आभास जागरित होने से ऋषि पुलकित छन्द में अग्नि, पवन, आकाश आदि का जयगान गाने लगे।

साधना जिस समय गम्भीरतर हुई, उस समय ऋषियों ने समझा, समस्त देवता एक ही देवादिदेव के विभूति मात्र हैं; एक ही देवता के विभिन्न प्रकाश और आविर्भावत्व ही भिन्न-भिन्न देवताओं के नाम से पूजे जाते हैं। ब्रह्मविद् ध्यान-समाधि से अवगत हुए—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निम् आहुः
अथोदिव्यः सः सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सम विप्रा वहुधा वदन्ति
अग्निं यमं मातरिश्वानम् आहुः॥

अर्थात्—"इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि वास्तव में एक ही हैं। केवल द्रष्टा ऋषियों ने उनको विविध एवं विभिन्न उपाधि से परिकल्पित किया है।"

किन्तु अभी भी यात्रा समाप्त नहीं हुई। जो अनिवर्चनीय हैं उनको यहाँ एक शक्तिमान देवता रूप से विचार करते हैं। किन्तु पश्चात्, उपनिषद् के युग में, गम्भीर साधना से, जगत् का श्रेष्ठतम ज्ञान ब्रह्मज्ञान लाभ करके ऋषियों ने ब्रह्म-तत्व का प्रचार किया। इसी वेद के सार-भाग को वेदान्त कह कर पुकारते हैं। उपनिषद् के इसी ब्रह्म-साधना के गौरवोज्ज्वल युग में हमारी चरित-नायिका ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी ने भारतवर्ष की धूलि को पवित्र किया था। याज्ञवल्क्य की ख्याति वैदिक साहित्य में असामान्य है। वृहदारण्यक नामक सुविख्यात उपनिषद् के वे प्रधानतम उपदेष्टा थे। वृहदारण्यक के छठे अध्याय के तृतीय ब्राह्मण को वाजसनेय कहा जाता है। याज्ञवल्क्य-प्रवर्त्तित शुक्ल यजुर्वेद को वाजसनेय संहिता

कहते हैं। विदित होता है, याज्ञवल्क्य के किन्हीं पूर्व-पुरुष का नाम वाजसान रहा होगा। उनके (याज्ञवल्क्य के) समय में सर्वापेक्षा उन्होंने ही ब्रह्मज्ञान में पारदर्शिता लाभ किया था।

एक बार मिथिलाधिपति महाराज जनक ने सम-सामयिक ऋषियों के मध्य कौन सर्वापेक्षा ब्रह्मिष्ठ है, यह जानने के लिए समुत्सुक होकर यज्ञ किया। सुवर्ण-मण्डित शृङ्ग वाली एक सहस्र गौत्रों को समवेत कर उन्होंने ब्राह्मणों से कहा—"हे भूसुरगण! आप लोगों के बीच में जो सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मिष्ठ हों, वे ही इन गौत्रों को ग्रहण करें।"

विराट् सभा-क्षेत्र में नाना देशों से आये हुए ब्राह्मणों के बीच में, किसी ने आगे बढ़ने का साहस नहीं किया। उस समय परम ज्ञानी, आत्म-विश्वासी याज्ञवल्क्य ने निर्भय होकर सामश्रव नामक शिष्य को गायों को ले जाने को कहा। उस समय जनक की सभा में दर्शन की कूट-समस्या को लेकर अश्वल, आर्त्तभाग, भुज्यू, उषस्त, कहोल, उद्दालक और शाकल्य ब्रह्मविद् ऋषियों के सहित और वाचक्री गार्गी के साथ उपस्थित थे। सब ने याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ किया। परन्तु सभी उनके गम्भीर ब्रह्मज्ञान के सामने हार खा गये। उद्दालक, आरुणि उनके गुरु थे; किन्तु उन्होंने भी योग्य शिष्य के हाथों आनन्दोत्फुल्ल चित्त से पराजय स्वीकार किया। इन्हीं विदेह-निवासी असामान्य प्रतिभावान ऋषि की पत्नी मैत्रेयी थीं।

मैत्रेयी के साधारण जीवन का विशेष परिचय कुछ नहीं पाया जाता है। उसकी शैशव-शिक्षा और दीक्षा का, उसके यौवन-प्रेम और प्रीति का, उसके नारी-जीवन के सुख-दुख आदि का वृत्तान्त उपनिषत्कार ऋषियों के द्वारा हमें कुछ नहीं मिलता। उसके जीवन का विकाश किस शुभ मुहूर्त्त में हुआ और कब उसमें ब्रह्म-पिपासा का उद्रेक हुआ था; किस प्रकार दिनोंदिन तपोनिष्ठ और ब्रह्मपरायण पति के सहवास में उसकी वृद्धि होती गई, इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। ऋषि-कन्यकाओं के साथ, तपोवन के स्नेहावेष्टन में, मैत्रेयी के हास्य एवं लास्य से दिगन्त मुखरित हुआ था। ऋषि-वधू होकर त्याग और संयमोज्ज्वल, सुपवित्र एवं शुचि-सुन्दर जीवन उसने यापन किया। केवल कल्पना के द्वारा उसके माधुर्य और सौन्दर्य का उपभोग करने के सिवा और अन्य कोई उपाय नहीं है।

ब्रह्मविद् याज्ञवल्क्य जी की दो पत्नियाँ थीं—कात्यायनी और मैत्रेयी। कात्यायनी ने धर्म और ब्रह्म-जिज्ञासा की ओर ध्यान नहीं दिया। साधारण नारी की तरह उसने जीवन यापन किया। उसको स्त्री प्रज्ञा कह कर अभिहित करते हैं। किन्तु मैत्रेयी ने वैराग्य, त्याग और मुमुक्षता के जीवन का अनुभव करना सीखा था। योग्य स्वामी की योग्य पत्नी, शास्त्रों में ब्रह्मवादिनी कह कर पुकारी जाती है।

भारतवर्ष के सामाजिक जीवन में उस समय चारों आश्रमों का अव्याहत प्रभाव था। गृही का सुकठोर कर्त्तव्य-निचय सम्पन्न करके याज्ञवल्क्य ने प्रव्रज्या अवलम्बन करने का निश्चय किया। किन्तु वानप्रस्थ ग्रहण करने के पूर्व प्रियतमा पत्नियों के मध्य अपनी यत-सामान्य सम्पत्ति वितरण करने का निश्चय किया।

कात्यायनी जीवन के अवशिष्ट दिन यापन करने के लिए, धनैश्वर्य्य के लिए व्यग्र थी। किन्तु मैत्रेयी ने याज्ञवल्क्य का वक्तव्य सुन कर प्रश्न किया—हे प्रभु, यदि ससागरा पृथ्वी धन से परिपूर्ण हो, तो मैं क्या 'अमृत' हो सकूँगी?

ऋषि प्रसन्न और विस्मित हुए। स्नेह-विगलित स्वर में उन्होंने कहा—धन और सम्पद अमृत-सुधा आहरण नहीं कर सकते हैं। मैत्रेयी ने उस समय प्रफुल्ल कण्ठ से उत्तर दिया—"येनाहं नामृतास्यां किमहं तेन कुर्याम्?" अर्थात्—"जिससे अमृतत्व लाभ नहीं कर सकती उसे लेकर मैं क्या करूँगी?" कितने हज़ार वर्ष पहले यह महावाणी उच्चरित हुई थी! तथापि काल के व्यवधान और समस्त विवर्त्तन के मध्य होकर आज भी भारतवर्ष का यह शाश्वत सुर हमारे कानों में मधुर सुधा-धारा उँड़ेल देता है। यह हमारा कितना परिचित सुर है। हमारा शिल्प और साहित्य, हमारी आशा और आकांक्षा का यही अमृतत्व सुर चिरन्तन ध्वनि कर रहा है। भारत की यही संस्कृति, यही उसका वैशिष्ट्य और यही उसकी सभ्यता और साधना है।

भारतवर्ष साम्राज्य नहीं चाहता, वह विजय-कीर्त्ति नहीं चाहता, वह गौरव और अहङ्कार की सीमा का उल्लङ्घन करना नहीं चाहता। मृत्यु की गोद में उसने अमृत की पूजा की है। दुःख और लाञ्छना की उपेक्षा करके दारिद्रय और चैतन्य को उसने वरण किया है। भारतवर्ष है अमृतत्व का भूखा। आज भी उसका हृदय-सम्राट गाँधी उसी अमृतत्व के लिए अहर्निश व्यग्र रहता है। भिखारी शिव उसका देवता, जीवन का विष पान करके नीलकण्ठ के समान अमृत जागरण के लिए ही उसकी (भारत की) तपस्या है। काम और कामना उसकी तपस्या की अग्निशिखा से दग्ध और भस्मीभूत हो गए हैं। संसार के बेड़ी-जाल को काट कर असीम के सहित ससीम-जीवन को ऐक्य कर देने के लिए यहाँ के योगी और साधक कठोर साधना करते आए हैं।

मैत्रेयी की वाणी उसी भारतवर्ष की वाणी है। भारत की आत्मा आज भी मानों मैत्रेयी के स्वर में स्वर मिला कर गाती है—

"येनाहं नामृतास्यां किमहं तेन कुर्य्याम् ?"

मैत्रेयी का कथन ही हमारे लिए अनवय आनन्द का उत्स, असमाप्त उत्साह की भित्ति, अशेष अनुराग की वस्तु है। याज्ञवल्क्य प्रियतमा पत्नी का यह अपूर्व प्रश्न और उत्तर सुन कर विस्मय, आनन्द-सागर में मानों डूब गए। ऋषि के मन में भी मानों खोया यौवन-सुख जाग्रत हो उठा। प्रीतिसिक्त वाणी में वे बोले—"हे मैत्रेयी, तुम मेरी परम प्रिय पात्री हो, तुम्हारे मधुर वाक्य से मैं और भी प्रसन्न हुआ। आओ, तुम्हें अमृतत्व की व्याख्या सुनाऊँ।"

याज्ञवल्क्य ने उस समय मैत्रेयी को आत्मतत्व का उपदेश दिया। वे बोले—पति, पुत्र, जाया उनके विचार से अपने लिए प्रिय नहीं, आत्म-प्रीति के लिए ही पति, पुत्र, जाया प्रिय हैं। किन्तु ब्राह्मण, देवता और प्राणी किसी को अपने लिए प्रीतिभाजन नहीं, आत्मा की प्रीति के लिए ही सब वस्तु और सब प्राणी प्रिय हैं। अतएव इसी आत्मा को जानना चाहिए।

आत्मतत्त्व भारतवर्ष की दार्शनिक चिन्ता का और गम्भीर साधना का मूलाधार है। आत्मा का अर्थ था निश्वास। पश्चात्, आत्मा देह और प्राण के अर्थ में व्यवहृत होने लगा। तत्पश्चात् चिन्ता और धारणा के विकाश के साथ-साथ मनुष्य की अन्तर्निहित शक्ति वा पुरुष के विचार से आत्मा का प्रयोग होने लगा। अन्त में दार्शनिक जिज्ञासा की उन्नति के साथ-साथ आत्मा ने एक अपूर्व संज्ञा और अभिधा लाभ किया; जो सहज में समझ में नहीं आ सकता।

इस आत्मा को केवल मनुष्य का अन्तर्यामी पुरुष मान लेने से ग़लती होगी। देह के क्षुद्र नीड़ में उसका आवास होते हुए भी नीड़ के बाहर विराट् को पाने के लिए उसकी लुब्ध दृष्टि लगी हुई है। नीड़ के नष्ट होने से यह जीवात्मा परमात्मा में विलीन हो जाता है। उसी मृत्युहीन अक्षय एवं अमर शक्ति ने विश्व-भुवन को ओत-प्रोत कर रक्खा है। मनुष्य के मन में जो अन्तर-देवता कार्य करता जाता है, असीम और अज्ञेय के साथ उसका अविछिन्न सम्बन्ध है। जागनिक, जिस समय वस्तु-सम्भार को खण्ड-खण्ड करके देखता है, उसी समय उनको नहीं समझ सकता है। किन्तु जब समझ जाता है, उसका एक अखण्ड आनन्दरूप आत्मा उसी समय अज्ञान के तमोमय जाल को फाड़ देता है और हम सत्य के दिव्योज्ज्वल रूप के सम्मुख अनन्त आनन्द में आप्लुत होते हैं।

छान्दोग्य उपनिषद् के प्रजापति-इन्द्र सम्वाद में इसी आत्मतत्त्व के उद्भव का एक चमत्कारपूर्ण इतिहास पाया जाता है। प्रजापति ने इन्द्र से कहा—"जरा, मरण, दुःख, शोक, पाप, क्षुधा, जिसको स्पर्श नहीं करते हैं, वही आत्मान्वेषण कर सकते हैं।" इन्द्र ने प्रथम समझा कि देह आत्मा नहीं है। कारण, देह का तो विनाश है, आत्मा का नहीं। इन्द्र ने क्रमानुसार आत्मा की जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था की कथा सुनी।

प्रजापति ने समझाया—"स्वप्नावस्था में आत्मा का स्वरूप प्रकट होता है। क्योंकि आत्मा उस समय शरीर के बन्धन से निकल मुक्तावस्था में भ्रमण करता है।" किन्तु इन्द्र को इससे तृप्ति नहीं हुई। उन्होंने सोचा—"स्वप्न की कल्पना आत्मा को पीड़ित और व्यथित करती है। स्वप्नावस्था में मनुष्य चिन्ता-धारा के साथ प्रवाहित होता है।" प्रजापति उस समय बोले—"सुषुप्ति से आत्मा का साक्षात्कार पाया जाता है। सुषुप्ति में इन्द्रिय-ग्राह्य विषय नहीं रहता है। ज्ञेय वस्तु नहीं रहती है। किन्तु सुषुप्ति के पहले ज्ञान रहता है, पश्चात् भी रहता

है। इसी अवस्था-परिवर्तन के बीच ज्ञान की स्थिति, आत्मा की नित्यता का प्रमाण है।" इन्द्र ने पूछा—"ज्ञेय, ज्ञाता, विषय और विषयी यदि नहीं रहते हैं तब सुषुप्ति के समय आत्मा विनाश को प्राप्त होता है?" उस समय प्रजापति ने समझाया—"विषय को जो जानते हैं, जिन्होंने ज्ञान लाभ किया है, नेत्रों का नेत्र, श्रोत्रों का श्रोत्र वही आत्मा है। विषयी आत्मा जिस समय शरीर के सहित अपने को अभिन्न समझता है, उसी समय उसको दुःख और हर्ष अभिभूत करता है। शरीर के सहित अपने को भिन्न समझने से ही आत्मा का दुःख-क्लेश तिरोहित हो जाता है।"

उपनिषद् के विचार से आत्मा असीम, अनन्त, सर्वव्यापी, चैतन्यमय और विज्ञानमय है। समस्त विकल्प और विवर्त्तन के बीच होकर आत्मा अपनी ज्योति से ज्योतिर्मान होकर आनन्दरूप से वर्तमान है। जीवात्मा और परमात्मा के सम्बन्ध को लेकर भिन्न-भिन्न मतवाद हुए हैं। किसी के मत से जीवात्मा और परमात्मा अभेद है, अद्वैत आत्मा ही एक तत्त्व है। दूसरे कहते हैं, सर्वाधार अथच परमात्मा के सिवाय कुछ नहीं होने से भी व्यष्टि चैतन्य का पृथक् पारमार्थिक अस्तित्व है।

आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध को लेकर अद्वैतवाद, द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, भेदोभेदवाद प्रभृति भिन्न-भिन्न मत और साधन-प्रणाली उत्पन्न हुई है। इस लेख में उसकी विशेष आलोचना करना सम्भव नहीं है।

याज्ञवल्क्य के मत से आत्मा अद्वैत, विषय और विषयी, ज्ञाता और ज्ञेय, ससीम और असीम, शान्त और अनन्त, खण्ड और अखण्ड है। वैचित्र्यमय विश्व की अनन्त वस्तुओं के मध्य में एक ही वस्तु नहीं, समस्त वस्तुएँ आत्मा के द्वारा अनुप्राणित होती हैं। आत्मा को न जानने से और उसके साथ विभिन्न वतुओं का सम्बन्ध न जानने से सम्यक् ज्ञान होने की सम्भावना नहीं है। आत्मतत्त्व के प्रति दृष्टिपात न कर वस्तुओं और विश्व के ज्ञान-लाभ का प्रयास करना व्यर्थ है।

याज्ञवल्क्य ने इसीलिए मैत्रेयी को उपदेश दिया कि जो व्यक्ति भूतसमूह को आत्मा से पृथक् मानते हैं, भूतसमूह उसे परित्याग कर देते हैं। जो व्यक्ति समुदाय-वस्तु को आत्मा से पृथक् समझते हैं, समुदाय-वस्तु उसे त्याग कर देते हैं।

तत्पश्चात् याज्ञवल्क्य ने कितने ही आध्यात्मिक तत्त्व मैत्रेयी को समझाये। उन्होंने कहा—"महान आत्मा इसी समुदायभूत से उत्थित होकर उसी में विनाश को प्राप्त होता है। मृत्यु के बाद आत्मा की और कोई संज्ञा नहीं है।"

मैत्रेयी ने श्रद्धावनत चित्त से अपने ब्रह्मविद् पति की बातें सुनीं। मृत्यु के बाद आत्मा की कोई संज्ञा नहीं रहेगी; ज्ञान, प्रेम, चैतन्य, कर्मशक्ति प्रभृति आत्मा के प्रेय यदि नहीं हैं, तब संज्ञाहीन आत्मा के अनन्त अस्तित्व का क्या प्रयोजन? मैत्रेयी ने सङ्कोच और सन्देह के साथ कहा—"भगवन्, मृत्यु के बाद संज्ञा नहीं रहेगी, यह कह कर आप क्यों हमें मोहग्रस्त कर रहे हैं?" योगी सत्तम याज्ञवल्क्य ने कहा—"हे प्रिये! मैं कुछ मोह पैदा करने वाली बात नहीं कह रहा हूँ। आत्मा अविनाशी और उच्छेद-विहीन है। जीवितावस्था में मनुष्य की बुद्धि में ज्ञेय-ज्ञाता, विषय-विषयी के भेद हैं, किन्तु मृत्यु के बाद यह भेद चला जाता है, सुतरां कोई ज्ञान नहीं रहता है। ज्ञान के लिए ज्ञेय और ज्ञाता होना चाहिए।"

याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी की परम रमणीय आख्यायिका यहाँ समाप्त होती है। भारतवर्ष नारी, धन, जन, सम्पद और विलास का मोह भूल कर अमृतत्व की रसधारा चाहता था, यह कल्पना करने ही से मन अपूर्व आनन्द-रस में सिक्त हो जाता है। भारतवासी स्त्रियों को इस समय दासी बना कर रखना चाहते हैं। उन्हें ख़याल रखना चाहिए कि भारत की स्त्रियाँ पुरुषों की सहधर्मिणी हैं। उन्हें पैर की जूती समझने ही से आज भारत अन्धकार के भयङ्कर गर्त में पतित हुआ है। जिस दिन अभागा भारत स्त्रियों की क़द्र करना पुनः सीख लेगा, वह दिन अवश्य ही उसके लिए मङ्गल-प्रभात लावेगा। सत्य और ज्ञान के चिर-वर्द्धमान यात्रा-पथ में नारी पुरुष की प्रिया सहचरी है। तमसाच्छन्न भारतवर्ष पुनः मैत्रेयी सरीखी रमणियों का जनक हो, यही हमारी आन्तरिक कामना है।

[सम्पादक—श्रीयुत नीलू बाबू]

सुघरई—झपताला मात्रा १०

[शब्दकार तथा स्वरकार—श्रीयुत नीलू बाबू

स्थायी—रिमझिम पनियाँ तो बरसन लागे, श्याम बिना कछु नीको न लागे।
अन्तरा—निशि अँधियारी कारी मोहे डरपावे, काह करूँ मोरा जिया नहीं लागे॥

स्थायी

×		३			०		१		
		क					क		
सं	सं	नी	ध	प	म	प	मग	रेस	रे
रि	म	झि	इ	म	प	नि	याँआं	आंआं	तो
क	क								
ग	ग	म	—	प	रे	—	स	—	—
ब	र	स	—	न	ला	—	गे	—	—
							क		
स	रे	म	—	प	ध	प	नी	—	ध
श्या	आ	म	—	बि	ना	आ	क	—	छु
					क				
म	प	मप	ध	प	ग	रे	स	—	—
नी	ई	को	ओ	न	ला	आ	गे	—	—

अन्तरा

म	म	प	नी	नी	सं	सं	सं	—	सं
नि	शि	अँ	अँ	धि	या	री	का	—	री
							क		
नी	सं	नीसं	रें	सं	ध	सं	नी	—	ध
मो	हि	डअ	अ	र	पा	आ	वे	—	ए
		क					क		
सं	—	नी	ध	प	म	प	मग	रेस	रे
का	—	ह	अ	क	रूँ	ऊँ	मोओ	ओओ	र
क	क								
ग	ग	म	—	प	रे	—	स	—	—
जि	या	न	—	हिं	ला	—	गे	—	—
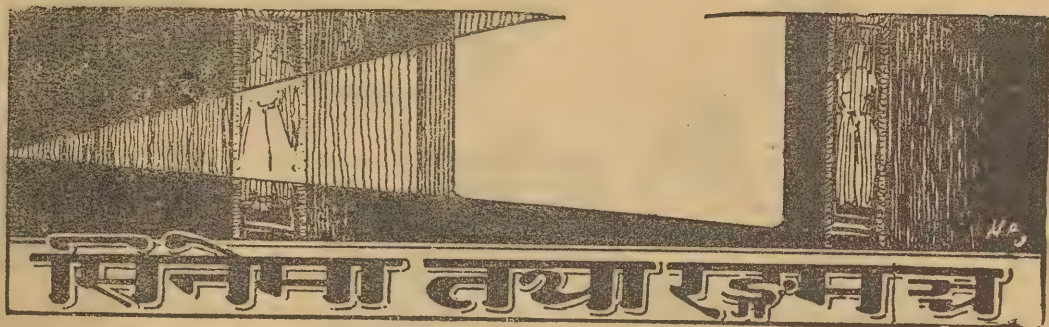
हॉलीवुड के मेरे कुछ अनुभव

[श्री० सतीशचन्द्रसिंह]

लगभग डेढ़ वर्ष हुआ, एक अकेला परदेशी फ़िल्म डिरेक्टिङ्ग की कला सीखने के लिए हॉलीवुड पहुँचा। वह किसी को न जानता था। हाँ, रुपया थोड़ा-बहुत उसके पास था। वही उसका साथी, मित्र, सब-कुछ था। वह परदेशी था मैं !

मुझे यह ज्ञात होने में अधिक समय न लगा कि मैंने भी वही भयानक भूल की थी, जो जवानी के जोश में आकर अधिकतर नवयुवक करते हैं। मैं एक ऐसे कार्य में अग्रसर हो पड़ा था, जिसके विषय में कुछ अधिक जानकारी न थी। तात्पर्य यह है कि हॉलीवुड में यह कला सीखने के लिए कैसे प्रवेश किया जाय, किससे कहा जाय और किससे मिला जाय। इन सब बातों की मुझे कोई जानकारी न थी। फलतः ऐसी दशा में जो होता है वही हुआ। मैंने एक संस्था के पश्चात् दूसरी संस्था में प्रवेश करके धन बहाना प्रारम्भ किया। परन्तु उससे कुछ लाभ न हुआ। हाँ, इतना अवश्य ज्ञान हो गया कि एक कक्षा की चहारदीवारी के अन्दर बैठ कर प्रोफ़ेसर का लेक्चर सुनने से उस कला का ज्ञान तथा अनुभव नहीं प्राप्त हो सकता, जोकि एक योग्य डिरेक्टर को चाहिए। केवल स्टुडियो (Studios) ही ऐसे स्थान थे, जहाँ कुछ लाभ हो सकता था। परन्तु किसी की विशेष जान-पहिचान तथा सिफ़ारिश के बिना स्टुडियो में काम करना तो दूर, प्रवेश करना भी कितना कठिन है, यह मेरे मस्तिष्क में शीघ्र ही घुस गया। खिन्नतापूर्ण निराशा से मेरा हृदय भर आया। इन बेढङ्गी संस्थाओं के लेक्चरों से अनुभव प्राप्त करने में धन नष्ट करने के लिए मैं अब तैयार न था। इसलिए मैंने अपनी नोटबुक और पेन्सिल उठाई और लास एञ्जिल्स (Los Angeles) और हॉलीवुड (Hollywood) के थियेटरों में नवीन से नवीन फ़िल्मों को देखना और उनसे नोट लिखना मैंने प्रारम्भ किया। शीघ्र ही ज्ञात हो गया कि सावधानी से चुनी हुई फ़िल्मों से लिए गए ये नोट कहीं अधिक मूल्यवान थे, बनिस्बत उन सब लेक्चरों के नोटों के, जिन्हें मैंने तमाम हॉलीवुड की संस्थाओं में रह कर लिए थे।

एक दिन मैं नोट लेने के हेतु एक फ़िल्म चुनने के विचार से 'लास एञ्जिल्स टाइम्स', नामक पत्र देख रहा था कि मेरी दृष्टि एक सङ्गीत-समारोह की सूचना पर पड़ी। श्रीमती 'आयशा' एक नाट्य-भवन में नृत्यकला दिखाने वाली थीं, जिसके विषय में इससे पहले मैं 'चाँद' में लिख चुका हूँ। परन्तु उसमें दो-एक विशेष बातों का उल्लेख नहीं कर सका हूँ। इसलिए उन्हें अब पाठकों के सम्मुख रखता हूँ।

जैसा मैं पहले कह चुका हूँ, मुझे अत्यन्त गर्व हो रहा था कि आज भी भारतवर्ष अपनी ही पुत्रियों में से एक को, एक बार फिर कला की वेदी पर भेंट चढ़ा कर, इस प्रसिद्ध थियेटर में उस समय का स्मरण कराने भेज रहा है, जबकि प्रसिद्ध कलाविज्ञ पारलोरा, रौशनआरा, रूथ सेण्ट डेनिस और पैडेरवस्की ने गायन-वादन-नृत्य की कला को इस संसार में एक बार ही अमर कर दिया था।

कैसे मैं श्रीमती आयशा से भेंट करने गया और किस तरह मुझे ज्ञात हुआ कि आप भारतीय नहीं, अमेरिकन हैं, यह सब मैं पाठकों को अपने पहिले लेख में बता चुका हूँ। हाँ, मिलने पर आपने कहा—

"कठिनाई तो यह है कि यहाँ ठीक भारतीय नृत्य सीखना असम्भव है। मैंने जो कुछ भी किया है, वह कुछ भारतीय पुस्तकों को पढ़ कर और कुछ भारतीय चित्र देख कर। परन्तु मेरी प्रबल इच्छा है कि मैं भारतवर्ष से ठीक भारतीय नृत्य सीख कर आऊँ और यहाँ के लोगों को, जिनके लिए भारतीय नृत्य स्त्रियों के अर्द्धनग्न-अवस्था में "tom—tom" (ढोल) के साथ भद्दे भाव प्रदर्शन करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है—प्राचीन भारतीय नृत्य का सभी आध्यात्मिक रूप दिखा सकूँ।"

इसके पश्चात् आप मेरा कुछ हाल जानने के लिए उत्सुक प्रतीत हुईं। मैंने अत्यन्त प्रसन्नता के साथ आपको अपनी प्रबल इच्छाओं के विषय में, जिनकी पूर्ति के लिए मैं हॉलीवुड आया था, बताया। यह भी बताया कि अभी तक कितनी कठिनाइयों का सामना होता आया है। आपने कहा—"हाँ, कठिनाइयाँ तो अवश्य हैं। पर क्या आपको मेरी किसी प्रकार की सहायता स्वीकार होगी?" मैं भला ऐसे अवसर से क्यों चूकता? बोला—"धन्यवाद, क्यों नहीं? बड़ी कृपा होगी।" आप उस समय फ़ॉक्स स्टुडियो के सङ्गीत और नृत्य-विभाग की परामर्शदात्री थीं। दूसरे दिवस आज्ञानुसार स्टुडियो में मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ और आपने कई डिरेक्टरों से मेरा परिचय करवाया। उन्हीं के द्वारा मुझे स्टुडियो में कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ और जिसके लिए मैंने इतनी कठिनाइयाँ उठाई थीं, उसकी ओर तीव्र वेग से अग्रसर हुआ।

यह कदाचित् उनके लिए, जिनके हृदय में हॉलीवुड जाने की नई उमङ्गें उठ रही हैं, एक लाभदायक उदाहरण होगा।

आयशा

अब मैं श्रीमती आयशा का थोड़ा सा परिचय 'चाँद' के पाठकों को देना चाहता हूँ। आपका जन्म सन् १६११ ई० के जनवरी मास में न्यूयॉर्क में हुआ था। आपके पिता एक बैङ्क के साधारण क्लर्क थे और आपकी माता एक नर्स थीं। आपकी माता की प्रबल इच्छा थी कि वे एक नर्तकी हो सकें, पर उनका शरीर असाधारणतया कठोर था। नृत्य के लिए बड़े ही कोमल शरीर की आवश्यकता होती है। इससे वे उसमें सफल न हो सकीं। परन्तु वे नृत्य के पीछे पागल थीं।

आप समझ ही सकते हैं कि ऐसी माँ की प्रकृति का बच्चे के ऊपर क्या प्रभाव पड़ेगा। वही हुआ। जैसे ही आयशा ने, जिनका अमेरिकन नाम डोरिस बूथ (Doris Booth) है, चलना आरम्भ किया, वैसे ही नृत्य करना भी प्रारम्भ हो गया। कहीं सङ्गीत होता, आप ठीक ताल देने लगतीं।

एक दिन आपके पिता बैङ्क की ओर से एक पार्टी में निमन्त्रित थे। अपनी माता के साथ आप भी वहाँ गई थीं। उस समय आपकी अवस्था केवल २॥ वर्ष की थी। वहाँ लोगों को नाचते देख आपको भी नाचने की सूझी। सब लोग अपने-अपने पार्टनर्स (साथी) के साथ नृत्य कर रहे थे। आपको भी पार्टनर्स की खोज हुई। कहते हैं, आपको बचपन में सुन्दर नुकीली फ़्रैन्च दाढ़ी वाले पुरुष अधिक पसन्द थे। बस आपने नाचते हुए भीड़ में से एक दाढ़ी वाले को अपनी ओर आकर्षित किया और उसे अपने साथ नृत्य करने को आमन्त्रित किया। संयोगवश यह सज्जन थे डैनियल-फ़्रोमैन, जो कि आजकल भी न्यूयॉर्क में हैं और संसार में रङ्गमञ्च विद्या के सबसे बड़े ज्ञाता माने जाते हैं।

वे आपके साथ नाच कर बड़े प्रसन्न हुए और आप में इतनी छोटी अवस्था में ही नाचने की असाधारण योग्यता देख कर आपकी माँ के पास गए और आयशा को अपने साथ रख कर नृत्य सिखाने की आज्ञा माँगी। माता के हर्ष का वारापार न रहा। भला कुँआ प्यासे के पास आया! फिर क्या, आयशा की शिक्षा प्रारम्भ हुई और ४ से ५ वर्ष की अवस्था में ही आप संसार में सबसे छोटी आयु वाली, सबसे निपुण भाव-नृत्य करने वाली प्रसिद्ध हुईं। आपका नाम चारों ओर फैल गया। यहाँ तक कि भूतपूर्व क़ैसर ने आपको भोज के लिए निमन्त्रित किया। आपको चैन कहाँ? बाजा बज ही रहा था। आपने खाना भी नाच-नाच कर ही खाना प्रारम्भ किया। क़ैसर बहुत प्रभावित हुए। आयशा की माँ को बधाई दी और कई इनामों के अतिरिक्त

आपको अपने नाम का एक विशेष पदक प्रदान किया। मेरी पिकफ़ोर्ड, जोकि आजकल की सबसे विख्यात नर्तकियों में से एक हैं, भी बड़ी प्रभावित हुईं। आपने भी एक दावत आपको दे ही डाली। तब से अभी तक आप दोनों में बड़ी मित्रता है।

ख़ैर, लगभग नौ वर्ष तक आपकी बड़ी धूम रही। पश्चात् न्यूयॉर्क के एक लखपती ने आपको शिक्षा देने के लिए, आपकी माँ से आपको माँगा। माँ बेचारी ने भी सच्चे त्यागी का उदाहरण दिया। प्रगाढ़ ममता होते हुए भी वह आपसे पृथक् होने को तैयार हुईं और आप उक्त सज्जन के यहाँ रह कर शिक्षा पाने लगीं। पर आप थीं बड़ी स्वतन्त्रता-प्रिय! माँ से भी आपका प्रगाढ़ स्नेह था। आपने हठ प्रारम्भ किया कि माँ के पास जाऊँगी। आप पर सख़्ती की गई। फल यह हुआ कि लगभग १० वर्ष की अवस्था में आप पहला अवसर पाते ही घर से भाग खड़ी हुईं और फिर अपनी माँ की सेवा में उपस्थित हुईं। माँ के हर्ष का पारावार तो कदाचित् स्नेहमयी माताएँ ही पा सकती हैं।

माता ने भी कुछ दिनों पश्चात् आपको स्कूल जाने की सम्मति दी। आपने उनकी आज्ञा को शिरोधार्य किया। लगभग १६ वर्ष की अवस्था में आपने हाई-स्कूल की परीक्षा पास की। आप इससे अधिक नहीं पढ़ना चाहती थीं। माँ ने ज़ोर दिया कि और पढ़ा जाय। आपने कुछ न कहा। माता के ख़िलाफ़ कुछ कहना तो आपने सीखा ही न था। चुपचाप फिर कॉलेज में दाख़िल हुईं। लेकिन मन आपका रङ्गमञ्च पर था। फलतः आप उदासीन रहने लगीं। आपके स्वास्थ्य पर भी इसका असर पड़ने लगा। शरीर भी कुछ भारी हो चला।

छुट्टियों में माँ ने जो यह देखा तो ताड़ गईं। आख़िर वे भी तो इनकी नस-नस पहिचानती थीं। चुपके से इनका मुँह चूमा और क्षमा माँग ली। फिर क्या था? बरसों की छिपी हुई आग फिर भड़की। एक बार फिर आपकी अमेरिका भर में धूम हो गई। आपको सब स्थानों से बुलावे आने लगे। फलतः आपने अमेरिका भर में विचरण करना प्रारम्भ किया और तीन वर्ष तक बराबर घूमती रहीं। सन् १९३० में आप केलीफ़ोर्निया पहुँचीं और लास-एञ्जिल तथा हॉलीउड में अपनी कला दिखाई। वहाँ बड़ी सफलता प्राप्त हुई और आपको स्टूडियों से बुलावे मिले। पर आप ऐक्टिङ्ग करना पसन्द नहीं करतीं। यह एक नवीन बात है, जो साधारणतया वहाँ की किसी और स्त्री में कदाचित् ही मिले। इसलिए आपने परामर्शदात्री की पदवी स्वीकार कर ली। आप बहुत सादा और धार्मिक जीवन व्यतीत करती हैं और सन्ध्या समय सोने से पहिले नित्य ही गीता का पाठ करती हैं। यही आपका छोटा सा जीवन-चरित्र है।

आपके जीवन में ऐसी भी कुछ विशेष घटनाएँ हुई हैं, जिनका यहाँ उल्लेख नहीं किया गया है। समय आने पर वह भी कदाचित् इन्हीं पंक्तियों में पाठकों के सम्मुख उपस्थित हो।

मेरी बात

[कुमारी शान्ति देवी भार्गव, 'हिन्दी-भूषण']

ठहर! ठहर!! मत छेड़ निर्दयी! टूटी हृद्तन्त्री के तार।
मूक हृदय की विषम वेदना जान न पाए यह संसार॥
गाने दे मुझको विद्रोही अरे! वही प्रलयङ्कर गान।
उस अनन्त के अगम राग में होने दे मेरा अवसान॥
क्या कर सकता है भूतल पर एक दीन का यह बलिदान।
दिखलाने दे निर्मम दुनिया को अपना जीवन अनजान॥

ओरिएण्टल गवर्नमेण्ट सिक्योरिटी लाइफ़ एश्यूरेन्स कं० लि०
एक भारी बात
मैं जीवन-बीमा क्यों कराऊँ ?
क्योंकि, जीते जी तो थोड़ा ही थोड़ा अपनी कमाई से देना पड़ता, पर मरने पर एक भारी रक़म पीछे वालों को मिल जाती है।
धन बचाने का सब से उत्तम उपाय जान-बीमा क्यों है ?
क्योंकि, बीमा हो जाने पर, चाहे कितनी ही थोड़ी रक़म देने पर बीमादार मर जाय, पर पीछे वालों को तुरन्त बीमे की पूरी रक़म मिल जाती है।
धन बचाने के और उपाय क्यों नहीं चलते ?
क्योंकि, जितना तुमने जमा किया, मरने पर उतना ही तो तुम्हारे पीछे वालों को मिलेगा ? और उससे भी कम मिलेगा, अगर जमा है कम्पनी के हिस्से में और हिस्सों की दर गिर गई है।
इसीके मुक़ाबले—
जान-बीमा की रक़म बिलकुल बेदाग़ है और दर की घटती-बढ़ती का तो वहाँ सवाल ही नहीं है।
पर जब मैं भला-चङ्गा और पूरा तन्दुरुस्त हूँ तो जल्दी मरने की बात पर क्यों ध्यान दूँ ?
क्योंकि, बिलकुल तन्दुरुस्त और पूरे बलवान एक हज़ार मनुष्यों में जो तीस बरस के हों ११ तो २० बरस के भीतर मरते हैं, २३८ तो २० बरस में मरते हैं। और ४५२ तो ज़रूर ६० बरस के होने के पहले ही मर जाते हैं। इसी तरह ऐसे ही २० बरस के एक हज़ार पट्ठों में से ६० बरस के होते-होते, आधे से ज़्यादा अर्थात् ५२२ ज़रूर मर जाते हैं।
कौन जाने आप भी ऐसों में ही हों ?
इसलिए यह तो बड़ी ज़रूरी बात है कि जब तक और जैसी जल्दी हो सके, अपने परिवार और पीछे वालों के लिए चलते पौरुष बन्दोबस्त कर लीजिए। ज़िन्दगी का कोई ठिकाना नहीं।
आज अवसर है कल न रहा, तो हाथ मल के पछताना होगा
'ओरिएण्टल बीमा कम्पनी'
सब से अटल, सब से बड़ी, मज़बूत, सबसे बेजोखिम, सबसे मुख्य भारतीय कम्पनी है, भारतीय जान-बीमे का काम ५८ बरस से कर रही है। चौदह करोड़ से अधिक रक़म बीमा पर लोगों को भुगतान कर चुकी है। बारह करोड़ के लगभग उसकी सम्पत्ति है और ढाई करोड़ के लगभग उसकी सालाना आमदनी है।
इस कम्पनी में जीवन-बीमा कराने से बढ़ कर भला और कौन बन्दोबस्त हो सकता है ?
विशेष जानना हो तो कम्पनी के नीचे लिखे हुए किसी दफ़्तर से मालूम कर सकते हैं।
बम्बई
कलकत्ता
क्वालालम्पूर
नागपुर
सिङ्गापुर
कोलम्बो
लाहौर
पटना
सुक्कुर
आगरा
ढाका
लखनऊ
पूना
ट्रिचनापली
अहमदाबाद
दिल्ली
मद्रास
रायपुर
त्रिवेन्द्रम
अजमेर
गोहाटी
मण्डाले
रङ्गून
विज़गापट्टम
इलाहाबाद
जलगाँव
मरकारा
राँची
बरेली
बङ्गलोर
कराची
मोम्बासा
रावलपिण्डी
भोपाल

लेखक—
श्री० केशवकुमार ठाकुर

हिन्दी-संसार में अपने ढङ्ग की एकदम अनोखी पुस्तक है !

विषय-सूची

जिस वर्तमान युग ने मानव-जीवन में स्वाधीनता की एक उत्कट मनोवृत्ति उत्पन्न कर दी है, उसी ने संसार की स्त्रियों को उनकी गुलामी की प्रथा, कायरता, भीरुता और अनुपयोगिता का नाश करके, समाज में आज ऊँचा स्थान प्रदान किया है । नवीन जीवन में आकर संसार के भिन्न-भिन्न देशों की स्त्रियों ने शिक्षा और स्वास्थ्य में, साहस और पुरुषार्थ में जो उन्नति की है, उसके सम्बन्ध में बड़ी योग्यता के साथ, पुस्तक में प्रकाश डाला गया है । जीवन के एक-एक अङ्ग को लेकर, कब, कहाँ और किन देशों में कितना भीषण पतन हो चुका था, इसका वर्णन करने के साथ-साथ बताया गया है कि वहाँ आज स्त्रियों की क्या अवस्था है ।

जो स्त्री-स्वाधीनता के प्रेमी हैं, उनको यह पुस्तक अवश्य मँगा कर पढ़ना चाहिए । अपने ढङ्ग की यह अनोखी पुस्तक है । शीघ्रता कीजिए; अन्यथा दूसरे संस्करण की राह देखनी पड़ेगी । पृष्ठ-संख्या लगभग ३००, सजिल्द पुस्तक का मूल्य लागत-मात्र केवल २॥) स्थायी ग्राहकों से १॥।=) मात्र !

चाँद प्रेस लिमिटेड,
चन्द्रलोक—इलाहाबाद

सौन्दर्य की वृद्धि तथा स्थिरता के लिए
चौधरी साबुनें
व्यवहार कीजिए !
वे त्वचा को कोमल, स्निग्ध, स्वच्छ, कान्ति-पूर्ण बना सम्पूर्ण चर्म-रोगों का नाश कर शरीर में विलक्षण स्फूर्ति उत्पन्न करेंगी।
मनोहर सुहावनी सुवास से परिपूर्ण
डॉक्टर
अपने ढङ्ग की पहिली चीज़, समस्त चर्म-रोग की एक ही औषधि है
सन्दल
सिर्फ़ यही एक ऐसा साबुन है, जिसमें असली चन्दन के सब गुण विद्यमान हैं।
ख़स, कपूर, हिना, लेवेण्डर, चम्पा, जुही गुलाब इत्यादि।
सुन्दरी
यह बालसफ़ा साबुन बड़ी निराली चीज़ है।
फ़्लैक्सो
रेशमी, ऊनी वस्त्र धोने के लिए यह बहुत अक्सीर है।
शायनो, लट्ठे
क्यूब ७७१ इ०
वस्त्रों को दूध जैसे श्वेत बनाने के लिए कम ख़र्च बाला-नशीन।
विशुद्ध वनस्पति
वनस्पति
DOCTOR
स्वदेशी साबुन
चर्बी-रहित, खादी जैसी पवित्र
सब प्रकार से स्वदेशी।
साबुन की प्रत्येक बड़ी दुकान पर मिलता है।
चौधरी सोप मिल्स, कानपुर
JOB Press.

अन्ना—रूसी उपन्यास। मूल लेखक, काउण्ट लीओ टाल्सटॉय; अनुवादक, पण्डित छविनाथ पाण्डेय; प्रकाशक, पुस्तक-मन्दिर, काशी; पृष्ठ-संख्या ७१७, मूल्य ३) रुपए।

रूसी उपन्यासकारों में ही नहीं, समस्त संसार के उपन्यासकारों में टाल्सटाय का स्थान बहुत ऊँचा है। अनेक प्रमुख विद्वानों का मत तो यह है कि टाल्सटाय सर्वश्रेष्ठ औपन्यासिक थे। यह सत्य हो या नहीं, किन्तु यह तो अवश्य है कि कल्पना-शक्ति, रचना-शैली चरित्र-चित्रण आदि में टाल्सटाय का समकक्ष कोई दूसरा कलाकार नज़र नहीं आता। इस सबसे ऊपर टाल्सटाय में एक विशेषता थी और वह यह कि वह श्रेष्ठ कलाकार होने के साथ ही सुधारक थे, राजनीतिज्ञ थे, पीड़ितों के सहायक थे और इसलिए उनके उपन्यास केवल मनोरञ्जन की सामग्री नहीं, अन्तरात्मा को जाग्रत करने वाले और उसमें क्रान्ति उत्पन्न करने वाले होते थे। इनके उपन्यासों ने रूस की सुप्त और पद-दलित जनता में वह जागरण उत्पन्न किया कि ज़ार का राज-मद धराशायी हो गया। टाल्सटाय ने अपने उपन्यासों से रूस ही नहीं, विश्व-मात्र के पदाक्रान्तों और निर्धनों की महान् सेवा की है। इन्हीं कारणों से टाल्सटाय और उनके उपन्यासों को जो सम्मान प्राप्त हुआ है, वैसा आदर किसी दूसरे को नसीब नहीं हुआ।

उन्हीं टाल्सटाय की 'अन्ना करेनिन' नामक सुप्रसिद्ध उपन्यास का यह अनुवाद है। 'अन्ना करेनिन' टाल्सटाय के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में से है। 'वार एण्ड पीस' और 'अन्ना करेनिन' ये दो उनके सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माने जाते हैं। कुछ लोगों की राय है कि 'वार एण्ड पीस' को सर्वश्रेष्ठ पद मिलना चाहिए और कुछ लोगों की राय में 'अन्ना करेनिन' को। कुछ भी हो, यदि प्रथम नहीं तो द्वितीय स्थान तो 'अन्ना करेनिन' का है ही और ऐसी दशा में 'अन्ना' की श्रेष्ठता के लिए और क्या सुबूत चाहिए? 'अन्ना' में राजनीति है, समाज-सुधार है और स्त्री-हृदय का सुस्पष्ट, वास्तविक और सजीव वर्णन है। रूप और यौवन से आनन्द लाभ करने वाली स्त्री को विलास-कामना उसे किस ओर ले जाती है और पति-परायणा, सद्गृहस्था स्त्रियों को कैसी शान्ति प्राप्त होती है, इसका चित्रण 'अन्ना' से बढ़ कर और किसी पुस्तक में मिल नहीं सकता। मूल पुस्तक में जो आनन्द प्राप्त होता है, उसकी उपलब्धि अनुवाद में नहीं होती। किन्तु फिर भी हिन्दी के पाठकों को 'अन्ना' सुलभ करने के लिए अनुवादक और प्रकाशक दोनों धन्यवाद के पात्र हैं!

वेश्या का हृदय—लेखक डॉक्टर धनीराम 'प्रेम'; प्रकाशक भारत राष्ट्रीय कार्यालय, अलीगढ़; पृष्ठ-संख्या २२२ और मूल्य १।।) रुपए।

डॉक्टर 'प्रेम' हिन्दी-संसार में और विशेषतः कहानी-संसार में सुप्रसिद्ध हैं। कहानी लिखने में आप कमाल करते हैं और इस कथन में अत्युक्ति नहीं कि आपने नए कहानी-लेखकों को ही नहीं, कितने ही पुराने लेखकों को भी अपने पीछे कर दिया है। आप में कहानी लिखने की कैसी अद्भुत प्रतिभा है, इसे हिन्दी-संसार ने आपकी आरम्भिक कहानियों से ही समझ लिया था। प्रसन्नता की बात है कि डॉ० 'प्रेम' ने अपना कार्य-क्षेत्र और विस्तृत कर दिया है और कहानी के अतिरिक्त आप उपन्यास, नाटक, जीवनियाँ आदि लिखने लगे हैं।

'वेश्या का हृदय' आपका पहला उपन्यास है। इसमें आपने वेश्या के हृदय को, वेश्या-जीवन को और वेश्याओं को जन्म देने वाली सामाजिक रीति-नीति को बड़ी सफलता के साथ प्रदर्शित किया है। समाज की सीधी-सादी लड़कियों को पुरुष-वर्ग किस प्रकार पतित करता है, धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं में समाज-सेवा की आड़ में काम करने वाले रँगे स्यार, अनाथ अबलाओं के रक्षक के स्थान पर भक्षक बन कर किस प्रकार उनका चरित्र भ्रष्ट करते हैं; यही नहीं, समाज के प्रत्येक विभाग से स्त्रियों को वेश्या बनने का किस प्रकार प्रलोभन दिया जाता है, इसका नग्न चित्र डॉ० 'प्रेम' ने बड़ी चुटीली लेखनी से चित्रित किया है। इसके साथ ही उन्होंने इसमें यह भी दिखलाया है कि यदि समाज वेश्याओं को हेय न समझ कर उनके सुधार का प्रयत्न करे, तो उनमें भी हृदय होता है, उनमें भी भाव होते हैं, मनुष्य वे भी हैं, और उनका सुधार हो सकता है। पुस्तक एक बार पढ़ने की चीज़ है।

प्राकृतिक स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन—लेखक तथा प्रकाशक, श्री० ठाकुरदास जी, हलदौर, जिला बिजनौर, आकार मझोला, पृष्ठ-संख्या १२१, मूल्य ॥)

"स्वास्थ्य-विद्या का ज्ञान प्रत्येक मनुष्य के लिए नितान्त आवश्यक और अनिवार्य है।" इसी सिद्धान्त को लेकर वयोवृद्ध लेखक ने इस पुस्तक की रचना की है। स्वास्थ्य-विद्या सम्बन्धी जितनी पुस्तकें अब तक हमने देखी हैं, उनमें यह निराली है। इसमें प्रत्येक रोग का कारण और उसके प्रतिकार के लिए प्राकृतिक उपाय बताए गए हैं। प्राकृतिक जीवन बिताने के उपायों का भी वर्णन है। पुस्तक की भाषा सरल और छपाई आदि साफ़ है।

विद्यापति—लेखक, प्रोफ़ेसर जनार्दन मिश्र, एम० ए०। प्रकाशक, श्री० अर्जुन मिश्र, ग्राम मिश्रपुर, पोस्ट असरगञ्ज, ज़िला भागलपुर। आकार मझोला, पृष्ठ-संख्या १८०, दाम १)

प्रस्तुत पुस्तक मैथिल-कोकिल महाकवि विद्यापति ठाकुर के सम्बन्ध में लिखे हुए कतिपय आलोचनात्मक निबन्धों का संग्रह है। जिनमें 'विद्यापति का युग', 'विद्यापति का धर्म', 'विद्यापति की विचार-धारा' और 'हिन्दी-साहित्य में विद्यापति' आदि कई विषयों का विवेचन किया गया है। अन्त में महाकवि के कुछ चुने हुए पदों का संग्रह भी है। इस पुस्तक के पढ़ने से विद्यापति ठाकुर के सम्बन्ध में बहुत सी नई बातें मालूम हुईं। भाषा-शैली रोचक और मँजी हुई है।

आओ हँसें—लेखक, श्री० नारायणप्रसाद अरोड़ा, बी० ए०, प्रकाशक भीष्म एण्ड ब्रादर्स, पटकापुर, कानपुर; आकार मझोला, पृष्ठ-संख्या ६४, मूल्य ।)

यह पुस्तिका अरोड़ा जी ने गोंडा जेल में लिखी थी और इसकी प्रस्तावना लिखी है श्री० पुरुषोत्तमदास टण्डन महोदय ने। इसमें हास्यरस सम्बन्धी प्रायः पौने दो सौ चुटकुले संग्रहीत हैं। कोई चुटकुला ऐसा नहीं, जिसे पढ़ कर पाठक हँस न पड़ें। गम्भीर प्रकृति श्री० टण्डन जी की प्रस्तावना की भाषा भी बड़ी ही चुलबुली है। बड़ी ही मज़ेदार पुस्तिका है।

हत्यारे का ब्याह—लेखक, मुन्शी कन्हैयालाल, प्रकाशक, लीडर प्रेस, प्रयाग। आकार मझोला, पृष्ठ-संख्या २२९, छपाई और काग़ज़ साफ़, मूल्य १॥)

इस पुस्तक में 'हत्यारे का ब्याह' के अतिरिक्त लेखक महोदय की १३ और—अर्थात् कुल चौदह कहानियाँ संग्रहीत हैं। मुन्शी कन्हैयालाल जी अङ्गरेज़ी और उर्दू के विद्वान तो हैं ही, अब आपने हिन्दी पर भी कृपा की है और विशेष रूप से कहानी-रचना द्वारा। आपने 'कहानी कैसे लिखनी चाहिए', इस विषय पर भी एक छोटी सी पुस्तिका लिखी है। फलतः आप इस कला के जानकार हैं। प्रस्तुत पुस्तक की, यों तो सभी कहानियाँ रोचक हैं, परन्तु दो-तीन कहानियाँ तो हमें बड़ी ही अच्छी लगीं। मुन्शी जी की भाषा बामुहावरा और आम-फ़हम होती है। हमारी समझ में मुन्शी जी ने इस सम्बन्ध में विशेष सफलता प्राप्त की है। आपने यह पुस्तक 'सरस्वती' के सम्पादक पण्डित देवीदत्त जी शुक्ल, ठाकुर श्रीनाथसिंह जी और मुन्शी हरिवंशराय जी को

समर्पित की है। लोग एक ढेले में अधिक से अधिक दो ही शिकार करते हैं; परन्तु मुन्शी जी ने तीन किए हैं।

भ्रम—लेखिका, श्रीमती यशोदादेवी, प्रकाशक लीडर प्रेस, प्रयाग। आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या २३५, छपाई आदि साफ़, मूल्य १।।)

इस पुस्तक में पूर्व-प्रशंसित मुन्शी कन्हैयालाल जी की धर्मपत्नी श्रीमती यशोदादेवी की २३ कहानियाँ संग्रहीत हैं, जो समय-समय पर 'सरस्वती', 'माधुरी', 'सुधा', 'चाँद', 'सहेली', 'हंस', और 'कल्याण' आदि हिन्दी के प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में छप चुकी हैं, जो इन कहानियों के 'कहानियाँ' होने का काफ़ी सबूत है। इसकी भूमिका 'सरस्वती' के सम्पादक पण्डित देवीदत्त जी शुक्ल ने लिखी है। आपकी राय में "× × × इन कहानियों में कहीं-कहीं हृदय के सात्विक भावों का इस ढङ्ग से विश्लेषण किया है कि वस्तु-विन्यास में इसका परिपाक हुए बिना नहीं रह सका।" अस्तु, इस पुस्तक में संग्रहीत सभी कहानियाँ अच्छी हैं। भाषा भी सीधी-सादी और मुहावरेदार है।

होमियोपैथिक भैषज्य-रहस्य—अनुवादक डॉक्टर बी० एन० टण्डन; प्रकाशक, होमियोपैथिक पब्लिशिङ्ग कम्पनी, १४ मदनमोहन चटर्जी लेन, कलकत्ता; मूल्य ३)

यह पुस्तक होमियोपैथी के जगत्-प्रसिद्ध चिकित्सक डॉ० एलन के Key notes of the leading remedies of the MATERIA MEDICA का हिन्दी भाषान्तर है। डॉ० एलन इस विद्या के अद्वितीय ज्ञाता माने जाते थे और उनका लिखा यह ग्रन्थ संसार के प्रायः सभी होमियोपैथिक कॉलेजों में पाठ्य-पुस्तक के रूप में पढ़ाया जाता है। इस पुस्तक में लगभग दो सौ होमियोपैथिक दवाओं के लक्षण और विभिन्न रोगों पर उनका प्रभाव भली प्रकार समझा कर बतलाया गया है। साथ ही प्रत्येक औषधि के लक्षणों का वर्णन करते हुए अनेक तुलनात्मक दवाएँ बतलाई गई हैं, जो इस प्रणाली के चिकित्सकों के लिए अत्यन्त लाभदायक हैं। सुलभ, सस्ती और हानि-रहित होने के कारण आजकल होमियोपैथी का प्रचार शहरों में ही नहीं, गाँवों तक में होता जा रहा है और अनेक लोग परोपकारार्थ भी इन दवाइयों को वितरण करते रहते हैं। इन लोगों में अङ्गरेज़ी भाषा का अच्छा ज्ञान रखने वाले थोड़े ही होते हैं। कितने ही लोग अङ्गरेज़ी ग्रन्थ ख़रीद भी लेते हैं, पर उन्हें ठीक-ठीक समझ नहीं सकते जिससे अर्थ का अनर्थ होने का भय रहता है। ऐसे तमाम लोगों के लिए यह ग्रन्थ निस्सन्देह बड़ा उपयोगी होगा। अनुवाद सब प्रकार से सुन्दर और सरल हुआ है। काग़ज़, छपाई उत्तम है; कपड़े की मज़बूत जिल्द बँधी है, और मूल्य भी पृष्ठ-संख्या लगभग पाँच सौ को देखते हुए अधिक नहीं है।

होमियोपैथिक चारुचिकित्सा—लेखक, डॉ० बाबा सी० सी० सरकार, एच० एम० बी०, प्रकाशक, होमियोपैथिक चारुचिकित्सा कार्यालय, यदुनाथ सान्याल रोड, लखनऊ, मूल्य ३) रु०।

इस पुस्तक में सब प्रकार के ज्वरों की चिकित्सा-विधि होमियोपैथी के सिद्धान्तानुसार बतलाई गई है। अब तक हिन्दी में होमियोपैथिक चिकित्सा की जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, वे प्रायः बङ्गला या अङ्गरेज़ी से अनुवादित हैं और उनमें ऐसे पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है, जिन्हें इस चिकित्सा-पद्धति की बाक़ायदा शिक्षा पाने वाले व्यक्ति ही भली भाँति समझ सकते हैं। जो लोग थोड़े ही समय से शौकिया इस चिकित्सा को करने लगे हैं, उनको इन शब्दों का आशय समझने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। इसी त्रुटि को दृष्टिगत रख कर लेखक ने इस पुस्तक को मौलिक ढङ्ग से लिखने की चेष्टा की है और इसका बहुत सा अंश पढ़ जाने के पश्चात् हमारी धारणा है कि लेखक का उद्देश्य अनेक अंशों में सफल हुआ है। पुस्तक की भाषा बहुत सरल और बामुहाविरा है और प्रत्येक रोग तथा दवा के लक्षण ऐसे स्पष्ट तथा सरल ढङ्ग से वर्णन किए गए हैं कि साधारण मनुष्य को भी उन्हें समझ सकने में कठिनाई न होगी। इसमें सन्देह नहीं कि यह पुस्तक चिकित्सकों के लिए तो उपयोगी है ही, पर साधारण गृहस्थ भी इससे बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। काग़ज़ बढ़िया है और छपाई बहुत साफ़ है।

नारी-जीवन

[कविवर आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव]

पत्र-संख्या ३९

[पत्र वृद्ध-पत्नी की ओर से बाल-विधवा को]

बहिन,

हस्तगत हुआ पत्र तव,
प्रश्न किए इतने इस बार,
एक पत्र में जिनका उत्तर
जा न सकेगा किसी प्रकार।

इसीलिए मैं पहले तुमको
लिखती हूँ केवल वह बात
इसके पहले जो पूछी थी
तुमने, वही प्रथम हो ज्ञात।

कैसी होगी कन्या-जन की
दिनचर्या जग में उस काल,
लिख आई हूँ मैं पहले ही
उनकी शुभ शिक्षा का हाल।

रजनी के अन्तिम सुप्रहर में
ही वे सब जग जावेंगी,
जिससे उस पावन सुकाल के
लाभ सभी वे पावेंगी।

वृहत जलाशय, गुरु सरिताएँ
उनसे पूरित होवेंगी,
जिनमें विधि से निद्रा का सब
अलस भाव वे खोवेंगी।

स्नान समय का उनका जल के
वक्षस्थल पर केलिवास,
इतना सुन्दर होगा जितना
होता नहीं स्वर्ग-आभास,

ज्ञात यही होगा कि उतर कर
स्वर्गोत्तर सुलोक से एक
मृदु बालाएँ उलझ रही हैं
क्रीड़ा करती हुई अनेक।

इस सुस्नान के बाद लौट कर
होकर शुभ-आसन-आसीन,
ईश्वर की प्रार्थना मनोहर
करती होंगी सब तल्लीन।

कहीं-कहीं सम्मिलित प्रार्थना
से गुञ्जित होगा आकाश,
जिसमें होगा मन्द पवन से
हिल्लोलित शुभ उषा-प्रकाश।

तब उसके पश्चात् हयों पर
चढ़ कर उनका प्रात-भ्रमण,
उनमें से कुछ का मृगया-हित
नगर-परिधि का अतिक्रमण।

किसी-किसी का व्यायामों के
गृह में जा करना व्यायाम,
होगा उनका तन-विकास के
हेतु यत्न यों सदा ललाम।

तब इसके पश्चात् देह-श्रम
को खोवेंगी वे कुछ काल,
तब सीखेंगी पाक-क्रिया, फिर
विद्यालय-गत परम विशाल

निरत अध्ययन में होंगी वे
कर मध्यान्ह-समय विश्राम,
फिर सीखेंगी चित्रकला का
और दस्तकारी का काम।

सन्ध्या समय करेंगी फिर वे
केलिपूर्ण मनहर व्यायाम,
इसके बाद सिखेंगी वे कुछ
देर गृहस्थी का कुछ काम।

जल्दी शयन करेंगी वे सब,
भोजनादि उनके सब काल,
होंगे नियत समय पर, उनके
लिये न होगा रुज-जञ्जाल।

दिनचर्या संक्षिप्त लिखी है
उसे अधिक तुम कर लेना,
रङ्ग चित्र में जो न भर सकी
मैं उसको तुम भर लेना।

बहिन सुनाती हूँ तुमको फिर
कुछ अपना आगे का हाल,
चली जा रही राजमार्ग पर
थी मैं, था वह नगर विशाल।

कौन पूछता वहाँ किसे था,
किन्तु देख कर सब मुझको,
जाने क्या-क्या थे बकते, था
भला सह्य यह कब मुझको ?

एक मनुज ने कही बात थी
कुछ, फिर कर कुछ मेरी ओर,
मैं सुन नहीं सकी कुछ भी
मच रहा वहाँ था भारी शोर।

इतने में कुछ पास आ गया
यवन एक, फिर यों कहने
लगा कि मेरी औरत है यह
गई मायके थी रहने।

सुन कर मुझे क्रोध आया अति,
मन ही मन विकराल हुई,
पर बोली कुछ मैं न, तीव्र कुछ
तब तो मेरी चाल हुई।

पर वह यवन शीघ्रतापूर्वक पीछा करने लगा तुरन्त,
मैं डर गई कि क्या होगा अब? कब होगा इस दुख का अन्त?

पत्र-संख्या ४०

[पत्र बाल-विधवा की ओर से वृद्ध-पत्नी को]

बहिन,

तुम्हारा पत्र प्राप्त कर
दिनचर्या शुभ ज्ञात हुई,
पर पढ़ कर वह हाल तुम्हारा
मैं तो कम्पित-गात हुई।

दिनचर्या पढ़ कर प्रमोद जो
हुआ, हुआ वह भय में लीन,
जान इसीसे पड़ता है, हम
अबलाएँ हैं कितनी दीन।

था हिन्दू का वेश तुम्हारा,
पर वह पत्नी कहता था,
कैसे यह अन्याय घोर मन
हिन्दू-जन का सहता था?

बहिन, अधिक कुछ लिखना मुझको
अबकी तुम आगे का हाल,
हुई जा रही हूँ मैं तो उस
दुष्ट यवन पर अति विकराल।

पीछा करने लगा तुम्हारा—
ऐसा था साहस उसको,
क्यों हो नहीं, सहायक तत्क्षण
मिलते होंगे दस उसको;

और अकेली तुम थीं; तुमको
कौन सहायक मिल सकता,
हिन्दू का हिन्दू-रमणी के
दुख पर हृदय न हिल सकता।

यवन सहायक बन जाते हैं
यवनों के तत्काल अनेक,
पर हिन्दू के विपत्काल में
हिन्दू पास न आता एक।

कहा न होगा हिन्दू-जनता
ने—"यह बहिन हमारी है,
नहीं यवन-पत्नी है, हिन्दू है
आफ़त की मारी है।"

दिया न आश्रय होगा हिन्दू—
जन ने तुमको हाय कभी,
भारत में भी हिन्दू रहते
अधिक दुर्दशा-ग्रस्त तभी।

बहिन, बहुत उत्सुक हूँ पढ़ने
को आगे क्या बात हुई,
कितनी भय से पूर्ण तुम्हारे
हित आगे की रात हुई।

बहिन, सुनाती हूँ फिर तुमको
मैं अपना आगे का हाल,
आई जब दासी कमरे में
मैंने था मन लिया सम्हाल।

उसने कहा कि, "एक भले घर
में तुम पा जाओगी काम,
पर देखो करना मत ऐसा
जिससे होऊँ मैं बदनाम।"

मैंने कहा—"न सोच करो तुम,
इससे तुम निश्चिन्त रहो,
क्या वेतन देंगे, रक्खेंगे
किस प्रकार यह बात कहो।"

बोली वह, "हैं भले आदमी,
बड़े आदमी भोलानाथ,
उनकी पत्नी भी अच्छी हैं,
सुख पाओगी उनके साथ।

चलो उन्हें दिखला लाऊँ मैं,
तब वेतन की होवे बात,
वेतन तो अच्छा होगा ही,
वहीं रहोगी तुम दिन-रात।"

मैंने कहा—"ठहर जाओ कुछ,
कर लूँ स्नान, चलूँ तब साथ"
उसने धोती देकर मुझको
बड़े प्यार से चूमा माथ।

बोली वह—"मैं बहिन समझती
हूँ, करती हूँ तुमको प्यार"
मैं रो पड़ी लिपट कर उससे,
हुआ हृदय का हलका भार।

उसने कहा कि "जब से देखा
तुमको, स्नेह हुआ तुम पर,
सहना मत कुछ क्लेश समझना
मेरा घर अपना ही घर।"
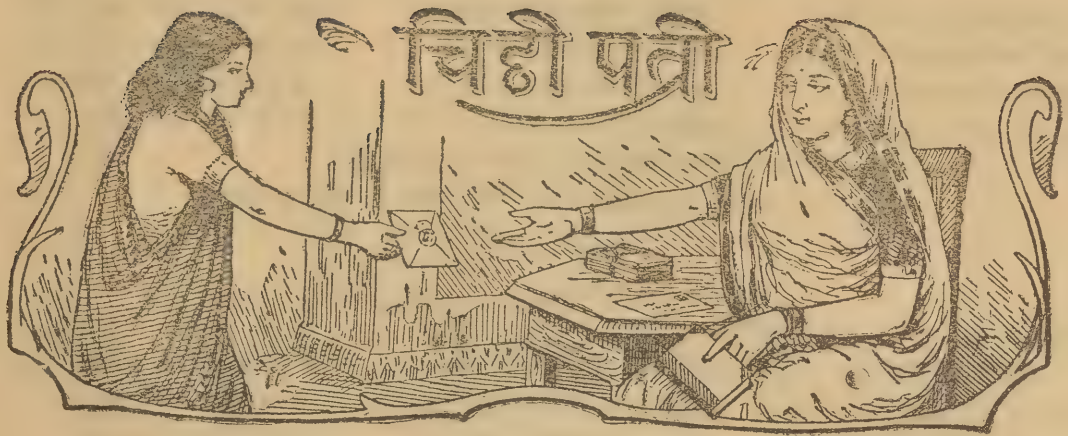
एक वेश्या का पत्र

बिहार प्रान्त की एक विख्यात नगरी से एक वेश्या लिखती है :—

मान्यवर सम्पादक जी !

मैं एक वेश्या हूँ। नाचना-गाना मेरी वृत्ति है और यह वृत्ति मेरी ख़ानदानी है ! मैं जब तेरह वर्ष की थी तभी से मुझे यह घृणित कार्य आरम्भ करना पड़ा। छः सात महीने बाद एक धनी-मानी रईस के पुत्र मेरे यहाँ गाना सुनने के लिए आने लगे। फिर क्या था, मैं तो वेश्या की पुत्री थी ही, मैं पूरी कोशिश करने लगी कि वे मेरे जाल में फँस जायँ। नतीजा यह हुआ कि वह मुझे अपने प्राणों से भी ज़्यादा प्यार करने लगे। मैंने भी उनकी मुहब्बत में पड़ कर नाचना-गाना सब कुछ छोड़ दिया। मैं बाबू साहब को अपने पति-स्वरूप मानने लगी। मैं और बाबू साहब दोनों सच्चे प्रेम-बन्धन में एक-दूसरे के साथ बँध गए और कहीं हमारा परस्पर विछोह न हो जाय, इस ख़याल से हमने भरी गङ्गा और यमुना में तथा बड़े-बड़े देव-मन्दिरों में जाकर सौगन्धें खाईं कि चाहे कुछ हो जाय ; अपार से अपार कष्ट सहना पड़े, परन्तु हम लोग एक दूसरे को कदापि नहीं छोड़ेंगे। सम्पादक जी महोदय, इसी तरह आठ बरस का ज़माना बीत गया। मैं एक गृहस्थ स्त्री की तरह रहने लगी। वेश्यावृत्ति एकदम छोड़ दिया। उधर मेरे कारण बाबू साहब का सारा परिवार उनसे नाराज़ हो गया। लेकिन बाबू साहब सब कुछ सह कर मुझे वैसे ही मानते चले आए। मान्यवर, समय अति प्रबल है। सबका दिन एक-सा नहीं जाता। पारिवारिक कलह के कारण बाबू साहब को भी दुर्दिन के चङ्गुल में फँसना पड़ा। नतीजा यह हुआ कि साल भर से मुझे उनसे रुपया-पैसा मिलना बन्द हो गया है। यद्यपि बाबू साहब भीषण आर्थिक कष्ट में पड़ गए हैं, परन्तु तिस पर भी अभी तक हमारे भोजन-वस्त्र का प्रबन्ध किए जाते हैं। इधर जब से मेरे घर वालों की आर्थिक आय बन्द होने लगी, तभी से मेरी माता और बहिन मुझसे रुष्ट रहने लगीं और कहने लगीं कि बाबू साहब को छोड़ो और अपनी वेश्यावृत्ति शुरू करो। अब मेरी हालत साँप-छछुन्दर की सी हो रही है। अगर माता-बहिन की बात मानती हूँ, तो देवताओं के सामने की हुई प्रतिज्ञा भङ्ग होती है और बाबू साहब के साथ भी दग़ाबाज़ी करनी पड़ती है। मैं शपथ खा चुकी हूँ कि वेश्यावृत्ति न करूँगी और बाबू साहब को न छोड़ूँगी। तब फिर मैं यह वृत्ति कैसे करूँ ? अब आप ही कोई सुगम उपाय बताइए कि मेरा धर्म भी बचे और गृह-कलह से भी बचूँ ; साथ ही साथ बाबू साहब को भी न छोड़ना पड़े। क्योंकि फिर से वृत्ति आरम्भ करने से वह फ़ौरन आत्महत्या कर लेंगे। मैं बाबू साहब से प्रचुर धन लेकर माता-बहिन को दे चुकी हूँ। अब बुरे समय में बाबू साहब को छोड़ना क्या न्यायसङ्गत है ? बाबू साहब का दिया हुआ एक पुत्र-रत्न भी मेरी गोद में है।

—एक वेश्या

[इस सम्बन्ध में हमें जो कुछ कहना था, उसे पत्र-लेखिका ने स्वयं ही कह डाला है। उसे कदापि अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़नी चाहिए और न धन के लोभ में पड़ कर फिर से नरक में जाना चाहिए। हमारी तो स्पष्ट रूप से यही सम्मति है कि वह अपनी माता और बहिन से सारा सम्बन्ध त्याग दे और अपने पति (बाबू साहब) के साथ वैदिक विधि से वैवाहिक-सम्बन्ध स्थापित करके पवित्र जीवन व्यतीत करे। साथ ही अपनी अन्य पतिता बहिनों को भी समझा-बुझा कर अपनी अनुगामिनी बनावे। उक्त बाबू साहब को भी चाहिए कि वे अब साहस करके शास्त्रानुसार उसका पाणिग्रहण कर लें। पत्र-लेखिका की माता और उसकी बहिन तक ये पंक्तियाँ पहुँच सकें तो उन्हें भी हमारी सलाह है कि धन का लोभ छोड़ कर इस जघन्य नरक से निकलने की चेष्टा करें।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

एक दुःखिनी बहिन

श्रीमान् सम्पादक जी,

मेरी उम्र जब ११ साल की थी, तब मेरी शादी एक वृद्ध मारवाड़ी महाशय से हुई। जिनकी उम्र इस समय ५२ साल की है और मेरी उम्र १८ वर्ष की है। जब मैं इनके घर आई थी, तब घर में इनके सिवा कोई स्त्री या पुरुष नहीं था। इन्होंने मुझे अपनी इच्छाओं की दासी समझ कर मुझ पर मनमाना अत्याचार किया, जिससे मुझे बहुत हानि पहुँची और कई रोग उत्पन्न हुए। यह महाशय गन्दे ख़्यालातों के एक कट्टर सनातनधर्मी या यों कहिए कि पाखण्डी हैं। मैं इनके अत्याचारों को जब से शादी हुई, दुखित-हृदय से सहती आई हूँ।

सन् १९३२ ई० में मैंने बहुत कठिनाइयों से सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लिया। फल-स्वरूप ९ मास कारावास और १०० रु० जुर्माना—जुर्माना न देने पर एक साल कारावास का दण्ड मुझे मिला। इन महाशय जी ने जेल में भी मुझे शान्ति से नहीं रहने दिया। जेल में आकर मुझसे माफ़ी माँगने का अनुरोध किया। मैं इनका कहना न मान कर अपने कर्तव्य पर डटी रही। इसके बाद जेल के कर्मचारियों से मुझे तङ्ग करने के लिए कहा, जिससे मैं माफ़ी माँग लूँ। जब मेरी सज़ा समाप्त होने को आई, तब यह महाशय १०० रु० दाख़िल करके अवधि से पहले ही मुझे छुड़ा लाए। अब मुझे फिर हर तरह से परेशान करते हैं। जैसा ये मुझसे व्यवहार करते हैं, मैं प्रकट नहीं कर सकती। क्योंकि मैं एक हिन्दू घर की लड़की हूँ, इसलिए मुझे उन गन्दे शब्दों को लिखने में सङ्कोच होता है। यह मेरी इज़्ज़त बिलकुल नहीं करते हैं। यह स्त्री-शिक्षा के भी बहुत विरोधी हैं। मुझे पढ़ने से बहुत प्रेम है, किन्तु अपना दिल मसोस कर रह जाती हूँ। जो कुछ मैंने पढ़ा है, वह ११ साल से पूर्व की उम्र में। इसके बाद मुझे पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। मैं अन्य देश-सेविकाओं के साथ मातृभूमि की सेवा करना चाहती हूँ, पर ये मुझे नित्य नई परतन्त्रता की बेड़ी में जकड़ना चाहते हैं। इसलिए दिन-रात अशान्ति और चिन्ता से मैं घुली जाती हूँ। अब मुझे अपना जीवन भारी और उदास मालूम देता है। अब मैं हर वक्त यही सोचती रहती हूँ कि मुझे क्या करना चाहिए और किस तरह उनके अत्याचारों से छूट सकती हूँ।

मेरा स्वास्थ्य प्रतिदिन गिरता जाता है। जब मैं गिरफ़्तार हुई थी, तब मेरा वज़न ७० पौण्ड था। बाद जेल से घर पहुँचने तक १०० पौण्ड हो गया था। अब न मालूम कितना है। भविष्य में मेरा क्या होगा? आप इस पीड़ित, असहाय के पत्र को अपनी मासिक-पत्रिका 'चाँद' में छाप देने की कृपा करेंगे।

आपकी एक दुःखिनी बहिन

—हरीप्रिया

[हम नहीं समझते कि इस पत्र को केवल 'चाँद' में छाप देने से ही इस बहिन का क्या उपकार होगा। हमारी तो राय है कि अगर इनमें साहस हो तो ये बावन वर्षीय बूढ़े बाबा से किसी तरह अपना पिण्ड छुड़ा लें और देश-सेवा के लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर दें। वृद्ध-विवाह के
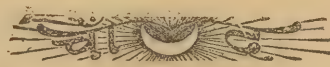
विरुद्ध आन्दोलन तो काफ़ी हो चुका है, परन्तु रूढ़ि-व्याधि-ग्रस्त हिन्दू-समाज पर अभी तक उसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। वासना-लोलुप, विवाहार्थी वृद्ध और धनलोलुप कन्याओं के पिता केवल समझाने-बुझाने से अपनी इस कुत्सित आदत से बाज़ आते नहीं दिखाई देते। इसलिए ऐसे बूढ़ों की पत्नियों को स्वयम् साहस करके इस घृणित प्रथा के प्रतिकार का उपाय करना चाहिए। उन्हें चाहिए कि जिस तरह हो सके ऐसे बूढ़े पतियों से पल्ला छुड़ा लें। यद्यपि ऐसा करने में उन्हें कई प्रकार की मुसीबतों का सामना करना पड़ेगा। परन्तु साथ ही वे अपने जीवनोत्सर्ग द्वारा अन्य बहिनों का विशेष उपकार साधन कर सकेंगी।

—सम्पादक 'चाँद']

❀ ❀ ❀

भ्रूण-हत्या प्रतिबन्धक गृह

सामाजिक अत्याचार के कारण कई क्वाँरी और विधवा बहिनें गर्भ धारण कर लेती हैं। फिर वे उसे गिराने का पापमय और मूर्खतापूर्ण प्रयत्न करती हैं। गर्भ गिराने में पकड़े जाने पर वे क़ानूनी दण्ड भी पाती हैं और जीवन भर के लिए जाति से बाहर भी कर दी जाती हैं। इसलिए ऐसी बहिनों की रक्षा के लिए यह गृह खोला गया है। जिन बहिनों को अनुचित गर्भ हो जाता है, इसमें उनका अत्यन्त गुप्त रीति से प्रसव करा-कर बच्चा यहीं रख लिया जाता है और उन बहिनों को उनके घर वापस कर दिया जाता है। जिससे वे किसी प्रकार भी बदनाम न होकर सम्मानपूर्वक अपनी जाति में रह जाती हैं। इस तरह १९२८ से यह गृह हिन्दू-समाज की सेवा कर रहा है। प्रसिद्ध समाज-सुधारक श्रीमान् रामगोपाल जी मोहता की राय में "यह सदुद्योग सर्वथा स्तुत्य एवं प्रत्येक सच्चे हिन्दू के लिए श्लाघनीय है।" 'चाँद' की सम्मति में "इस शुभ कार्य से इस अभागे देश में नित्य होने वाली सैकड़ों भ्रूण-हत्याओं का जघन्य कार्य रुक जाएगा। इसके अतिरिक्त बहुत सी बहिनें जो भ्रूण-हत्या करने की अपेक्षा विधर्मी हो जाती हैं, उन्हें भी हिन्दू-समाज के बाहर नहीं जाना होगा। हिन्दू-समाज की आने वाली सन्तति इस पुण्य कार्य को आदर एवं श्रद्धा की दृष्टि से देखेगी।" अतएव प्रत्येक हिन्दू का कर्तव्य है कि ऐसी सङ्कट में फँसी हुई बहिनों को यहाँ भेज कर समाज की रक्षा करें।

नोट—सारी बातें अत्यन्त गुप्त रक्खी जाती हैं।

पता—डॉक्टर बिहारीलाल
मातृ-निवास, पोस्ट बालाघाट (सी० पी०)

[इस सम्बन्ध में पत्र-प्रेषक महोदय ने 'चाँद' की सम्मति स्वयम् ही उद्धृत कर दी है। जब तक समाज में विधवा-विवाह का पूर्ण प्रचार नहीं होता और अवैध सम्बन्ध के लिए जब तक स्त्री और पुरुष समान रूप से अपराधी नहीं माने जाते, तब तक ऐसे गृहों का प्रचार जितना हो सके, वाञ्छनीय है।

—सम्पादक 'चाँद']

❀ ❀ ❀

विमाता का अत्याचार

ग्वालियर राज्य से एक विद्यार्थी ने लिखा है :—

प्रिय सम्पादक जी, नमस्ते!

मैं रहने वाला रियासत ग्वालियर का हूँ। मेरी उम्र क़रीबन १७ साल की होगी। जब मैं २ साल का था, उसी समय मेरी माँ मर गई थी। फिर मेरे पिता ने तीन पुनर्विवाह किए, लेकिन तीनों में एक भी नहीं जी सकीं। मेरे पिता ने फिर पुनर्विवाह करना चाहा। लोगों ने उनको बहुत कुछ समझाया कि ऐसी दशा में अब पुनर्विवाह नहीं करना चाहिए, क्योंकि आपका पुत्र बड़ा हो गया है। लेकिन वह कब सुनने लगे। पाँचवाँ विवाह भी कर ही लिया। जब नई माँ ने घर में प्रवेश किया, उस वक़्त मैं बड़ा प्रसन्न हुआ कि अब मुझे सुख से रोटी मिला करेगी। लेकिन अब सुख की जगह दुःख होने लगा। जब मैं उनसे कभी बोलता हूँ, तो उसका जवाब कर्कश वाणी में मिलता है। न जाने सौतेली माताओं का कैसा स्वभाव होता है कि वे सौत-पुत्रों को देख ही नहीं सकतीं; घृणा और बैर तो उनके लिए सुरक्षित है। मैं क्या जानता था कि जिससे

मैं प्रेम करता हूँ, वही मेरे लिए काल है। मेरा हृदय बैठ गया। और तब से मेरा विमाता से बोलने का साहस जाता रहा। मेरी विमाता दूसरों से बोलने में प्रसन्न रहती हैं, परन्तु मुझे देखते ही उनकी भृकुटी चढ़ जाती और आँखें लाल हो जाती हैं। मैं अपने को अभागा समझने लगा। मेरे सिवाय मेरे पिता के और कोई सन्तान न थी, इसलिए उन्होंने मेरी शादी भी १६ साल की उम्र में कर दी। अब मुझे दूसरा रञ्ज भी होने लगा; क्योंकि जब से मेरी पत्नी घर में आई, तब से कलह का कोई ठिकाना न रहा। माता जी उसको ज़रा-ज़रा सी बात पर कोसने लगीं। रञ्ज के कारण मुझे बुख़ार आना शुरू हो गया। मैं अभी विद्यार्थी हूँ। कृपा कर अब आप बतलाइए कि मुझे क्या उपाय करना होगा, जिससे मैं इस विमाता से बच जाऊँ।

आपका,

—एक दुखी विद्यार्थी

[वास्तव में इस १७ वर्ष के अभागे विद्यार्थी की समस्या बड़ी ही कठिन है। इसके मूर्ख पिता ने इन्द्रिय-लोलुपता के फेर में पड़ कर इसका जीवन नष्ट कर दिया है। इसी उम्र में इसे विवाह-बन्धन में जकड़ कर उसने इसकी रही-सही आशा पर भी पानी फेर दिया है। अस्तु। हमारी समझ में इस विद्यार्थी को चाहिए कि अपनी ससुराल वालों से कह कर अपनी पत्नी को उसके मायके भेजवा दे और स्वयम् कुछ शिक्षा प्राप्त करके किसी काम-धन्धे में लग जाने की चेष्टा करे। इसके बाद पिता और माता से अलग रह कर जीवन यापन करे।

—सम्पादक 'चाँद']

❀ ❀ ❀

गोदने की प्रथा

एक सज्जन लिखते हैं :—

मान्यवर सम्पादक जी, नमस्ते !

यों तो हिन्दू-समाज नाना प्रकार की कुरीतियों और विचित्र प्रथाओं का केन्द्र-स्थल ही है, परन्तु भारत के कई प्रान्तों में हिन्दू स्त्रियों के गोदना गुदवाने की एक विचित्र प्रथा जारी है। इस प्रथा के अनुसार प्रत्येक वधू को श्वसुर-गृह जाने पर गोदना गुदवाना पड़ता है। बरसात का मौसिम विशेष रूप से श्रावण का महीना गोदना गुदवाने के लिए उपयुक्त समझा जाता है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि केवल वर्षा-काल में ही गोदना गोदवाया जाता हो। वास्तव में बारहो महीने यह काम होता है। गाँवों में गुदनहरियाँ घूमा करती हैं और नव-वधुओं को ढूँढ़-ढूँढ़ कर उनकी बाँहों पर गोदने गोदती हैं और इसके बदले इनाम-इकराम पाती हैं। गोदना गोदवाने में बेचारी वधुओं को बड़ी तकलीफ़ होती है। क्योंकि गोदनहरियाँ उनके अङ्गों को एक लोहे की तीक्ष्ण कील द्वारा छेदती हैं और उस पर एक प्रकार की स्याही लपेट देती हैं, जो घाव के अन्दर चली जाती है और आजन्म के लिए वहाँ एक काला दाग़ पड़ जाता है। गोदना गुदवाने के बाद अङ्ग फूल जाता है और कई दिनों तक उसमें विशेष पीड़ा रहती है। गोदवाने के समय स्त्रियाँ कष्ट से आँसू बहाती रहती हैं, परन्तु गोदना चूँकि एक अनिवार्य प्रथा है और मरने पर स्त्रियों के शरीर के साथ जाता है, इसलिए भयानक पीड़ा सह कर भी गोदना गोदवा लेना अच्छा समझा जाता है। कोई-कोई शौक़ीन देहाती स्त्री अपने सौन्दर्य की वृद्धि के लिए बाँहों के अतिरिक्त अपनी ठुड्डी, गाल और दोनों भौंहों के बीच में भी एक काला बिन्दु गोदवा लेती हैं। घोर गँवार स्त्रियाँ छाती पर भी गोदना गोदवाती हैं। यह गोदना एक प्रकार के विचित्र चित्र के रूप में होता है और बड़ा ही भद्दा मालूम होता है। यह स्त्रियों के स्वाभाविक सौन्दर्य को भी बिगाड़ देता है। मालूम नहीं, यह प्रथा कब से प्रचलित है और इसका मूलाधार क्या है और क्यों यह एक धार्मिक कृत्य मान लिया गया है। 'चाँद' के पाठकों से निवेदन है कि यदि कोई सज्जन गोदने का इतिहास जानते हों, तो कृपा कर 'चाँद' में इस विषय पर कोई विस्तृत लेख छपवाने की कृपा करें। साथ ही यदि कोई सज्जन इसे मिटाने की कोई तदबीर बता सकें, तो बहुत सी स्त्रियों पर असीम कृपा हो। क्योंकि आजकल बहुत सी स्त्रियाँ ऐसी हैं, जो इसे मिटा डालना चाहती हैं।

—'चाँद' का एक पाठक

[गोदने को मिटाने के सम्बन्ध में या इस प्रथा के इतिहास के सम्बन्ध में जो लेख या पत्र आएगा, वह अवश्य 'चाँद' में प्रकाशित कर दिया जाएगा।]

—सम्पादक 'चाँद']

❀ ❀ ❀

आवश्यकता

हमारे औषधालय के लखनऊ-ब्राञ्च में दवाएँ विक्रय करने का काम करने के लिए एक ऐसी महिला की आवश्यकता है, जो हिन्दी का अच्छा ज्ञान, थोड़ी अङ्गरेज़ी और कुछ औषधि-सम्बन्धी ज्ञान अवश्य रखती हो। वेतन योग्यतानुसार ३०) दिए जायँगे, रहने का प्रबन्ध स्वयं कर लेना होगा। जात-पाँत और विधवा-सधवा का कोई विचार न किया जाएगा। केवल उन्हीं महिलाओं को आवेदन-पत्र भेजना चाहिए, जो खुली दूकान में बैठने में लज्जाबोध न करें।

शङ्करसिंह प्रोप्राइटर

सत्य-सुख-सञ्चारक ब्रह्मशक्ति कम्पनी

बहराम घाट, ज़िला बाराबङ्की।

[हमने यह 'विज्ञापन' केवल एक महिला के उपकार के ख़याल से छाप दिया है। भविष्य में ऐसे विज्ञापन 'चाँद' में मुफ़्त नहीं छापे जाएँगे।

—सम्पादक 'चाँद']

❀ ❀ ❀

आवश्यक सूचना

हिन्दी-प्रेमियों और विशेष कर अध्यात्मवादियों को सादर सूचित किया जाता है कि 'हिन्दीरत्न पुस्तकालय' द्वारा प्रकाशित "सात्विक-जीवन" नामक पुस्तक, जोकि दो आने का पोस्टेज आने पर बिना मूल्य भेजी जाती थी, अब स्टॉक में नहीं रही, अतः प्रार्थना है कि कोई भी सज्जन भविष्य में उक्त पुस्तक के लिए पोस्टेज स्टाम्प (टिकट) भेजने का कष्ट न उठावें।

व्यवस्थापक, हिन्दीरत्न पुस्तकालय,

चावल मण्डी, अमृतसर (पञ्जाब)

❀ ❀ ❀

शुक्ल जी का प्रतिवाद

गत जून के 'चाँद' में कानपुर के श्री० रामाधीन जी शुक्ल का एक पत्र छपा था, जिसमें आपने भाई के ससुर के अपराध के कारण एक ब्राह्मण कन्या के विवाह में अड़चन उपस्थित होने की बात लिखी थी और समाज की परवाह न करके उस कन्या के साथ विवाह करने को भी तैयार थे। परन्तु अब वह लिखते हैं कि वह पत्र मेरा नहीं, किसी दूसरे सज्जन का लिखा था और उन्होंने 'भूल से' उसमें शुक्ल जी का नाम लिख दिया था। शुक्ल जी ने उक्त सज्जन का नाम-पता भी लिखा है। इसके सिवा इस सम्बन्ध में कानपुर से हमारे पास और भी कई पत्र आए हैं, जिनका आशय यह है कि कान्यकुब्ज समाज में अभी ऐसे सत्साहसी युवकों की बहुत कमी है, जो समाज की रूढ़ियों को ठुकरा कर मनुष्योचित कार्य कर सकें। हम 'चाँद' के इन स्तम्भों में कई बार लिख चुके हैं कि हमारे समाज में प्रचलित दक़ियानूसी विचारों के प्रधान प्रश्रयदाता यही नवयुवक हैं। ये अभागे यों तो बड़े भारी समाज-सुधारक बनते हैं, परन्तु जब कुछ कर दिखाने का मौक़ा आता है, तो बग़लें झाँकने लगते हैं। अस्तु, इन रँगे स्यारों से हमारा विनम्र निवेदन है कि वे वाहवाही लूटने के फेर में पड़ कर अपने साथ 'चाँद' को भी बदनाम न करें।

—सम्पादक 'चाँद']

[जनाब "आज़म" कुरेवी]

रञ्जो ग़म सह-सह के जो ज़िन्दा बराए नाम है,
हो न हो किसका है वह मेरा दिले नाकाम[1] है।

पाँव फैला कर न क्यों मरक़द[2] में सोयें चैन से,
हमको दुनिया से ज़ियादा इस जगह आराम है।

दर्दो रञ्जो यासो ग़म[3] का गिर्द रहता है हुजूम[4],
बस इन्हीं दो-चार से हरदम हमारा काम है।

सद्क़े[5] इस तावक-ज़नी[6] के दिल को छलनी कर दिया,
अब कहाँ है ख़ून है भी तो बराए नाम है।

चल चुके हैं घर से वह दो-चार आहें जल्द खींच,
और थोड़ी सी कसर बाक़ी दिले नाकाम है।

यूँ तो देते हैं हज़ारों जान तुम पर और भी,
एक मेरा कमबख़्त दिल ही मोरिदे इलज़ाम[7] है।

आप क्या जानें बसर होती है किस मुश्किल से रात,
आपको हम ग़मनसीबों से भला क्या काम है ?

बाग़ में कोई गुलों का पूछने वाला नहीं,
बुलबुले नाशाद जिस दिन से असीरे दाम[8] है।

हज़रते "आज़म" से हमने पारसा[9] देखे नहीं,
किसलिए वह इन बुतों के इश्क़ में बदनाम हैं।

१—हताश हृदय, २—क़ब्र, ३—निराशा, ४—भीड़, ५—निछावर, ६—तीर चलाना, ७—अपराधी, ८—क़ैदी, ९—पवित्र।

[कविवर "बिस्मिल" इलाहाबादी]

बायसे[10] ग़म दिलरुबा[11] है या दिले नाकाम है,
आसमाँ कहते हैं जिसको मुफ़्त में बदनाम है।

ख़ाक होकर, ख़ाक में मिलने का यह अञ्जाम[12] है,
सो रहा हूँ चैन से अब क़ब्र में आराम है।

एक है तक़दीर उसकी, एक है मेरा नसीब,
मुझको तुमसे काम है, तुमको उदू[13] से काम है।

पहले मैंने दिल दिया, फिर मैंने अपनी जान दी,
यह है आग़ाज़े-मुहब्बत[14], और यह अञ्जाम है।

हर घड़ी ज़ुल्मो-सितम करने का यह निकला मआल[15],
ख़ल्क में बदनाम अब मैं हूँ कि तू बदनाम है।

हम जो आए हैं ज़माने में तो जाने के लिए,
ज़िन्दगी ही ख़ुद हमारी मौत का पैग़ाम है।

मुझसे आग़ाज़े-मुहब्बत में यह कहता है कोई,
कुछ ख़बर भी है तुम्हें क्या इश्क़ का अञ्जाम है ?

मैकदे[16] में हज़रते ज़ाहिद[17] कहाँ रक्खें क़दम,
हर तरफ़ मीना[18] है साग़र[19] है सुबू[20] है जाम है।

वह तड़पना देख कर कहने लगे अग़यार[21] से,
जान लो पहचान लो "बिस्मिल" इन्हीं का नाम है।

१०—सबब, ११—प्रियतम, १२—अन्त, १३—दुश्मन, १४—प्रारम्भ, १५—परिणाम, १६—शराबख़ाना, १७—परहेज़गार, १८—शीशा, १९—प्याला, २०—मटका, २१—दूसरे लोग।

[हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द जी विरूपाक्ष]

सारी सावन की बहार फीकी पड़ गई थी। न दुधिया में कोई मज़ा था, न 'त्रिदलं त्रिगुणाकार' विल्व-पत्र में वह अम्ल-मधुर स्वाद ! कैथी (काशी) निवासी बाबा मार्कण्डेश्वर मूँड़ पर हाथ धरे झँख रहे थे—

जाति गई अरु धर्म गयौ,
अब आख़िर बैठि पर्यो पछिताने !

❀

परम सत्यवादी, धर्मधुरन्धर भैया 'सूर्य' ने ख़बर दी थी कि कुछ कॉङ्ग्रेसियों ने बाबा विश्वनाथ के पर्सनल असिस्टेण्ट बाबा मार्कण्डेश्वर जी को ज़बरदस्ती बेदीन कर दिया। अब बेचारे न घर के रहे न घाट के ! बुढ़ौती में दीन से हाथ धोना पड़ा और दुनिया से भी।

❀

कैथी-मन्दिर के आस-पास रहने वालों ने तुलसी-गङ्गाजल स्पर्श करके 'भैया' को बताया था कि एक दिन चन्द हरिजनों के साथ कुछ कॉङ्ग्रेसियों ने एकाएक बाबा की कैथी वाली कोठी पर चढ़ाई कर दी और देखते-देखते उनकी मान-मर्यादा, जाति-पाँति और उनका धर्म-कर्म लेकर चम्पत हो गए।

❀

इसी शोक में बेचारे बाबा न भङ्ग-बूटी छानते थे और न गाँजे का दम लगाते थे। मार्कण्डेश्वराइनें हैरान थीं। बाबा न तो गङ्गा से बोलते थे और न भवानी की ओर ताकते थे। बस, दिन-रात हाय धर्म, हाय जाति, हाय वर्णाश्रम स्वराज-सङ्घ और हाय बाबा ज्ञानानन्द की रट लगा रहे थे। बड़ी बुरी दशा थी।

❀

इसी शोक-जनित बदहवासी के कारण 'भैया' को भी यह ख़बर छापने की सुधि ही न रही कि इस कैथी-काण्ड के कारण कैलाश से लेकर ब्रह्मलोक तक कुहराम मच गया था। देवतागण मूँड़ पटक रहे थे और देव-तानियाँ सर धुन रही थीं। ब्रह्मा बाबा (प्रत्येक आँख से आठ-आठ आँसू के हिसाब से) चौंसठ आँसू रो रहे थे। उनकी व्याकुलता देख कर आसन्न वैधव्य की आशङ्का से देव-पितामही बुढ़िया ब्रह्माइन का भी बुरा हाल था।

❀

परन्तु बेटा जिए बाबा ज्ञानानन्द का। इस संसार में बेचारे सनातन-धर्म की अड़ी पर काम आने वाला अगर कोई मर्द है तो वही लम्बी दाढ़ी वाला बङ्गाली बुड्ढा। जब तक आपके दम में दम है, तब तक सनातन-धर्म का न कोई बाल बाँका कर सकता है और न कोई किसी देवता का कुछ बिगाड़ सकता है। हिन्दुओं के तैंतीस करोड़ देवताओं के वल्लाह, आप एकमात्र रक्षक हैं।

❀

सो जनाब, बाबा ज्ञानानन्द को कैथी काण्ड की ख़बर मिली तो तत्क्षणात आपने प्रस्तर-विनिर्मित देवादिदेव महादेव की शुद्धि की व्यवस्था कर दी। सर्व-प्रथम मुण्डन, तत्पश्चात् गोमेय-गोमूत्रादि-(पञ्च-गव्य)-स्नान और अन्त में स्वस्तिवाचन स्वरूप परम सिद्धिदाता, सर्व विघ्न-विनाशन श्रीमान् लाट साहब के मरक्को लेदरावृत्त चरणों में विनम्र प्रार्थना। इसके बाद बोल सनातन धर्म की जय !

❀

अब कोई चिन्ता नहीं है, गोबर-गोमूत्र से मार्कण्डे-श्वर महाराज की शुद्धि हो गई है। हरिजन-दृष्टि-स्पर्श से जो भीषण विस्फोटक उनके प्रस्तर-कोमल कलेवर पर उभड़ आया था वह मिट गया है, धुकधुकी की धड़कन भी शान्त है। गोबर-गोमूत्र की बदौलत आसन्न वैधव्य से बाल-बाल बच कर, उनकी बीबियों ने भी झूले पर चढ़ कर कजली गाना आरम्भ कर दिया है।

❀

राम-राम, जब अल्लाहताला के फ़ज़ल से गोबर-गोमूत्र मौजूद ही है और उसकी बदौलत ईश्वर के लकड़दादा 'महेश्वर' तक की शुद्धि हो जाती है, तो बेचारे हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश के विरुद्ध यह तूफ़ाने बेतमीज़ी बरपा करने की आवश्यकता ही क्या है? मन्दिर के पुजारियों को चाहिए कि इस 'सनातनी फ़िनाइल' का एक ज़ख़ीरा प्रत्येक मन्दिर में एकत्र कर लें और जब कोई हरिजन दर्शन कर ले तो देवता जी को उठा कर उसी ज़ख़ीरे में आपाद-मस्तक डुबा दें।

❀

वाह पट्ठो, जीते रहो! विभु-व्यापक अभयङ्कर शङ्कर को भी शुद्ध कर डाला! वास्तव में निर्लज्जता में बड़ी शक्ति है। वह जो न कर डाले, वही थोड़ा है! और धन्य हैं छुई-मुई को भी मात करने वाले सनातनियों के ये विभु-व्यापक महाराज। इन्हें न अशुद्ध होते देर लगती है और न शुद्ध होते!

❀

हाँ, तो देवबन्धु बाबा ज्ञानानन्द ने अबकी मार्कण्डेश्वर जी की जान बचा ली। जो काम बाबा 'कुर्त्तकोट' और श्रीमान् प्रतिवादि-भयङ्कर जी से नहीं बन पड़ा, उसे लम्बी दाढ़ी वाले बाबा ने कर दिखाया। हमारी दृढ़ धारणा है कि अब ये लाट साहब से प्रार्थना करके काली, विश्वनाथ, गणेश और जगन्नाथ आदि सभी देवताओं को एक साथ ही एकदम 'अछूत-प्रूफ़' करा कर छोड़ेंगे।

❀

मार्कण्डेश्वर महाराज की रक्षा करने में बाबा और उनकी पार्टी ने श्रीमान् सत्य महाराज को ऐसे उल्टे छुरे से मूँड़ा है कि अगर बच्चू हैज़ा-प्लेग से बचे रह गए तो जन्म भर बाबा ज्ञानानन्द और वर्णाश्रम स्वराज-सङ्घ का नाम लेते रहेंगे। परम सत्यवादी महाराज युधिष्ठिर और हरिश्चन्द्र के वियोग का शोक भूल जाएँगे।

❀

वेदव्यास बाबा के अट्ठारहो पुराणों को चाट जाइए और सारे महाभारत की पोथी को घोल कर उदरस्थ कर जाइए, हमारे वर्णाश्रम स्वराज-सङ्घ के सदस्यों की टक्कर का आपाद-मस्तक सत्यवादी कहीं ढूँढ़े न मिलेगा। हमें तो चिन्ता लग रही है कि इन सज्जनों के परलोक-पयान के बाद धर्म की नैया कौन पार लगाएगा, और बेचारा सत्य किसकी चुटिया में घोंसला बना कर नित्य नए अण्डे दिया करेगा?

❀

सुनिए न, ज्योंही मार्कण्डेश्वर महाराज की इस मुसीबत का समाचार सिण्डीकेटी बाबा की धर्मफ़ैक्टरी में पहुँचा, त्योंही धर्म-धुरन्धरों और सत्यसन्धों की एक तिकड़ी कैथी के लिए सरपट रवाना हो गई और उसने घटना सम्बन्धी सारा सत्य चूस कर बाबा के कमण्डलु में भर दिया। बस, बाबा ने उसी के आधार पर सारी व्यवस्था कर दी।

❀

दूसरे सत्यवादी सज्जन हाके-पियासे अदालत दौड़े गए और मजिस्ट्रेट को बताया कि अगर सरकार ने शान्ति की कोई व्यवस्था न की तो सारी कैथी वहाँ के गुसाईं-मण्डल के साथ रसातल को रवाना हो जायगी। अन्त में जब बेचारे मजिस्ट्रेट को वर्णाश्रमी सत्य का सच्चा रूप दिखाई पड़ा और आपने उक्त सज्जन से जवाब तलब किया तो आप दाँत निपोर कर खड़े हो गए। अरे भई, धर्म की रक्षा के लिए तो लोग क्या-क्या नहीं करते, इन्होंने थोड़ा सा झूठ ही बोल दिया तो क्या हर्ज?

❀

फलतः कैथी-काण्ड में काशी के धर्मधुरन्धरों ने अपने जिस रूप का प्रदर्शन किया है, उसमें कोई नवीनता नहीं है। वर्तमान सनातन-धर्म और वर्तमान काल के सनातनी सज्जनों की वही असली मूर्ति है। इस रूप-प्रदर्शन से हरिजन आन्दोलन की जड़ में अवश्य ही घुन लग जायगा और सनातनधर्म की जड़ पोख़्ता हो जायगी।

❀

सुनते हैं, श्रीमान् शङ्कराचार्य स्वामी कुर्त्तकोटी महाराज सर्व-धर्म-सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए अमेरिका जा रहे हैं। फलतः सुधारक समाचार-पत्र चिन्तित हैं कि जब स्वामी जी स्वयं समुद्र-यात्रा के लिए तैयार हैं, तो अब सनातन-धर्म की जान कैसे बचेगी। अरे भाई, जब गोबर-पानी में शङ्कर को शुद्ध कर डालने की शक्ति है, तो शङ्कराचार्य को लौटने पर शुद्ध कर लेते उसे कितनी देर लगती है। आशा है, बाबा ज्ञानानन्द जी ने अभी से तैयारी आरम्भ कर दी होगी।

❀

सिन्ध के मीरपुर ख़ास से एक बड़ी मज़ेदार ख़बर आई है। ख़ुदाबख़्श और अल्लानवाज़ की परदानशीन दूल्हनें एक ही दिन ससुराल आईं। सुहागरात को अल्लानवाज़ ख़ुदाबख़्श की बीबी के पास गए और ख़ुदाबख़्श अल्लानवाज़ की। दूसरी रात को दोनों मियाँ जब अपनी वास्तविक बीबियों के पास पहुँचे, तो राज़ खुला। अब मौलवी साहबों से फ़तवा माँगा गया है। परन्तु हिज़ होलीनेस का फ़तवा तो यह है कि दोनों बीबियों को परदे की बलिवेदी पर क़ुर्बानी कर दी जाय और मौलवी साहबों को दस्तरख़्वान पर बिठा कर पुलाव खिलाया जाय, जिनकी कृपा से दोनों मियाओं को दोनों बीबियों का स्वाद मिल गया।

❀

परन्तु इस बीबी बदलौअल का सारा श्रेय परदा-प्रथा को ही नहीं, वरन् विवाह से पूर्व वर-कन्या को एक दूसरे से अपरिचित रखने वाली समीचीन प्रथा को भी है। विवाह से पहले वरों को कन्याओं की परछाईं तक देखने नहीं दी जाती। इसलिए घर-घर गङ्गा और मदार की जोड़ी परिलक्षित होती है। कहीं ऊँट के गले में बकरी और कहीं किसी बँदरिया की बग़ल में शास्त्री हाथीराम जी!

❀

बात यह है कि लालबुझक्कड़ों के चचा—इधर पुरोहित जी और उधर क़ाज़ी जी जन्मकुण्डली और 'ज़ायचा' देख कर ही वर-कन्या के बाह्याभ्यन्तरीन गुण-दोष और रूप का पता लगा लेते हैं। दोनों के साक्षात् परिचय की कोई आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती। अरे भई, जब काग़ज़ के पन्ने उलटने से ही सारा काम बन जाता है, तो नाहक़ हाथ-पाँव वाले वर-कन्या को क्यों तकलीफ़ दी जाए?

❀

इस मामले के सम्बन्ध में एक और ज़ोरदार दलील भी अपने राम के दिमाग़ शरीफ़ में क़ुलाँचे भर रही है। अर्थात् जब कन्याओं के पिता वरों के पिताओं को मुँह-माँगा मोल देकर अपनी कन्या के लिए वर ख़रीदते हैं तो वर बहादुर को अधिकार ही क्या है कि कन्या की परछाईं भी देख सकें। पहले विवाह होना चाहिए, उसके बाद ज़िन्दगी भर देखिए दिखाइए। पहले से ही देख-सुन लेने की बात कैसी?

❀

कुछ औंधी अक़्ल वाले विवाह सम्बन्धी इन प्राचीन प्रथाओं की निन्दा किया करते हैं। इन्हें मालूम नहीं कि इनकी बदौलत सद्गृहस्थों के घरों में कितनी चहल-पहल रहती है। वधू के घर में आते ही वर से उसका छत्तीस का स्थायी सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और दोनों ही जी-जान लड़ा कर इसे क़ायम रखते हैं। घर की चहल-पहल कलकत्ते के चिड़ियाख़ाने की चहल-पहल को भी मात कर देती है।

❀

इस सारदा एक्ट ने तो 'मरे न माँचा छोड़े' इस कहावत को अक्षरशः चरितार्थ कर दिया। बेचारे धर्म-धुरन्धरों ने इसके श्राद्ध में अपनी कितनी ही दुधमुँही बच्चियों और बच्चों का 'वृषोत्सर्ग' कर दिया। कितने ही बेचारों ने पूर्व-जन्मकृत कर्मफल के अनुसार जेल और जुर्माने का लुत्फ़ उठाया। परन्तु यह क़ानून न मरता है न मुटाता है।

❀

यह ठीक है कि इसके चपेटाघात में पड़ जाने से कितनी ही पुरोहितानियों को अपने धर्मधीर पति पर अदालत द्वारा किए गए जुर्माने की रक़म अदा करने के लिए अपनी झुलनी और झबिया तक बेच देनी पड़ती है। वर्षों की दक्षिणा एक दाँव में स्वाहा हो जाती है। कहीं-कहीं धर्म-प्रेमियों को लगे-हाथ सत्य का श्राद्ध भी कर देना पड़ता है। दस वर्ष की कन्या को चौदह वर्ष की बताने में न पुरोहित जी को सङ्कोच होता है और न कन्या के पिता जी को। गीता और गङ्गा के नाम पर सरे इजलास यह काम अत्यन्त सफ़ाई के साथ हो जाता है।

❀

परन्तु घर से क्या जाता है भाई! तिलक-दहेज़ की हराम की रक़म जुर्माने में चली गई तो इसमें हानि ही क्या है? और तुलसी-गङ्गाजल की तो सृष्टि ही झूठ बोलने के लिए हुई है। अदालत में खड़े होकर थोड़ा सा झूठ बोल देने से धर्म की रक्षा हो जाय, तो इसमें हर्ज ही क्या है?
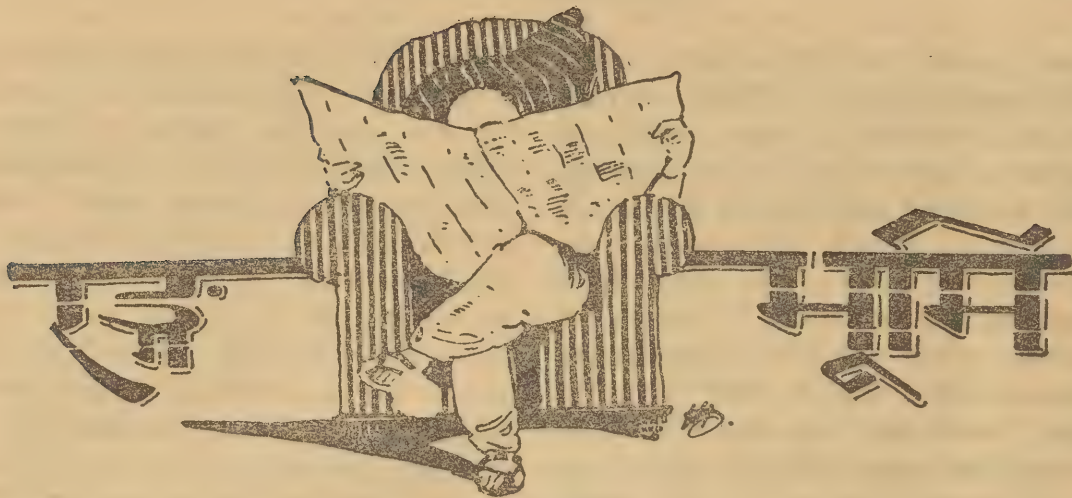
[सम्पादकीय]

शक्कर के व्यवसाय का भविष्य

जब से सरकार ने शक्कर के व्यवसाय को संरक्षण प्रदान किया है और इस कारबार में लाभ होना एक प्रकार से निश्चित हो गया है, तब से शक्कर की नई फ़ैक्टरियों की बाढ़ सी आ गई है। जहाँ दो वर्ष पहले समस्त देश में २९ फ़ैक्टरियाँ थीं, अब उनकी संख्या सौ के लगभग जा पहुँची है, और अभी अनेक नई फ़ैक्टरियाँ खुलती जा रही हैं, जिससे सन् १९३४ या १९३५ में उनकी संख्या कम से कम १२४ हो जायगी। इस सम्बन्ध में पूँजीपतियों में ऐसा उत्साह उत्पन्न हो गया है कि वे आँख बन्द करके इस काम में रुपया लगा रहे हैं और छोटी-छोटी जगहों में दो-दो तीन-तीन फ़ैक्टरियाँ खोली जा रही हैं। इस आकस्मिक और अस्वाभाविक वृद्धि को देख कर यदि भारतीय व्यवसाय के शुभ-चिन्तकों को हृदय में हर्ष के साथ चिन्ता के भाव का भी उदय हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उनको भय हो रहा है कि यदि वृद्धि की गति इसी प्रकार बनी रही तो कुछ ही समय में इतनी अधिक शक्कर बनने लगेगी कि उसका देश में खप सकना असम्भव होगा और इसके फल से विभिन्न व्यवसाइयों में हानिकारक प्रतिद्वन्द्विता का भाव उत्पन्न हो जायगा। इस समस्या पर विचार करने के लिए हाल ही में शिमले में एक 'सुगर कॉन्फ़्रेन्स' हुई थी, जिसमें विभिन्न प्रान्तों के सरकारी प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। कुछ लोगों की सम्मति थी कि सरकार इस सम्बन्ध में एक क़ानून बना दे कि कोई व्यक्ति बिना सरकारी मन्ज़ूरी के शक्कर की फ़ैक्टरी न खोल सकेगा। संयुक्त-प्रान्त के प्रतिनिधि श्री० जे० पी० श्रीवास्तव ने इस आशय का एक बिल भी कॉन्फ़्रेन्स के सामने विचारार्थ पेश किया था। पर अन्य प्रान्त वालों को सम्भवतः यह प्रस्ताव कुछ स्वार्थयुक्त प्रतीत हुआ, क्योंकि अभी तक जितनी शक्कर भारतवर्ष में तैयार होती है, उसमें से ६० प्रतिशत यू० पी० और बिहार की फ़ैक्टरियों में ही बनती है। ऐसी अवस्था में अन्य प्रान्त वालों को स्वभावतः ऐसा जान पड़ा कि यह प्रस्ताव कदाचित् अन्य प्रान्तों में शक्कर के व्यवसाय की वृद्धि को रोकने तथा इस व्यापार की मॉनोपॉली यू० पी० तथा बिहार के ही हाथ में रखने की नीयत से उपस्थित किया गया है। इस कारण कॉन्फ़्रेन्स में ऐसा मतभेद हुआ कि उसे बिना कोई प्रस्ताव पास किए ही कार्रवाई ख़त्म कर देनी पड़ी। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि यदि इस प्रकार का कोई प्रस्ताव पास हो जाता तो वह देश के कल्याण की दृष्टि से बड़ा अनुचित और हानिकारक होता। इस देश में अब भी प्रति वर्ष कई करोड़ रुपए की शक्कर विदेशों से आ रही है, और उन देशों ने इस सम्बन्ध में इतनी अधिक उन्नति कर ली है कि चौदह वर्ष के संरक्षण के बाद भी भारतीय व्यवसायी

उनका मुक़ाबला कर सकेंगे, यह सन्देहजनक है। ऐसी अवस्था में नई फ़ैक्टरियों के निर्माण में बाधा खड़ी कर देना और जो फ़ैक्टरियाँ क़ायम हो चुकी हैं उनको इस बात की गारण्टी दे देना कि वे अपना प्रबन्ध चाहे जैसा बुरा-भला करें, उनको लाभ होता रहेगा, एक दृष्टि से इस व्यवसाय की उन्नति में एक बहुत बड़ा अड़ङ्गा लगा देना है। क्योंकि आधुनिक उद्योग-धन्धे के विकास का मूल प्रतियोगिता ही है। इसी के फल से अधिकांश देशों में सस्ती से सस्ती और बढ़िया चीज़ें बनाने की मशीनें तैयार हो सकी हैं तथा इसी के द्वारा वे अपना व्यापार सर्वत्र फैला सके हैं। इसीलिए अर्थशास्त्र के ज्ञाता जहाँ विदेशी प्रतियोगिता से स्वदेशी व्यवसाय की रक्षा करने का समर्थन करते हैं, देश के भीतर की प्रतियोगिता को वे कभी हानिकारक नहीं बतलाते। यदि थोड़ी देर के लिए मान लिया जाय कि दो-तीन साल में इस देश में शक्कर के इतने कारख़ाने स्थापित हो जायँगे, जो भारतवासियों की आवश्यकता से अधिक माल तैयार करने लगेंगे, तो इसका परिणाम यही होगा कि उनमें आपस में चढ़ा-ऊपरी होने लगेगी और वे जहाँ तक बन पड़ेगा, अपना ख़र्च घटाने तथा अपनी चीज़ को सस्ते भाव में बेचने की चेष्टा करेंगे। इसके फल से तमाम कारख़ाने वाले गन्ने पैदा करने तथा शक्कर बनाने के नए-नए तरीक़ों से काम लेने लगेंगे और कुछ समय में वे भी इस सम्बन्ध में अन्य देशों के व्यवसाइयों के समान दक्ष हो जायँगे। यह सम्भव है कि इस प्रतियोगिता में कुछ कम्पनियों को हानि उठा कर बन्द हो जाना पड़े, पर जो कम्पनियाँ बच रहेंगी उनकी कर्त्तृत्व-शक्ति बढ़ जायगी और इस देश का शक्कर का व्यवसाय सुदृढ़ नींव पर स्थापित हो जायगा। इसके विपरीत यदि कम्पनियों की संख्या नियमित करके उनकी स्थिति निरापद तथा सुरक्षित कर दी गई तो अमीरों के उत्तराधिकारियों की तरह, जिनको खाने-कमाने की कुछ भी चिन्ता नहीं होती, वे निरुद्योगी हो जायँगी और उन्नति के लिए विशेष रूप से चेष्टा न करेंगी। इसके सिवा यह भी नहीं कहा जा सकता कि आज जो कम्पनियाँ स्थापित हो रही हैं, वे सब की सब योग्यतापूर्वक सञ्चालित होती रहेंगी। न मालूम उनमें से कितनी कम्पनियों का काम बद-इन्तज़ामी, फ़िज़ूलख़र्ची अथवा पर्याप्त पूँजी के अभाव से बिगड़ जायगा और उनको दिवालिया हो जाने के लिए विवश होना पड़ेगा। फिर जब यह व्यवसाय वैज्ञानिक प्रक्रियाओं की पूर्ण रूप से सहायता लेकर चलाया जायगा और इसके फल से बाज़ार में शक्कर सस्ती बिकने लगेगी तो उसकी बिक्री तथा ख़र्च बढ़ जाना भी स्वाभाविक है। ऐसी दशा में यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि दो साल बाद इस देश की फ़ैक्टरियाँ ज़रूरत से ज़्यादा शक्कर बनाने लग ही जायँगी। फिर यदि ऐसा अवसर आएगा भी, तो हम भी अन्य देशों की भाँति विदेशों में अपना माल खपाने की चेष्टा क्यों न करेंगे? क्या भारतवर्ष ने इस बात की क़सम खाई है कि वह सदैव विदेशों का बना हुआ माल ख़रीदता ही रहेगा और अपने यहाँ का बना माल कभी बाहर न भेजेगा। इन सब दृष्टियों से कोई देशभक्त भारतवासी इस प्रकार व्यवसाय की सीमा बाँध देने वाले क़ानून का समर्थन न करेगा। सरकारी अधिकारियों को इस सम्बन्ध में चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। व्यवसायी और पूँजी लगाने वाले लोग अपना भला-बुरा बहुत अच्छी तरह से समझते हैं और जब वे देख लेंगे कि इस व्यवसाय में रुपया फँसाना लाभदायक नहीं है, तो वे स्वयं उसमें हाथ न डालेंगे। सरकार का यदि इस सम्बन्ध में कुछ कर्तव्य है तो यही है कि वह गन्ना उत्पन्न करने वाले ग़रीब किसानों के हित की किसी उपाय से रक्षा करे। क्योंकि जब विदेश की सस्ती शक्कर पर भारी कर लगा कर इस व्यवसाय को संरक्षण प्रदान किया गया है और इसके कारण समस्त जनता को हानि उठा कर मँहगी चीज़ ख़रीदनी पड़ रही है, तो न्याय का तक़ाज़ा यही है कि संरक्षण से केवल कारख़ाने वाले और पूँजीपति ही लाभ न उठाएँ, वरन् किसानों को भी उनका उचित भाग प्राप्त हो। इस समय कारख़ाने वालों की यही प्रवृत्ति जान पड़ती है कि वे गुड़ की सस्ती के आधार पर कम से कम दाम पर गन्ना ख़रीदने की चेष्टा करते हैं, जिससे प्रायः किसानों की लागत और मिहनत भी वसूल नहीं होती। यह ढङ्ग देश के हित की दृष्टि से उपयुक्त नहीं है। यदि किसानों की अवस्था असहनीय हो गई और उन्होंने गन्ने की खेती करना

कम कर दिया तो इससे अन्त में इस व्यवसाय को भी बहुत हानि पहुँचेगी। इसलिए सरकार यदि गन्ने की एक कम से कम दर नियत कर दे, जिससे कम में कोई कारख़ाने वाला गन्ना न ख़रीद सके, तो किसानों का बड़ा उपकार होगा और इस व्यवसाय के भविष्य की दृष्टि से भी यह कल्याणजनक होगा।

❀ ❀ ❀

रोग का सच्चा निदान

कुछ ही दिन बीते हैं कि कुछ बदमाश बम्बई के एक धनी गुजराती व्यापारी को पकड़ ले गए और उसके घर वालों को लिख भेजा कि या तो उसके छुटकारे के लिए ५ हज़ार रुपए दो, नहीं तो उसे मार डाला जायगा। घर वालों ने रुपया देने के बजाय पुलिस में इत्तला की। पुलिस बदमाशों का पता न लगा सकी और वे व्यापारी की हत्या करके उसकी लाश को रास्ते में डाल कर चले गए। इस रोमाञ्चकारी घटना के फलस्वरूप बम्बई और अन्य स्थानों के धनवानों में हलचल फैलना स्वाभाविक ही है। यदि यह नई बला, जिसका ज़ोर अभी तक विशेष रूप से अमेरिका में ही था, इस देश में फैली तो प्रत्येक सम्पत्तिशाली व्यक्ति और विशेषकर उसके बाल-बच्चों का जीवन सन्देह में पड़ जायगा। प्रत्येक व्यक्ति सदैव सशङ्कित बना रहेगा कि न मालूम कब उसके ऊपर यह अदृष्ट आपत्ति टूट पड़े। इस दृष्टि से इस नवीन महामारी का हमारे देश में आगमन अत्यन्त अशुभ है और समाज के प्रत्येक शुभचिन्तक का कर्तव्य है कि वह ऐसी चेष्टा करे जिससे यहाँ इसकी जड़ न जमने पाए। पर इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए किस उपाय से काम लिया जाय, यह निश्चय कर सकना बड़ा कठिन है। क्योंकि अमेरिका में इसका मूलोच्छेद करने के लिए अत्यन्त कड़े क़ानून बनाए गए हैं और प्रतिवर्ष करोड़ों रुपए ख़र्च किए जाते हैं, तो भी अब तक इसमें किसी तरह की कमी नहीं पड़ी है। वहाँ के गुण्डे बड़े-बड़े सरकारी अधिकारियों तक की सन्तानों को उठा ले जाते हैं और यदि मुँह-माँगी रक़म नहीं पाते तो उनको मार डालते हैं। इसलिए यह ख़याल करना कि इस बात का प्रतिकार करना सहज है, ठीक नहीं। फिर भी हम देखते हैं कि हमारे यहाँ के कुछ विद्याभिमानी इस समस्या को चुटकियों में हल करने का दावा रखते हैं। उदाहरणार्थ एक हिन्दी पत्र के सम्पादक जी लिखते हैं कि यह कुप्रवृत्ति अमरीकन फ़िल्मों में इस प्रकार के दृश्य देखने के कारण उत्पन्न हुई है और इसलिए सरकार को सिनेमाओं में दिखलाए जाने वाले फ़िल्मों पर विशेष रूप से दृष्टि रखनी भी चाहिए। वाह, कैसा बढ़िया निदान और कैसा सहज नुसख़ा है। शायद यहाँ के लोग चोरी करना और डाका डालना भी अमरीकन फ़िल्मों से सीखे होंगे और जो नीच व्यक्ति दो-चार रुपए के ज़ेवरों के लिए ही बालकों की हत्या कर डालते हैं, वे सब सिनेमा देखने जाते होंगे। ऐसी बातें वे ही लोग करते हैं, जो समाजशास्त्र का कुछ भी ज्ञान प्राप्त किए बिना अटकल-पच्चू लिखने बैठ जाते हैं। यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो इस बला का ही नहीं, वरन् देश में होने वाले अधिकांश अपराधों का मूल कारण जन-साधारण की आर्थिक दुरवस्था और लोगों का बेकार रह कर भूखों मरना है। कहावत है—'मरता क्या न करता।' इसके अनुसार ऐसे लोग, जो उचित साधन पाने पर समाज में भले आदमी की तरह जीवन व्यतीत करते, परिस्थिति में पड़ कर चोर, बदमाश, डाकू, लुटेरे, ठग आदि बन जाते हैं। कुछ समय बाद वे इन कार्यों में अभ्यस्त हो जाते हैं और फिर अन्य उपाय होने पर भी प्रायः अपनी निन्दनीय वृत्ति को ही करते रहना पसन्द करते हैं। ऐसी दशा में बम्बई में होने वाली घटना पर विस्मय में डूब जाना और उसे अमरीकन फ़िल्मों से उत्पन्न समझने लगना व्यर्थ है। जिन लोगों ने किसी कारणवश अवैध मार्ग से जीवन-निर्वाह करना अपना लक्ष्य बना लिया है, वे सदैव कुछ न कुछ खोटा काम करेंगे और वह काम चाहे जिस रूप में हो, समाज के लिए अकल्याणजनक ही होगा। बम्बई की घटना से अगर लोगों में हलचल मच जाती है और वह हमको रोमाञ्चकारी जान पड़ती है, तो इसका कारण यही है कि वह इस देश में एक नई बात है। नहीं तो क्या देश में सदैव पड़ने वाले डाके, जिनमें एक ही बार कई-कई व्यक्तियों को घोर निर्दयतापूर्वक मार डाला जाता है, कम क्रूरतापूर्ण तथा भयङ्कर हैं? क्या छोटे से

दुधमुँहे बच्चे को साधारण ज़ेवर के लिए मार डालना जघन्यता की हद नहीं है? इसलिए हमको भलीभाँति समझ लेना चाहिए कि इस प्रकार की घटनाएँ चाहे जिस रूप में हों, उनका मूल कारण एक ही है। इनके प्रतिकार का अगर कोई वास्तविक उपाय है तो यही कि अमीर लोग ग़रीबों पर अन्याय करना छोड़ें और उनको इतना न सताएँ कि वे मनुष्य के बजाय ख़ूनी जानवर बन जाएँ। इसके सिवा किसी व्यक्ति के जीविका उत्पन्न करने के साधनों को सर्वथा बन्द कर देना और उसे बेकार रहने को विवश करना भी समाज के लिए महा भयङ्कर है। ऐसे बेकार लोग जब भूखों मरने लगेंगे तो अवश्य ही उनके सर पर शैतान सवार होगा और वे भले-बुरे का विचार एकदम छोड़ देंगे। यही कारण है कि प्रत्येक देश में बेकारों की संख्या जैसे-जैसे अधिक होती जाती है, अपराधों की संख्या भी उसी हिसाब से बढ़ती है। अकाल के समय चोरी, डाके और हत्याओं की संख्या के बढ़ जाने का सबब भी यही है। हमारे कहने का आशय यह नहीं है कि जन-साधारण की आर्थिक दुरवस्था और बेकारी को अमीर और शासक जान-बूझ कर उत्पन्न करते हैं अथवा यदि वे चाहें तो तुरन्त इनका प्रतिकार कर सकते हैं। वर्तमान समय में इनका बहुत कुछ आधार अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति पर भी है और अनेक बार प्राकृतिक घटनाओं के फलस्वरूप भी ऐसी अवस्था उत्पन्न हो जाती है। पर यदि समाज के कर्णधार तथा देश के शासक पूर्ण शक्ति द्वारा दीन-निर्यातन तथा बेकारी की वृद्धि को रोकने की चेष्टा करते रहें, तो इस प्रकार के अपराधों में बहुत कुछ कमी हो सकती है और अवस्था के विशेष रूप से भीषण होने की सम्भावना घट सकती है।

❀ ❀ ❀

सह-शिक्षा की उपयोगिता

स्कूल और कॉलेजों में लड़के तथा लड़कियों को एक साथ शिक्षा दी जाय या नहीं, यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसका विरोध केवल दक़ियानूसी लोग ही नहीं करते, वरन् कितने ही आधुनिक शिक्षा प्राप्त तथा सुधारक कहलाने वाले भी उसे हानिकारक बतलाते हैं। इन लोगों के मतानुसार इस प्रकार की व्यवस्था के फल से लड़के-लड़कियों का आचरण शिथिल हो जायगा और उनमें अन्य चरित्र सम्बन्धी दोष भी उत्पन्न हो जाएँगे। पर सच यह है कि इन लोगों ने कभी इस विषय पर भली प्रकार सोचने का कष्ट नहीं उठाया है, वरन् केवल अपनी बद्धमूल धारणा तथा सुनी हुई बातों के आधार पर ही इस प्रकार की सम्मति स्थिर कर ली है। यदि वे पक्षपात और रूढ़ियों के भय को त्याग कर विचार करें तो उनको मालूम हो सकता है कि इस प्रकार की शिक्षा-प्रणाली समाज के लिए कितनी ही दृष्टियों से कल्याणजनक है और हमारे देश का भी उससे बहुत कुछ हितसाधन हो सकता है। इस प्रश्न पर विचार करने को अभी हाल में शिमला की संयुक्तप्रान्तीय हिन्दू एसोसियेशन की तरफ़ से एक 'डिबेट' की व्यवस्था की गई थी, जिसमें अनेक सुयोग्य व्याख्यानदाताओं ने इसका ज़ोरों के साथ समर्थन किया। उन्होंने बतलाया कि आर्थिक और शिक्षा की उत्तमता की दृष्टि से सह-शिक्षा अत्यन्त उपयोगिनी और आवश्यकीय है। यद्यपि हमारे देश में स्त्री-शिक्षा का आन्दोलन आरम्भ हुए बहुत वर्ष हो गए, पर अभी तक लड़कियों के लिए बहुत थोड़े हाई-स्कूल और कॉलेज खोले जा सके हैं और जो खोले भी गए हैं, वे लड़कों के स्कूलों और कॉलेजों की तुलना में बहुत पिछड़े हुए हैं। विज्ञान, डॉक्टरी, क़ानून, इञ्जिनियरिङ्ग आदि विषयों की शिक्षा का लड़कियों के लिए कोई विशेष प्रबन्ध नहीं किया गया है और जो कोई लड़की इनमें से किसी विषय का अध्ययन करना चाहती है, उसे अब भी लड़कों के साथ ही पढ़ना पड़ता है। जब इन विद्यालयों में बड़ी उम्र की लड़कियों के, जिनमें से कितनी ही युवतियाँ होती हैं, लड़कों के साथ पढ़ने से कोई विशेष कुफल नहीं होता तो छोटी उम्र के लड़के लड़कियों के एक साथ पढ़ाए जाने का विरोध किस प्रकार किया जा सकता है? इसके विपरीत इस विषय के विशेषज्ञों की तो यह सम्मति है कि इस प्रकार की सह-शिक्षा से लड़कों के स्वभाव का उजड्डपन और लड़कियों की अतिरिक्त भावुकता का बहुत-कुछ सुधार हो सकेगा। साथ ही बराबर मिलने-जुलने तथा विचार-विनिमय

करने से उनको एक दूसरे की प्रकृति का जो परिचय प्राप्त होगा, उससे वे भावी जीवन में बहुत-कुछ लाभ उठा सकेंगे। हम यह नहीं कहते कि जिन संस्थाओं में इस प्रकार की शिक्षा-प्रणाली प्रचलित है अथवा भविष्य में प्रचलित होगी, उनमें आचरण की शिथिलता का कोई उदाहरण नहीं मिल सकता, पर यदि ऐसा हो तो यह दोष इस पद्धति का नहीं, वरन् व्यक्तियों का समझना चाहिए। अब भी अनेक लड़कियों के स्कूलों में इस प्रकार की घटनाएँ होने की बात सुनने में आती है, पर इसके आधार पर यह निर्णय नहीं किया जा सकता कि लड़कियों को स्कूली शिक्षा दिलाना बुरा है और उनके स्कूलों को बन्द कर देना चाहिए।

❀ ❀ ❀

विदेशी कम्पनियों की लूट

बर्मा ऑयल कम्पनी लिमिटेड की सालाना मीटिङ्ग की, जिसकी बैठक हाल ही में लन्दन में हुई थी, कार्यवाही से विदित हुआ है कि सन् १९३२ में उक्त कम्पनी को १०,५८,१२४ पौण्ड (१ पौण्ड=१३॥ रु०) मुनाफ़ा हुआ जिसमें से उसने अपने हिस्सेदारों को २० प्रति सैकड़ा मुनाफ़ा बाँटा और ४,८१,२११ पौण्ड अगले साल के लिए रख लिया। इस साल समस्त संसार का व्यवसाय बहुत ही गिरी दशा में रहा है और बर्मा ऑयल कम्पनी को बम्बई और उसके आस-पास के स्थानों में रूस से आने वाले पैट्रोलियम के मुक़ाबले में अपनी नियत दर १॥) गैलन के बजाय १) गैलन तक तेल बेचना पड़ा है। ऐसी अवस्था में भी उक्त कम्पनी ने अपने मूलधन का एक तिहाई मुनाफ़ा उठाया। इससे प्रकट होता है कि ये कम्पनियाँ, जिन्होंने किसी उपाय से जीवन की आवश्यक सामग्रियों का एकाधिकार प्राप्त कर लिया है, जनता को किस प्रकार लूटती हैं। इसका अर्थ यह भी है कि इस कम्पनी के हिस्सेदार इस व्यवसाय में लगाई हुई रक़म की न मालूम कितनी गुनी रक़म वसूल कर चुके होंगे और तब भी वे कम्पनी के मालिक तथा मुनाफ़े के हक़दार बने हुए हैं। इसके विपरीत भारत और बर्मा के निवासियों को, जिनकी जन्म-भूमि में ये तेल की खानें हैं और जिनकी मिहनत से ही तेल निकलता है केवल थोड़ी सी मज़दूरी मिलती है। आजकल अधिकांश उन्नतिशील देशों के विद्वानों का यह मत है कि जिन व्यवसायों पर राष्ट्रीय जीवन का आधार है, जैसे रेल, रोशनी, पत्थर का कोयला, मिट्टी का तेल आदि उन पर व्यक्तिगत कम्पनियों के बजाय सरकार का अधिकार रहना चाहिए, ताकि व्यवसायी अपने स्वार्थ के लिए इन आवश्यक वस्तुओं का मूल्य अतिरिक्त रूप से बढ़ा कर जनता को कष्ट में न डाल सकें। यद्यपि यह सिद्धान्त अभी शायद ही कहीं पूर्णतया कार्य-रूप में परिणत हुआ है, पर सभी देशों के शासक इसकी आवश्यकता और उपयोगिता को अनुभव करने लगे हैं और इन व्यवसायों पर जहाँ तक सम्भव होता है सरकारी नियन्त्रण रखने की चेष्टा करते हैं। पर भारत में राष्ट्रीय सरकार का अभाव होने से इस प्रकार का उद्योग कदाचित् ही किया जाता है और यही कारण है कि व्यवसाय की ऐसी भीषण मन्दी तथा जनता की आर्थिक दुरवस्था में भी उक्त कम्पनी इतना लाभ उठा रही है। चूँकि पैट्रोल और मिट्टी का तेल जीवन की आवश्यक वस्तुएँ हैं, इनके बिना आजकल सर्वसाधारण का काम चल सकना कठिन है और इस क्षेत्र में प्रतिद्वन्द्विता भी बहुत कम है, इसलिए ये कम्पनियाँ ग्राहकों के भले-बुरे का ख़याल छोड़ कर अपना जेब गर्म करती रहती हैं। इतना ही नहीं, कुली और साधारण क्लर्कों को छोड़ कर इन कम्पनियों में जितने अधिक वेतन पाने वाले उच्च कर्मचारी होते हैं वे प्रायः तमाम विदेशी होते हैं और उनके वेतन का अधिकांश रुपया विदेश ही जाता है। ये कम्पनियाँ भारतीय युवकों को इस कारबार की शिक्षा देने या दिलाने का भी कोई प्रयत्न नहीं करतीं, न उनकी इस सम्बन्ध में किसी प्रकार की सहायता करती हैं। इस प्रकार ये कम्पनियाँ एक ओर जनता को मनमाना लूटती हैं और दूसरी तरफ़ ऐसी अवस्था बनाए रखती हैं जिससे इस विषय में हमको सदैव उन्हीं पर अवलम्बित रहना पड़े। देश-हित की दृष्टि से यह अवस्था बड़ी असन्तोषजनक है और हमारा कर्तव्य है कि जहाँ तक सम्भव हो इसका विरोध करके इसमें परिवर्तन कराने की चेष्टा करें।

❀ ❀ ❀

भारत में मोटरों का व्यवसाय

आजकल हमारे देश में स्वदेशी की तरफ़ जनता का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हो रहा है और इससे उत्साहित होकर व्यवसायी लोग ऐसी-ऐसी वस्तुओं के निर्माण की चेष्टा कर रहे हैं, जिनको यहाँ बना सकना पहले असम्भव समझा जाता था। उदाहरण के लिए हम बिजली के पङ्खे, बिजली के लैम्प और सीने की मैशीन का नाम ले सकते हैं। पर अब भी ऐसी कितनी ही चीज़ें हैं, जिनकी यद्यपि देश में काफ़ी बिक्री है, पर किसी ने उनके बनाने की तरफ़ ध्यान नहीं दिया है। इन चीज़ों में सबसे मुख्य मोटर-गाड़ी है, जिसका प्रचार दिन पर दिन बढ़ता जाता है और जिसके लिए इस देश का प्रायः ६-७ करोड़ रु० प्रति वर्ष विदेश चला जाता है। अब केवल बड़े लोग ही मोटर पर नहीं चढ़ते, वरन् साधारण देहाती भी प्रायः मोटर लारियों द्वारा ही यात्रा करने लगे हैं। इस प्रकार मोटर केवल विलास की सामग्री ही नहीं रही है, वरन् एक जीवन सम्बन्धी आवश्यकता का रूप ग्रहण करती जाती है। उसके कारण अब गाड़ियों, इक्कों, ताँगों का व्यवसाय घटता जाता है और कोई आश्चर्य नहीं कि शीघ्र ही हमारी आवागमन की समस्त अवश्यकताओं की पूर्ति एक मात्र उसीसे होने लगे। उस अवस्था में हम अपनी एक बहुत बड़ी आवश्यकता के लिए विदेशियों के मुखापेक्षी हो जायँगे। हर्ष का विषय है कि परिस्थिति को समझने वाले व्यवसायियों का ध्यान इस तरफ़ आकर्षित होने लगा है और वे इसके महत्व तथा आवश्यकता को अनुभव करने लगे हैं। कुछ ही सप्ताह पूर्व लाहौर के सुप्रसिद्ध मोटर व्यवसायी श्री० मैडन ने रोटैरी क्लब के सम्मुख भाषण करते हुए इस प्रकार की एक कम्पनी की स्थापना का प्रस्ताव किया था और इस सम्बन्ध में अनेक ज्ञातव्य बातें बतलाई थीं। उन्होंने कहा कि इस कार्य के लिए यदि एक सुसङ्गठित कम्पनी बनाई जाय और वह ऐसे चतुर मोटर बनाने वाले कारीगरों से काम ले, जो इस देश के जलवायु के अनुकूल गाड़ी बना सकें, तो इस कार्य का सफल हो सकना असम्भव नहीं है। यद्यपि नाम के लिए अब भी इस देश में मोटर बनाने वाली कम्पनियाँ हैं, पर वे केवल विदेशों से उसके विभिन्न भाग तथा खुले हुए पुर्ज़े मँगा कर यहाँ उनको जोड़ कर गाड़ी तैयार कर देती हैं। इससे उनको केवल भाड़े की कुछ बचत हो जाती है। इससे देश का कोई विशेष उपकार नहीं हो सकता। हमारा उद्देश्य तो ऐसी कम्पनी स्थापित करना होना चाहिए जो मोटर के तमाम मुख्य भागों और पुर्ज़ों को यहीं उत्पन्न होने वाले पदार्थों से तैयार करे, और विदेशों से केवल उन्हीं इने-गिने पुर्ज़ों को मँगावे, जिनका यहाँ तुरन्त बन सकना सर्वथा असम्भव हो। कल-पुर्ज़ों के काम में भारतवासी नितान्त अयोग्य नहीं हैं और यदि चेष्टा की जाय तथा देश के सम्पन्न व्यक्ति उसमें सहयोग प्रदान करें, तो यह काम कुछ भी कठिन नहीं है। अब से कुछ समय पहले एक बड़े नगर के म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन ने मोटर का काम करने वाले एक मिस्त्री को एक सब प्रकार से स्वदेशी मोटर बनाने का ऑर्डर दिया था, जिसमें तीन हज़ार से अधिक रुपए ख़र्च न हों। म्युनिसिपैलिटी उसके लिए २७०० रुपए दे चुकी है और उसके अधिकांश भाग तैयार हो चुके हैं। यद्यपि उस मिस्त्री ने तमाम काम देशी ढङ्ग के हाथ के साधारण औज़ारों से ही किया है, पर देखने वालों की राय है कि उसका काम किसी तरह ख़राब नहीं कहा जा सकता। ऐसी अवस्था में यदि काफ़ी पूँजी लगा कर और देश के योग्य इञ्जीनियरों और कारीगरों को रख कर आधुनिक मैशीनों से काम लिया जाय तो निश्चय ही सफलता हो सकती है। आजकल इस देश में १९ से २० हज़ार तक मोटर गाड़ियाँ, बहुत सी लॉरियाँ और फुटकर पुर्ज़े विदेशों से आते हैं। यदि यहाँ स्थापित होने वाली कम्पनी इस व्यवसाय का एक भाग भी हस्तगत कर ले तो उसे काफ़ी लाभ हो सकता है और हज़ारों बेकार व्यक्तियों को रोज़गार मिल सकता है।

❀ ❀ ❀

जीव-दया का ढोंग

समाचार-पत्रों से विदित हुआ है कि देहली के पास नरेला नामक स्थान में एक पिञ्जरापोल बनाया जाने वाला है। जिसमें २० हज़ार बन्दरों के रहने की व्यवस्था की जायगी। सम्भवतः इसका व्यय कोई 'धर्म-

शील' महिला या सज्जन प्रदान करेंगे। अब तक तो हम निरुपयोगी गायों के पालनार्थ गौशालाएँ खोज कर धन नष्ट करने का रोना रोते थे, पर इस बन्दरों के पिञ्जरापोल ने तो उससे भी बाज़ी मार ली। बन्दर किसी दृष्टि से मनुष्य के लिए उपयोगी प्राणी नहीं हैं। उनसे हम लोगों का कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष लाभ नहीं होता। इतना ही नहीं मनुष्यों को प्रायः उनके कारण कष्ट और हानि ही उठानी पड़ती है। केवल कुछ मदारी बालकों के मनोविनोदार्थ उन्हें नचाते फिरते हैं। उतना ही उनका उपयोग समझा जा सकता है। ऐसी दशा में बन्दरों को बहुत भारी संख्या में पालना और उसके लिए प्रति वर्ष हज़ारों रुपए ख़र्च करना कहाँ की बुद्धिमानी है। जब हम देखते हैं कि हमारे करोड़ों देशवासियों को आधा पेट खाना भी नहीं मिलता और अनेक छोटे-छोटे बच्चे भोजन के अभाव से मर जाते हैं, तब इस प्रकार के निरर्थक दान को किस प्रकार प्रशंसनीय कहा जा सकता है। इस प्रकार का कृत्य केवल हमारे समाज में फैले हुए अज्ञान और अन्ध-विश्वास का ही परिचायक है। यदि यही मनोवृत्ति बनी रही, तो आश्चर्य नहीं कि किसी दिन गणेश जी के बाहन चूहों और चींटियों के लिए भी आश्रम बनाए जायँ।

❀ ❀ ❀

अन्तर्जातीय विवाह

महात्मा गाँधी राजनीतिक आन्दोलनकारी होने के साथ ही प्रथम श्रेणी के समाज-सुधारक हैं। आपका समाज-सुधार केवल कहने का नहीं है, वरन् आप उदाहरण द्वारा जनता को सुधार की शिक्षा देते हैं। हिन्दू-समाज में पाए जाने वाले जाँत-पात के भेदों और उनमें परस्पर रोटी-बेटी का सम्बन्ध न हो सकने के बन्धन को वे हानिकारक समझते हैं, और इसलिए अब तक अपने कितने ही सहकारियों में अन्तर्जातीय विवाह-सम्बन्ध करा चुके हैं। इस सम्बन्ध में सबसे महत्त्वपूर्ण उदाहरण आपके सुपुत्र श्री० देवीदास गाँधी ने श्री० राजगोपालाचार्य की पुत्री श्री० लक्ष्मी से विवाह करके उपस्थित किया है। इस सम्बन्ध से जहाँ सुधारप्रिय लोगों को हार्दिक आनन्द हुआ है, कट्टर-पन्थी और कूप-मण्डूक सड़ी-गली दलीलें देकर उसको निन्दनीय ठहराने की चेष्टा कर रहे हैं। उनका कथन है कि उच्च वर्ण की कन्या से नीच वर्ण के वर का विवाह होना शास्त्र-विरुद्ध है। कुछ नीच-प्रकृति लेखक यह कह कर कि विवाह के पूर्व एक वैदिक यज्ञ द्वारा श्री० देवीदास को ब्राह्मण बनाया गया था, इस पवित्र घटना का उपहास करने की चेष्टा कर रहे हैं। पर उन लोगों को समझ लेना चाहिए कि उनकी ऊँच-नीच की व्याख्या की पूछ होने के दिन अब चले गए। अब साधारण लोग भी इसे ढकोसले के सिवा कुछ नहीं समझते, चाहे आत्म-बल के अभाव से अथवा परिस्थिति की कठिनता के कारण वे स्वयं उसके विरुद्ध न चल सकते हों। इसी प्रकार शुद्धि और प्रायश्चित्त आदि की क्रियाओं की आवश्यकता भी अन्धविश्वासी और निर्बल चरित्र के लोगों के लिए हुआ करती है। देवीदास और लक्ष्मी जैसे युवक-युवतियों के लिए, जिन्होंने देशोद्धार और जनता के उपकार के लिए अपने जीवन तक की ममता त्याग दी है और जो बड़ी से बड़ी आपत्तियों को सहर्ष सहन कर रहे हैं, इस प्रकार का ढोंग करने की कोई आवश्यकता नहीं। नवीन भारत इसी प्रकार के विवाह-सम्बन्धों को अपना आदर्श मानता है और कट्टर-पन्थियों की 'काँव-काँव' तो क्या, दुनिया की कोई बड़ी शक्ति भी उसे इस मार्ग में अग्रसर होने से नहीं रोक सकती।

❀ ❀ ❀

विश्व आर्थिक कॉन्फ्रेन्स

विश्व आर्थिक कॉन्फ्रेन्स का अधिवेशन समाप्त हो गया। यह तो कहा ही नहीं जा सकता कि जिस उद्देश्य के लिए कॉन्फ्रेन्स की गई थी, वह सफल हुआ; पर अन्तिम दिन विभिन्न राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने जो सम्मतियाँ प्रकट की हैं, उनसे इतना कहा जा सकता है कि इसके फल से विभिन्न देश एक दूसरे के दृष्टिकोण को पहले की अपेक्षा अधिक समझ गए हैं और इसके फल से शायद भविष्य में वे किसी समझौते पर राज़ी हो सकें। यद्यपि लज्जा-निवारण के लिए कॉन्फ्रेन्स

ने विभिन्न विषयों के लिए उप-समितियाँ बना दी हैं, जो अपना कार्य जारी रक्खेंगी और आवश्यकता होगी तो किसी स्थान में अपना अधिवेशन भी कर सकेंगी। पर वर्तमान समय में परिस्थिति ज्यों की त्यों बनी रहेगी और सर्व-साधारण को जिन आपत्तियों को सहन करना पड़ रहा है, उनमें भी अन्तर न पड़ेगा। कॉन्फ़्रेन्स का इस प्रकार का परिणाम निश्चय ही समस्त संसार के लिए अभाग्य का सूचक है। वर्तमान समय में विभिन्न देशों में जो आर्थिक संग्राम चल रहा है, वह सन् १९१४ में होने वाले अस्त्र-शस्त्रों के संग्राम से भी अधिक भीषण है और जनता के लिए उसकी अपेक्षा कहीं अधिक घातक सिद्ध हो रहा है। उस युद्ध में जहाँ यूरोप के दस-पाँच राष्ट्रों ने प्रधान रूप से भाग लिया था, इस आर्थिक युद्ध में संसार का प्रत्येक देश पूर्णतया लिप्त है और प्रत्येक की जनता को अपार क्षति उठानी पड़ रही है। जो देश इस संग्राम में शामिल होना नहीं चाहते अथवा जिनमें इतनी शक्ति नहीं है कि इसमें भाग ले सकें, उन पर भी इसका प्रभाव समान रूप से पड़ रहा है। इसमें बिना गोली और गोलों के प्रयोग किए करोड़ों व्यक्तियों को बेकार होकर घुल-घुल कर मरना पड़ रहा है। किसानों की पैदावार का मूल्य और मज़दूरों की मज़दूरी इतनी कम होती जाती है कि उनका जीवन-निर्वाह असम्भव हो उठा है और वे निरन्तर दरिद्रता के कीचड़ में धँसते जा रहे हैं। विदेशों से आने वाले माल पर भारी-भारी कर, अपरिमित युद्ध-ऋण, सिक्कों के मूल्य का नक़ली तौर पर घटाया जाना और युद्ध-सामग्री में प्रतिवर्ष बड़ी-बड़ी रक़में ख़र्च होते रहना आदि अनेक ऐसे कारण हैं, जिनसे इस व्याधि का जन्म हुआ है और वह बराबर ज़ोर पकड़ती जाती है। कॉन्फ़्रेन्स का उद्देश्य इन्हीं तमाम हानिकारक प्रवृत्तियों का निराकरण करना था। पर खेद के साथ कहना पड़ता है कि विभिन्न राष्ट्रों के केवल अपने स्वार्थ पर दृष्टि रखने से इनमें से किसी विषय का सन्तोषजनक निबटारा न हो सका और आज हम अपने को उसी जगह खड़े पाते हैं, जहाँ कॉन्फ़्रेन्स के पहले थे। यह तो हम अच्छी तरह जानते हैं कि वर्तमान उद्योग-धन्धों तथा पूँजीवादी पद्धति का स्वाभाविक परिणाम इस प्रकार का अर्थसङ्कट तथा उसके फलस्वरूप पारस्परिक युद्ध ही है, तो भी अगर संसार के प्रधान राष्ट्र बुद्धिमानी तथा न्याय से काम लेकर अपने उचित स्वत्व पर सन्तोष करके समझौता कर लेते, तो भावी विग्रह दस-बीस वर्ष के लिए टल सकता था और साधारण मनुष्य फिर कुछ काल के लिए शान्ति का उपभोग कर सकते थे। पर मालूम होता है कि वैभवशाली राष्ट्रों को उनकी तृष्णा ने अन्धा कर रक्खा है और वे चाहे लाचार होकर अपना सर्वस्व गँवा दें, पर ख़ुशी से न्यायानुकूल बँटवारा करने को तैयार नहीं हैं। यदि वास्तव में यह समस्या तय नहीं हुई तो जैसी अनेक यूरोपियन विद्वानों ने भविष्यवाणी की है, इसका फल वर्तमान सभ्यता के नाश के सिवा और कुछ न होगा।

❀ ❀ ❀

भावी-सुधार योजना और स्त्रियाँ

इङ्गलैण्ड का मन्त्रि-मण्डल भारतवर्ष के लिए जो सुधार-योजना तैयार कर रहा है और जिसका कच्चा मसौदा 'ह्वाइट पेपर' के रूप में हमारे सामने आ चुका है, उसमें स्त्रियों के मताधिकार का प्रश्न भी एक विवादग्रस्त विषय है। इस सम्बन्ध में भारतवर्ष की दो प्रमुख महिला संस्थाओं—'आल इण्डिया वीमेन्स कॉन्फ़्रेन्स' और 'वीमेन्स इण्डियन एसोसिएशन' ने ज्वाइण्ट पार्लामेण्टरी कमिटी के सामने एक मेमोरेण्डम पेश किया है, जिसमें कहा गया है कि 'ह्वाइट पेपर' में स्त्रियों के मताधिकार के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव किए गए हैं, वे भारतीय स्त्रियों की माँगों से बहुत कम हैं और उनमें संशोधन की बड़ी गुञ्जायश है। स्त्रियों की माँग आरम्भ में यही थी कि पूर्णतया उनको पुरुषों के समान शर्तों पर मताधिकार दिया जाय। पर यह तभी सम्भव था जब इस देश के लिए वयस्क मताधिकार का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया जाता। क्योंकि इसके सिवा दूसरा कोई मार्ग ऐसा नहीं है, जिससे स्त्रियों को पुरुषों के बराबर 'वोट' प्राप्त हो सकें। पर जब वर्तमान अवस्था में शीघ्र ही ऐसा होने की कोई आशा नहीं है, तो स्त्रियाँ चाहती हैं कि कम से कम उनके चुनाव के सम्बन्ध में कोई ऐसी शर्त न लगाई जाय, जिससे उनकी स्थिति

पराधीनतापूर्ण हो जाय और भविष्य में उनके उत्थान के मार्ग में रोड़े अटकने की सम्भावना हो। उदाहरणार्थ वे 'वोटर' होने के लिए शिक्षा की शर्त को तो स्वीकार करती हैं, पर इस शर्त पर उनको एतराज़ है कि उनको अपने जीवित या मृत पति की जायदाद के आधार पर वोट का अधिकार दिया जाय। इसका आशय यह होगा कि जो स्त्रियाँ विवाह न करेंगी, उनको वोट देने का अधिकार ही न होगा और वे देश के शासन कार्य में भाग न ले सकेंगी। दूसरी हानि इससे यह होगी कि धनवान लोगों को, जो प्रायः अनुदार विचारों के तथा सुधारों के विरोधी होते हैं, एक दृष्टि से दुगने वोट मिल जायँगे। अशिक्षित और पूर्ण-रूप से पराधीन स्त्रियों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे अपने पतियों की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ सम्मति दे सकें। इसलिए स्त्रियों की नई माँग यह है कि कम से कम शहरों में २१ वर्ष की उम्र से अधिक की तमाम स्त्रियों को मताधिकार दे दिया जाय। इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने से स्त्री वोटरों की संख्या क़रीब डेढ़ करोड़ हो जायगी, जो 'ह्वाइट पेपर' के प्रस्ताव के अनुसार ६० लाख से ज़्यादा नहीं हो सकती। इतना होने पर भी स्त्री-वोटरों की संख्या पुरुष वोटरों से चौथाई ही रहेगी। पर वर्तमान समय में स्त्री और पुरुष वोटरों के १ : २१ के अनुपात को देखते हुए इसे सन्तोषजनक वृद्धि कहा जा सकता है। हम आशा करते हैं कि सभ्यताभिमानी अङ्गरेज़, जो अपने यहाँ की स्त्रियों को पुरुषों के समान मताधिकार दे चुके हैं, भारतीय स्त्रियों की इस न्यायोचित माँग की अवहेलना न करेंगे। स्त्रियों का राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश करना देश, समाज तथा सरकार, सभी के लिए लाभजनक है। स्वयं प्रधान मन्त्री मि० मैकडॉनल्ड ने कहा है कि "यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है कि भारत संसार में जिस दर्जे पर पहुँचने की अभिलाषा रखता है, उस दर्जे तक तब तक कदापि नहीं पहुँच सकता, जब तक उसकी स्त्रियाँ शिक्षिता तथा प्रभावशाली नागरिक के रूप में परिणत न हो जायँ।" देखना है कि प्रधान मन्त्री और उनके सहकारी इस उद्देश्य की पूर्ति में भारतीय स्त्रियों को कहाँ तक सहायता देते हैं।

❀ ❀ ❀

एक उपयुक्त प्रस्ताव

बेलारी (मद्रास) में एक 'महिला हितवादी मण्डल' है। उसने अपने चौथे वार्षिकोत्सव के अवसर पर भारतीय स्त्रियों के कल्याणार्थ कई उपयोगी प्रस्ताव पास किए हैं और समस्त भारतीय व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों से अपील की है कि वे उनके अनुकूल क़ानून बनवा कर स्त्रियों पर होने वाले अन्यायों का कुछ अंशों में प्रतिकार करें। इन प्रस्तावों में से एक यह है कि चालीस वर्ष की उम्र से अधिक का कोई पुरुष २१ वर्ष से कम उम्र की स्त्री के साथ विवाह न कर सके और जो इस नियम के विरुद्ध आचरण करे उसे फ़ौजदारी क़ानून के अनुसार दण्ड दिया जाय। इसमें सन्देह नहीं कि बेलारी के 'महिला हितवादी मण्डल' ने समाज और धर्म की प्रचलित रूढ़ियों का भय त्याग कर एक ऐसा प्रस्ताव किया है, जो प्राकृतिक नियमों के अनुकूल है। वर्तमान समय में हिन्दू-समाज में अनेक विवाह ऐसे होते हैं, जो व्यभिचार की अपेक्षा भी अधिक दूषित समझे जाने चाहिए और जिनका उदाहरण घोर असभ्य तथा जङ्गली लोगों में भी नहीं मिल सकता। जिन जातियों में विवाह-बन्धन बहुत ही शिथिल है और जिनकी स्त्रियाँ सहज ही में इच्छित पुरुष के साथ सम्बन्ध कर सकती हैं, उनमें भी यह नहीं देखा जाता कि एक दस-बारह वर्ष की लड़की को पचास या साठ वर्ष के व्यक्ति के साथ सहवास करने को बाध्य होना पड़े। इस प्रकार का सहवास-सम्बन्ध कितना अप्राकृतिक और अरुचिकर है, इसके लिए दलील देने की आवश्यकता नहीं। जो व्यक्ति लड़की के द्वारा बाबा कहे जाने के योग्य है, वह उसे 'प्रिये' कह कर उसके साथ अपनी काम-वासना चरितार्थ करता है, वह वास्तव में पशु से भी अधम है। ऐसे सम्बन्ध के फल से समाज में अनेक घोर दोषों का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। जिस समाज में ऐसे अनमेल विवाह अधिक संख्या में होंगे, उसका दिन पर दिन अधोगति के गढ़े में गिरते जाना अनिवार्य है। इसलिए यदि हम अपना कल्याण चाहते हैं और सभ्य-समाज में अपने को उपहासास्पद सिद्ध करना नहीं चाहते तो हमको अवश्य ही इस प्रकार की

गर्हित प्रथा का अन्त करना पड़ेगा। इसके लिए पुराने शास्त्रों और रूढ़ियों की दुहाई देना व्यर्थ है। क्योंकि वर्तमान समय में न तो कोई व्यक्ति प्राचीन काल की भाँति चारों आश्रमों का पूर्ण रूप से पालन करता है और न वर्णों की व्यवस्था शुद्ध रूप में स्थिर है। प्राचीन काल में लोग प्रायः चालीस-पचास वर्ष की अवस्था में विधुर होने पर वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार कर लेते थे और केवल धर्म-कर्म में समय व्यतीत करते थे। पर आजकल देश-काल सर्वथा बदल गया है और इस कारण शास्त्रों और स्मृतियों के नियम अव्यवहारिक हो गए हैं। इसलिए आवश्यकता है कि इस प्रकार के प्रश्नों का निर्णय हम उनकी बुराई-भलाई को समझ कर करें, और जो प्रथा प्रत्यक्षतः अस्वाभाविक तथा हानिकारक जान पड़ती हो, उसे निस्सङ्कोच भाव से त्याग दें।

❀ ❀ ❀

प्रो० सेन गुप्त का स्वर्गवास

गत २३ जुलाई को बङ्गाल के सुप्रसिद्ध नेता तथा राष्ट्र के सच्चे सपूत श्री० जे० एम० सेन गुप्त का स्वर्गवास हो गया। यह घटना ऐसी आकस्मिक हुई कि लोगों को उस पर जल्दी विश्वास भी नहीं हुआ। यद्यपि वे दीर्घकाल से नज़रबन्द रहने के कारण इधर कितने ही दिनों से अस्वस्थ थे और इसीलिए जलवायु परिवर्तनार्थ राँची लाए गए थे, पर उनका अन्त इतना शीघ्र हो जायगा, इसकी किसी ने कल्पना भी नहीं की थी। अभी उनकी उम्र केवल ४८ वर्ष की थी और देश उनसे बड़ी-बड़ी आशाएँ लगाए हुए था। पर कराल काल ने उन पर पानी फेर दिया! इस महान कष्ट से अधीर होकर भारतमाता दुःख के आँसू बहा रही है। आज बङ्गाल में कोई ऐसा नेता दिखलाई नहीं देता, जो उनके स्थान की पूर्ति कर सके। उनका समस्त जीवन त्यागमय था और देश-सेवा के लिए धन और मान तो क्या, उन्होंने अपना तथा अपने परिवार का जीवन तक अर्पण कर दिया था। कॉङ्ग्रेस आन्दोलन में भाग लेने के कारण उनको बार-बार क़ैद और नज़रबन्दी की सज़ाएँ दी गईं और प्रत्येक बार उनके स्वास्थ्य की बहुत कुछ हानि हुई, पर उन्होंने कभी पीछे पैर न हटाया और जब जैसी आवश्यकता हुई, उसी प्रकार वे देश की सेवा करने को तैयार हो गए। सरकार को भी उनकी दृढ़ता तथा योग्यता का इतना विश्वास था कि पिछली बार विलायत से लौटने पर उसने उनको देश में पैर रखने का भी अवसर नहीं दिया और जहाज़ पर ही क़ैद करके जेलख़ाने भेज दिया। पर वास्तव में यह सरकार की भूल थी और कदाचित् अब उसको इसका अनुभव होगा। बङ्गाल के नवयुवकों में जो असन्तोष की भीषण लहर फैली हुई है और उसके प्रभाव से जिस प्रकार वे सहज ही में आतङ्ककारी कार्यों में भाग लेने को तैयार हो जाते हैं, उसका प्रतिकार अगर कोई व्यक्ति कुछ अंशों में कर सकता था तो वे सेन गुप्त ही थे। अगर वे हज़ारों गर्म मिज़ाज के असन्तुष्ट युवकों को संयत करके शान्तिमय आन्दोलन में न लगा देते तो आज बङ्गाल के क्रान्तिकारी आन्दोलन की अवस्था और भी विकट होती। उनके समान योग्य और देशभक्त व्यक्ति यदि किसी अन्य स्वतन्त्र राष्ट्र में होता तो उसे अवश्य ही कोई बहुत बड़ा और उत्तरदायित्वपूर्ण पद दिया जाता और उसकी गणना विश्वविख्यात राजनीतिज्ञों में होती। पर इस अभागे देश में ऐसे व्यक्तियों को अपना जीवन कष्टों और लाञ्छनाओं को सहन करते हुए ही व्यतीत करना पड़ता है और इसी अवस्था में प्रायः उनका अन्त हो जाता है। वर्तमान समय में देश में जो विकट अवस्था उपस्थित हो रही है और चारों तरफ़ से व्यापक परिवर्तन की जैसी सम्भावना जान पड़ रही है, उसे देखते हुए श्री० सेन गुप्त का परलोक-गमन और भी दुःखदायी है। इस गम्भीर शोक के अवसर पर हम उनके परिवार वालों के साथ आन्तरिक समवेदना प्रकट करते हैं।

बातचीत

निम्नलिखित नए ग्राहक नम्बर के ग्राहकों के रुपए जून और जुलाई सन् १९३३ में हमें मिले हैं। ग्राहकों को चाहिए कि वे अपने नम्बर सदैव स्मरण रक्खें और पत्र-व्यवहार के समय नम्बर का हवाला अवश्य ही दे दिया करें, ताकि पत्रों की उचित कार्यवाही शीघ्र हो जाय। बिना ग्राहक-नम्बर के उचित कार्यवाही करना किसी भी हालत में सम्भव नहीं है।

ग्राहक-नम्बर	नाम	प्राप्त रक़म
३२९८५	मिस लक्ष्मीबाई चूड़ामणि, झाँसी	६॥)
३२९८६	बाबू सुन्दरलाल, डगसाई ...	३॥)
३२९८७	श्री वंशीधर प्रसाद गुप्त, आरा ...	,,
३२९८८	श्री गिरधरलाल, शर्मा मु० पो० बैर	६॥)
३२९८९	ऑनरेरी सिक्रेटरी इण्डियन इन्स्टीट्यूट, हाथरस	,,
३२९९०	मैनेजर राष्ट्रीय पुस्तकालय, अतरौली	,,
३२९९१	श्री मोहनलाल, मौरानीपुर ...	,,
३२९९२	गोस्वामी तुलसीदास, लायलपुर ...	,,
३२९९३	श्री राधाकृष्ण, पो० साहेबगञ्ज ...	,,
३२९९४	श्री खड्गबहादुर, पो० सुखिया पोखरी	,,
३२९९५	ग्राम सुधारक समिति, पो० नरहन	३॥)
३२९९६	श्री बी० एल० शर्मा, कलकत्ता ...	६॥)
३२९९७	श्रीमती कुँवरानी साहिबा ऑफ़, पटियाला शिमला	,,
३२९९८	हेडमास्टर, डी० ए० वी० हाईस्कूल कञ्जरूर दत्तन ...	,,
३२९९९	हेडमास्टर डी० वी० ए० वी० मिडिल स्कूल पो० खेरा	,,
३३०००	श्री लक्ष्मीचन्द शर्मा, पो० मण्डावा	,,
३३००१	श्री बाई साहिबा, ऑफ़ शिवगढ़ रीवाँ	,,
३३००२	श्री ठाकुरप्रसाद, पो० चैनपटिया ...	३॥)
३३००३	मेसर्स लछमनसिंह देवसिंह, कला ..	,,
३३००४	श्री वामनदास, छपरा ...	६॥)
३३००५	श्री सरस्वतीप्रसाद लाल, पो० नवगाँव	६॥)
३३००६	श्रीमती उमा देवी, बनारस सिटी ...	,,
३३००७	श्री रामकृष्ण शर्मा, पो० सनजू ...	३॥)
३३००८	श्रीमती रुक्मिणीबाई, हाथरस ...	६॥)
३३००९	इण्डियन इन्स्टिट्यूट, ग़ाज़ियाबाद ...	६)
३३०१०	श्री इन्द्रसेन धेई, बिलासपुर ...	६॥)
३३०११	मैनेजर, सुख-सञ्चारक कं० मथुरा ...	,,
३३०१२	मेसर्स विष्णुदास रामगोपाल, पो० लातूर	,,
३३०१३	महाराज साहेब नाहरसिंह जी, पो० हमीरगढ़	,,
३३०१४	श्री फ़क़ीरचन्द, पीलीभीत ...	३॥)
३३०१५	ठाकुर वचनसिंह, चमोली ...	६॥)
३३०१७	श्रीमती इन्द्रप्रभादेवी, गया ...	३॥)
३३०१८	सेठ दीपचन्द केसरमल, पो० निहालोड	६॥)
३३०१९	कुमारी गिरजादेवी पाल, पो० असकोट	,,
३३०२०	श्री एस० एन० पिशान, पो० किस्तार	,,
३३०२१	मेसर्स रतनचन्द, पो० एरीनपुरा ...	,,
३३०२२	मेसर्स जानकीप्रसाद शारदाप्रसाद, दमोह	,,
३३०२३	श्रीमती विद्यावती देवी जौनपुर ...	३॥)
३३०२४	श्री तोताराम जयपुर	६॥)
३३०२५	श्री भक्तिलाल पुर्णिया ...	,,
३३०२६	श्री देवीदयाल दार्जिलिङ्ग ...	,,
३३०२७	श्री रामबड़ाई पाठक, मुजफ़्फ़रपुर ...	,,
३३०२८	श्रीमती हरीप्रिया देवी, दिल्ली ...	,,
३३०२९	श्री बृजलाल पो० सतनाली ...	३॥)
३३०३२	आर्य-समाज लुधियाना ...	६॥)
३३०३३	पब्लिक जैन-लायब्रेरी सहारनपुर ...	५)
३३०३४	मे० बेनीप्रसाद केदारनाथ बम्बई नं० २	६॥)
३३०३५	श्री रामअवतारसिंह मुङ्गेर ...	,,
३३०३६	श्री जी० बी० मेहरोत्रा शाहजहाँपुर	,,

ग्राहक-नम्बर	नाम	प्राप्त रक़म
३३०३७	श्री लीलाधर बम्बई नं० ३ ...	६।।)
३३०३८	मेसर्स रूपचन्द राजमल पो० केकरी	३।।)
३३०३९	मेसर्स कुमारजी ओंकारजी, अञ्जर ...	१२)
३३०४१	विलेज स्कूल लायब्रेरी पो० पेटलावद	६।।)
३३०४२	श्री मित्र-मण्डल वाचनालय पो० मचलपुर	"
३३०४३	बा० सहदेवनारायण बसन्तपुर ...	"
३३०४४	श्री के० सी० केसर हेनज़ादा ...	"
३३०४५	पं० नाथूराम शर्मा, चाँदा ...	३।।)
३३०४६	मे० मोतीलाल देवदत्त बाडवीन ...	६।।)
३३०४७	श्री राम लभाई रङ्गून	"
३३०४९	हिन्दी-पुस्तकालय इनसेन ...	३।।)
३३०५२	श्री विद्यावती, नागपुर ...	६।।)
३३०५३	के० बी० गुप्ता, नागपुर सिटी ...	३।।)
३३०५४	श्यामसुन्दरलाल, गया ...	६।।)
३३०५५	श्री बृजराजसिंह, आगरा ...	"
३३०५६	डिस्ट्रिक्ट गज़ट, मैनपुरी ...	५।।)
३३०५७	श्रीयुत छोटेलाल, लाहौर ...	३।।)
३३०५८	मिसेज़ पदम किशनदास, कानपुर ...	"
३३०५९	श्री गुलज़ारीलाल, नवलगढ़ ...	६।।)
३३०६०	कुमारी पुष्पावती, पो० मुङ्गवानी ...	३।।)
३३०६२	श्री पी० एल० कोचर पो० उमर खेड़	६।।)
३३०६३	बीबी चरनदेवी होशङ्गाबाद ...	३।।)
३३०६६	श्री हरीभाई वासी किसूमू ...	९।।।=)
३३०६७	ला० मनुईलाल शाह पो० भीरा ...	६।।)
३३०६८	श्री शिवलाल शाह, कलकत्ता ...	"
३३०६९	श्री आर० एस० उपादे शोलापुर सिटी	"
३३०७०	श्री० रामेश्वरप्रसाद वर्मा, चम्पारन	३।।)
३३०७१	मे० रामजी भरतप्रसाद, चन्दौली	"
३३०७२	श्री० देवराज, पो० उमरखेड ...	"
३३०७२-ए	डा० रामविलास गुप्ता, सरैयागञ्ज	६।।)
३३०७३	मे० बबूलदास छगनलाल पटेल, गङ्गाकिरी	"
३३०७४	श्री० एस० एल० श्रीवास्तव, चक्रधरपुर	"
३३०७५	श्री० गोरखसिंह, मोतीहारी	"
३३०७६	श्री० वैद्यनाथ, हज़ारीबाग़ ...	"
३३०७७	श्री० मुकन्दलाल, शिमला ...	"
३३०७८	एस० गायत्री देवी भार्गव, मथुरा	"
३३०७९	श्रीमती मायादेवी, जोधपुर ...	"

ग्राहक-नम्बर	नाम	प्राप्त रक़म
३३०८०	श्रीयुत शिवशङ्कर, मझौलिया ...	६।।)
३३०८१	श्री० जौहरीलाल, पो० ब्यावर ...	"
३३०८२	मिस विशुनकुमारी, गुजरानवाला	"
३३०८३	श्रीमती सावित्रीदेवी, मुज़फ़्फ़रनगर ...	"
३३०८४	श्रीमती चन्द्रशीला, अकालगढ़ ...	"
३३०८५	मे० रिखीचन्द काशीराम, पो० लकवार	३।।)
३३०८६	मिस कमलाकुमारी, उदयपुर ...	"
३३०८७	मे० शङ्करप्पा आदि, धारवार ...	६।।)
३३०८८	श्री० मुरलीधर, चिरावा ...	"
३३०८९	'जनता पत्रालय' अनूपशहर ...	५)
३३०८९-ए	चौबे रुद्रदत्त, पो० सिवली ...	६।।)
३३०९०	श्री० मदनलाल अग्रवाल, दोहद ...	"
३३०९१	एच० एच० क्षत्रिय स्कूल, आरा	"
३३०९२	श्री० सुन्दरलाल, सरैयागञ्ज ...	"
३३०९३	सेठ किशोरीलाल, एटा ...	"
३३०९४	कुँ० भानुप्रतापसिंह, बुलन्दशहर ...	"
३३०९५	श्री० दुर्गादयाल, बाराबङ्की ...	"
३३०९६	मे० कुञ्जबिहारीलाल, हमीरपुर ...	"
३३०९७	मे० पञ्जूमल भोजराज, पो० मीरपुर खास	"
३३०९८	श्री० राधाश्याम जैन, कलकत्ता ...	"
३३०९९	मिस्टर गोपाल जी हेमराज बम्बई नं० २	"
३३१००	श्री० वी० एस० परमानिक, बम्बई नं० ७	"
३३१०१	श्री० जुगलकिशोर, मुँगेर ...	३।।)
३३१०२	हेडमास्टर, स्कूल विटकुली पो० निपानया	"
३३१०३	हेड मास्टर, ली० एच० ई० स्कूल, मुँगेर	६।।)
३३१०४	श्रीमती कमल अस्तवंस, अम्बाला	"
३३१०५	बाई सुन्दर बाई, अमरावती	६।।)
३३१०६	लाल युगराजसिंह, पो० जलेसर	"
३३१०७	श्री नरहर लछमण कुलकरनी निज़ाम स्टेट	"
३३१०८	श्री० अमरनाथ, दिल्ली ...	"
३३१०९	श्री० गोरखनाथ सरकार, मेन बाज़ार गोरखपुर	"
३३११०	श्री जमुनाप्रसाद वर्मा, पुर्निया ...	"
३३१११	श्रीमती ताराबाई, दुर्ग ...	३।।)
३३११२	मलिक फ़ज़लहुसैन गुरदासपुर ...	६।।)
३३११३	पं० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, बलिया ...	३।।।)
३३११४	श्री प्रतापसिंह मुकलसर, (जोधपुर)	६।।)
३३११५	श्री मन्नालाल तिवारी, भाटखेड़ी ...	"

ग्राहक-नम्बर	नाम	प्राप्त रक़म	ग्रा० नं०	प्राप्त रक़म	ग्रा० नं०	प्राप्त रक़म
३३११६	श्री प्रेमप्रकाश अस्थाना, रायबरेली	६॥)	३१८४१	३॥)	६३३३	६॥)
३३११७	श्री रामशरण अग्रवाल, हमीरपुर ...	,,	५८३०	६॥)	५७६६	,,
३३११८	पं० वंशीधर दुबे, कन्नौज ...	,,	२८६४२	,,	६६६३	,,
३३११९	श्री मनोहरलाल, धर्मशाला काँगड़ा	,,	२७२३६	,,	२६२८६	,,
३३१२०	श्री० के० लेट्टे, मुज़फ़्फ़रनगर ...	३॥)	३०७०५	,,	३०६८६	५)
३३१२१	ला० छोटेलाल सुल्तानसिंह मुज़फ़्फ़रनगर	,,	३०७३४	३॥)	३०५५८	६॥)
३३१२२	श्री० एम० एम० माथुर, इन्दौर ...	६॥)	२८४३६	५)	३०६७७	,,
३३१२३	श्री० पी० एम० चन्द्र, ग्वालियर ...	५॥)	२७०२४	६॥)	२८५२५	,,
३३१२४	डॉ० पी० एन० बाट्सल, फ़तेहगढ़	६॥)	९७४३	३॥)	२८७२९	५)
३३१२५	भाई गोबरधन दामजी भाई, घनसोर	,,	२५८६२	,,	२६०६५	६॥)
३३१२६	श्री नरेन्द्र प्रतापसिंह, सीतापुर ...	,,	३०६३६	६॥)	३२०६	६॥)
३३१२७	श्री बच्चीसिंह मेहरा, नैनीताल ...	,,	३२२०७	३॥)	१८३२०	,,
३३१२८	श्री डी० के० लक्ष्मीनारायण अय्यर,		७५८८	८॥=)	२६३६४	,,
	त्रिचनापल्ली	,,	२६३६७	६॥)	३०७६४	,,
३३१२९	श्री यशोदानन्द सजावाल, मधुबनी	,,	३०७०३	,,	३१९६५	,,
३३१३०	श्री आर० पी० हेडा०, अमरावती ...	,,	१८३६०	,,	२८५७६	,,
३३१३१	श्री बरकतराय मालगुज़ार, भारवा चम्मू	३॥)	२८६९८	,,	२८६२०	,,
३३१३२	श्री लखननारायण गुप्ता, हवड़ा ...	,,	२८६२८	,,	२६१३२	,,
३३१३३	पं० चन्द्रिकाप्रसाद, छिन्दवाड़ा ...	६॥)	२८४५६	,,	२६४०४	,,
३२१३४	श्री शिवनन्दप्रसाद, मुङ्गेर ...	२)	२६३०७	,,	२६२३६	,,
३३१३५	श्रीमती विद्यावती बाई मिश्र, बुलन्दशहर	३॥)	२६२३१	,,	२६२३०	,,
३३१३६	श्री गिरजादयाल शुक्ल, नागपुर ...	,,	२६२५३	,,	२६१५५	,,
३३१३७	कुँवर हरप्रसादसिंह, रायबरेली ...	६॥)	१९०२१	,,	१९४५१	,,
३३१३८	श्री मूलराज दत्त, लाहौर ...	,,	१६२६८	,,	१६२१४	,,
३३१३९	मिसेज़ पं० भीखाराम हरद्वार ...	,,	१६०७५	,,	१८६२७	,,
३३१४०	श्री सङ्खला मँगनीराम जोधपुर ...	,,	१८८४४	,,	१८६१७	,,
३३१४१	श्री बुधराम मालगुज़ार दुर्ग ...	३॥)	१८९७६	,,	१८९१०	,,
३३१४२	श्री कन्हैयाशरण मिश्र, आज़मगढ़ ...	,,	१८७६२	,,	१८७९३	,,
३३१४३	श्रीमती जनकनन्दिनी सिन्हा, मुज़फ़्फ़रपुर	,,	१८८४६	,,	१६१७४	,,
३३१४४	श्री नेमीचन्द जैन, आगरा ...	६॥)	१६१६६	,,	१८४६५	,,

निम्न-लिखित पुराने ग्राहक नं० के ग्राहकों के रुपए हमें जून और जुलाई मास में प्राप्त हुए हैं।

ग्रा० नं०	प्राप्त रक़म	ग्रा० नं०	प्राप्त रक़म	ग्रा० नं०	प्राप्त रक़म	ग्रा० नं०	प्राप्त रक़म
				२७२४८	,,	३२१६०	,,
				३२०७०	,,	३१८८०	,,
				३१६७३	,,	२६६०२	,,
३२८३०	६॥)	२३५८२	६॥)	३०८३८	,,	३०६७८	,,
२६२२६	,,	२६२१८	१॥)	३०६७९	,,	३०६६०	,,
२५९२६	,,	२५४६	६॥)	३०६७४	,,	३०८१७	,,
१८५६५	,,	१८६५७	,,	३०५९५	,,	३०७८३	,,
२४७४६	,,	३१६२७	३॥)	३०७८६	,,	३०६२६	,,

ग्रा० नं०	प्राप्त रक़म	ग्रा० नं०	प्राप्त रक़म	ग्रा० नं०	प्राप्त रक़म	ग्रा० नं०	प्राप्त रक़म
३०८०४	६।।)	३०७१२	६।।)	२८६९२	६।।)	२८६८०	६।।)
३०७०७	,,	३०८८८	,,	२९११२	,,	२९२२१	,,
३०८५८	,,	३०८३३	,,	२९२२७	,,	३०४६३	१)
३०८०५	,,	३०६९८	,,	३२१८०	,,	२९९७२	६।।)
३०७४४	,,	३०४२३	,,	३०९७३	,,	३०८९०	,,
२८७९१	,,	२८८५३	,,	३०८६९	,,	३०७३१	,,
२८७८५	,,	२८८९३	,,	३०६३४	,,	३०७७१	,,
२८९१०	,,	२८९०४	,,	३०८६२	,,	३०८३०	,,
२८७५९	,,	३०८७४	,,	३०६७५	,,	३०६९४	,,
२८७७५	,,	२८६९७	,,	३०७९२	,,	३०७५७	,,
२८६०५	,,	२८६०१	,,	३०७१०	,,	३०९८७	,,
२८६२९	,,	१८४०७	,,	३०६२९	,,	३०७२३	,,
१८२२०	,,	१८३७२	,,	३०७०९	,,	३०७०१	११)
१८४१६	,,	१८५९३	,,	२८७५४	,,	२८७८९	६।।)
१८६४४	,,	१८५२२	,,	२८८११	,,	२७६११	,,
१८३३९	,,	१२६९३	,,	२८९५७	,,	२८५७२	,,
९४१८	,,	९९४९	,,	२८६२५	,,	२८४०१	,,
९७७८	,,	९७०९	,,	२८७४९	,,	२९२३७	,,
९७१५	,,	९७७४	,,	२९४३४	,,	२६३३३	,,
९८५९	,	५८२५	,,	२९२७१	,,	२६२००	,,
७[illegible]४२	,,	६२३६	,,	२९४२२	,,	२९३९५	,,
७१५	,,	३९८९	,,	२९३५३	,,	२९३२४	,,
४०२०	,,	४०१८	,,	२६२२३	,,	९७६२	,,
१४४१	,,	९२३	,,	९५८५	,,	९९३३	,,
१४५८	,,	१४५६	,,	९८१०	,,	९६९१	,,
९९१	,,	४०५५	,,	९९८९	,,	९७६२	,,
२८१७७	४।।=)	१७८४३	,,	९५१७	,,	९९४०	,,
९२०४४	९।।)	३०८४५	,,	९९२५	,,	१०२८२	,,
३०४४४	६।।)	३०७५८	३।।)	१०२८०	,,	१००८७	,,
२९९४४	,,	१८७३१	६।।)	१८७३६	,,	१९०२७	,,
१८५२३	,,	१८८१९	,,	१८८५३	,,	१८७९५	,,
२४१९१	,,	२५८०९	,,	१८७४२	,,	१८९२९	,,
२८८२५	,,	२८६९३	,,	१८७८९	,,	१८७३३	,,
२६३०८	,,	२९१४९	,,	१८७६२	,,	१८७४०	,,
२६२१४	,,	२६३७५	,,	१८७२१	,,	१८६५९	,,
२६३०३	,,	१०७०४	,,	१८५३३	,,	१७८६७	,,
१२९०७	,,	६३९४	,,	१८३३२	,,	१६२६३	,,
२५१२	,,	२४७१	,,	१३७०३	,,	६३७२१	,,

ग्रा० नं०	प्राप्त रक़म	ग्रा० नं०	प्राप्त रक़म
९३१५	६॥)	२४९३	६॥)
४१५७	,,	४०१७	,,
३७५१	४॥)	२४९७	,,
२४१३	६॥)	१४८८	,,
९९५	,,	२५२५४	,,
३०९२४	३॥)	३०९४४	,,
९९९९	६॥)	७६९५	,,
२८७३५	,,	२८७२०	,,
२५३४	,,	१९८४	,,
१८९०९	,,	१९०७९	,,
१३७७३	,,	१३६९३	,,
१२६५७	,,	३१८३९	,,
३१८२४	,,	३२५५०	,,
१८७८२	,,	२५३८७	५)
१४०८४	,,	३२२५६	३॥)
३०८५०	,,	१५३५	६॥)
२८७७३	,,	३०९१८	,,
१४५७	,,	२८४६७	,,
२६३३५	,,	६३१८	,,
१८६२८	,,	१८५१४	,,

निम्न-लिखित ग्राहक-नम्बर के ग्राहकों को अगले मास के पहले सप्ताह में 'चाँद' वी० पी० द्वारा भेजा जायगा। ग्राहकों को चाहिए कि वी० पी० भेजने के पूर्व ही मनीऑर्डर द्वारा रुपए भेज दें या वी० पी० पहुँचने पर उसे स्वीकार कर लें। चन्दा समाप्त होने की सूचना इसी अङ्क के साथ है।

१५०७ १५९९ १६०१ १६२३ २५९९ २६११ २६२० २६२९ २६५७ २६७७ २६८१ २७१७ २७५० ३५०९ ६२१९ ६५२४ १९३४१ १९३५४ १९३६८ १९४०१ १९४०५ १९४११ १९४१८ १९४१९ १९४७३ १९४९५ १९५१५ १९५१९ १९५६९ १९५७२ १९५७४ १९५८५ ७६४ ४१३९ ४१४० ४२२० ४२३४ ४२५२ ४२७१ ४७९७ ४३०४ ४३१९ ४२४३ ५७०९ ६४९७ ६५७० ६५९९ ६६०२ ९३५९१ १९५९२ १९५९५ १९६०७ १९६२३ १९६२४ १९६२९ १९६३० १९६३१ १९६३३ १९६३६ १९७१६ १९७२२ १९७४३ १९७५५ १९८०३ १९८०९ १९८१६ ६६१३ ६६१७ ६६१८ ६६२० ६६३७ ६६४४ ६६८७ ६६८८ ६६९६ ६६९८ ६७१० ६७५९ ६७७१ ६७८० ६८३८ ६८५१ ८१८१ १९८३२ १९८४७ १९८४९ १९८५१ १९८७१ १९८७७ १९८७९ २००९५ २००९८ २०११३ २०१६७ २०२३१ २०२०४ २०२१९ २३३५२ २०४०० २३७४३ २४५९८ १०२९४ १०३१२ १०३३३ १०३३९ १०३५३ १०३५६ १०३५७ १०३६० १०३६६ १०३९१ १०३९६ १०४६३ १०४८८ १०४८९ १०६२३ १०६५१ १०६६५ २४७३५ २४८६९ २५४७७ २६३८५ २६५७९ २६५८८ २६५९० २६५९२ २६६०२ २६६०६ २६६१९ २९६२१ २६६२४ २६६३९ २८२९४ २८५८५ २८८४३ २८९१८ १०६८७ १०६९२ १३९८९ १४००१ १४००९ १४०१० १४०१३ १४०१४ १४०४६ १४१८० १४२१९ १४२३७ १४२४० १४२५७ १४२६९ १४३१५ १४३७२ १४३७५ २८९६३ २८९९१ २८९९३ २८९९४ २८९९५ २९००६ २९००७ २९०१० २९०१२ २९०३६ २९०३७ २९०३८ २९०४१ २९०४३ २९०४५ २९०४६ २९०५० १४३८७ १४४५७ १४५२० १४५२१ १४५२४ १४५५९ १४५७८ १४६१९ १४६६१ १६८९५ १७१२० १७८४५ १८४०३ १९०५३ १९१६० १९३०५ १९३३९ २९०५२ २९०५६ २९०५७ २९०५९ २९०६२ २९०६६ २९०६९ २९०७२ २९०७५ २९०८५ २९०९२ २९०९६ २९१०३ २९१०६ २९१०७ २९१११ २९११४ २९१२० २९१२३ २९१३० २९१३९ २९१४० २९१४६ २९१५४ २९१७५ २९१७६ ०९१८० २९२०२ २९२१८ २९२३१ २९२३४ २९२३७ २९२६० २९७०४ ३००८५ ३०१०९ ३०१२१ ३०१८५ ३०२९१ ३०२२६ ३०२४७ ३०२४८ ३०२८३ ३०२९८ ३०३०८ ३०५३० ३०७८८ ३०७९५ ३०९६२ ३०९६३ ३०९६४ ३०९८५ ३०९८९ ३०९९० ३०९९३ ३०९९६ ३०९९८ ३१००१ ३१०११ ३१०२३ ३१०२४ ३१०३२ ३१३३४ ३१०३५ ३१०३८ ३१०३९ ३१०४० ३१०४१ ३१०४२ ३१०५१ ३१०५८ ३१०६४ ३१०६६ २१०६७ ३१०७० ३१०७१ ३१०७२ ३१०७३ ३१०७४ ३१०७९ ३१०८१ ३१०८३ ३१०८४ ३१०९० ३१०९१ ३१०९३ ३९०९५ ३१०९६ ३१०९७ ३१०९९ ३११०१ ३१११६ ३१११८ ३११२२ ३११२४ ३११२७ ३११२८ ३११३० ३११३१ ३११३२ ३११३३ ३११३४ ३११३५ ३११३६ ३११३८ ३११३९ ३११४१ ३११४४ ३११४५ ३११४६ ३११४७ ३११४८ ३९१४९ ३११५१ ३११५२ ३११५३ ३११५४ ३११६० ३११६१ ३११६२ ३११६३ ३११६४ ३११६५ ३११६९ ३९१७० ३११७१ ३११७२ ३११७३ ३११७४ ३११७७ ३११८० ३११८१ ३११८२ ३११८४ ३११८५ ३११९० ३११९१ ३११९५ ३११९९ ३१२०२ ३१२०१ ३१२०३ ३१२०४ ३१२०७ ३१२०८ ३१२०९ ३१२१० ३१२१२ ३१२१३ ३२५४९ ३१२१४ ३१२१५ ३१२१६ ३१२१७ ३१२१८ ३१२२० ३१२२१ ३१२२५ ३१२२६ ३१२२७ ३१२२८ ३१२२९ ३१२३० ३१२३१ ३१२३२ ३१२३३ ३१२३४ ३१२३५ ३१२३९ ३१२४१ ३१२४५ ३१२४७ ३१२५२ ३१२५४ ३१२५५ ३१२५६ ३१२५७ ३१२५८ ३१२६७ ३१२७० ३१२७३ ३१२७७ ३१२८० ३१२८३ ३१२८६ ३१२८७ ३१२९२ ३१२९३ ३१२९४ ३१२९९ ३१३०५ ३१३३० ३१३४१ ३१३४५ ३१३५४ ३१४३४ ३१४४९ ३२१०५ ३२३०९ ३२३१६ ३२३३५ ३१३६१ ३२३६५ ३२३६८ ३२३९१ ३२४०३ ३२४१३ ३२४१६ ३२४३५ ३२४३८ ३२४४० ३२४४२ ३२४४३ ३२४४७ ३२४६२ ३२४६४ ३२४६५ ३२४९४ ३२९९७ ३२४९८ ३२५१२ ३२५२७ ३२५९०।

Printed and Published for and on behalf of The Chand Press, Limited, by Munshi Naujadik Lal Srivastava, Editor, at The Fine Art Printing Cottage, 28, Edmonstone Road, Chandralok—Allahabad.